MAPA - 02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

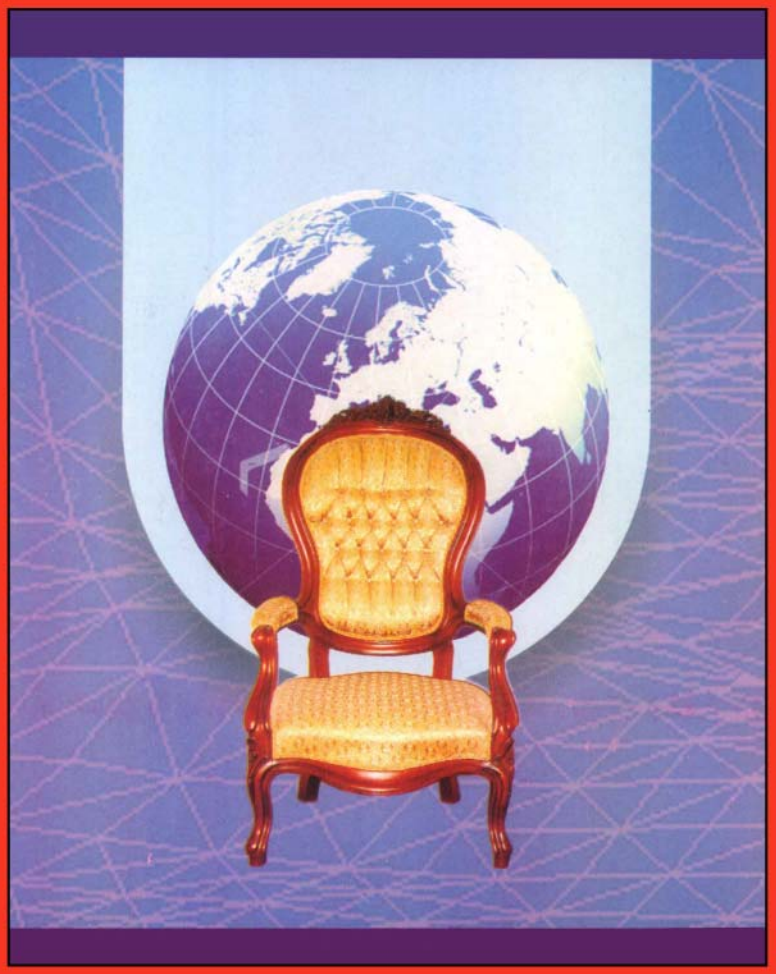

तुलनात्मक लोक प्रशासन

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

तुलनात्मक लोक प्रशासन

इकाई सं.	इकाई का नाम	पेज नं.
इकाई - 1	तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का विकास	6
इकाई - 2	फ्रैड रिग्ज की सैद्धान्तिक एवं प्रतिमान	22
इकाई - 3	विकास प्रशासन की विचारधारा	43
इकाई - 4	लोक प्रशासन में सिद्धान्त निर्माण के लिये तुलनात्मक शोध एक पद्धति के रूप में	59
इकाई - 5	ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ	75
इकाई - 6	अमरीका की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ	91
इकाई - 7	लोकतंत्रात्मक चीन की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ	112
इकाई - 8	अमेरिका में स्थानीय सरकारें संघीय - स्थानीय संबंधों के विशेष संदर्भ में	135
इकाई - 9	विकास की अभिकर्ता (पंचायती राज व्यवस्थाएँ)और स्थानीय स्वायत्त सरकार (पंचायतों) के रूप में भारत में स्थानीय सरकार	150
इकाई - 10	राजनीति एवं लोकप्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम	167
इकाई - 11	राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन का व्यवहारवादी उपागम	191

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक / सदस्य

संयोजक एवं समन्वयक

प्रो. पी.सी. माथुर

परामर्शदाता (लोकप्रशासन)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **प्रो. अरविन्द शर्मा**
   आचार्य, प्रबंध विकास संस्थान
   गुड़गांव
2. **प्रो. खालिद मिर्जा**
   निदेशक, लोक प्रशासन विभाग
   पटना विश्वविद्यालय, पटना
3. **प्रो. संगीता शर्मा**
   आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉ. बजरंग सिंह राठौड़**
   वरिष्ठ व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग
   डूंगर कॉलेज, बीकानेर
5. **प्रो. आर.पी. शर्मा**
   से.नि. आचार्य, लोक प्रशासन विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
6. **प्रो. पी.सी. माथुर**
   परामर्शदाता (लोक प्रशासन)
   व.म.खु.वि., कोटा
7. **आर.पी. जोशी**
   आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
   महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली

आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

लेखक	(इकाई सं.)	लेखक	(इकाई सं.)
1. **प्रो. रमेश अरोड़ा** से.नि. आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**(1,2,3)**	2. **प्रो. आर.पी. शर्मा** से.नि. आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**(6,9)**
3. **प्रो. प्रदीप सक्सेना** सहायक आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**(4)**	4. **डॉ. निर्मल गुप्ता** व्याख्याता **जे.डी.बी. कन्या महाविद्यालय, कोटा**	**(8)**
5. **डॉ. सुरेश गोयल** आचार्य, लोक प्रशासन विभाग **राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**	**(5)**	6. **डॉ. विजय करण सिंह** व्याख्याता, लोक प्रशासन **राजकीय महाविद्यालय, कोटा**	**(7)**
		7. **डॉ. सी.बी. गेना** से.नि. सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग **राजकीय विश्वविद्यालय, कोटा**	**(10,11)**

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. .(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.) अनाम जेटली**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(शैक्षणिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन- सितम्बर 2010 ISBN - 13/978-81-8496-119-5

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

निदेशक (अकादमिक) द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई-1

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आरम्भिक प्रशासनिक सिद्धान्त में तुलनात्मक तत्व

1.3 तुलनात्मक प्रशासन का पारम्परिक अध्ययन

1.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रेरणा-स्त्रोत

1.4.1 नीति-उन्मुख उत्प्रेरक

1.4.2 बौद्धिकता-उन्मूख उत्प्रेरक

1.5 व्यवहारवादी आन्दोलन

1.6 तुलनात्मक राजनीतिक आन्दोलन

1.7 तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिनिधि संगठनात्मक पक्ष

1.7.1 तुलनात्मक प्रशासनिक दल

1.8 अमेरिका से बाहर तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन

1.9 तुलनात्मक लोक प्रशासन का शिक्षण

1.10 सारांश

1.11 अभ्यास प्रश्न

1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरान्त आप समझ सकेंगे -

- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ एवं प्रकृति,
- तुलनीय तत्वों का वैशिष्टय तथा उनका अर्थ-क्रिया विधान,
- तुलनात्मक लोकप्रशासन के पारम्परिक व समसामयिक परिप्रेक्ष्य,
- उसके नीति व बौद्धिकतापरक प्रेरणा-प्रसंग,
- तुलनात्मक लोकप्रशासन के विशिष्ट सांगठनिक पक्ष।

1.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास में सहायक परिस्थितियों की संक्षिप्त विवेचना की गई है। सर्वप्रथम, शासन और प्रशासन सम्बन्धी 'पारम्परिक' अध्ययनों में तुलनात्मक तत्वों की परीक्षा की गई है। तथा उन अवयवों का विश्लेषण किया गया है। जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के उत्तरवर्ती काल में संकर-सांस्कृतिक प्रशासनिक विश्लेषण में रूचि उत्पन्न की। इस संदर्भ में, हाल के वर्षो में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को और अधिक गति देने में तुलनात्मक प्रशासन दल के योगदान का मूल्यांकन भी किया गया है।

1.2 आरम्भिक प्रशासनिक सिद्धान्त में तुलनात्मक तत्व

लोक प्रशासन सरकार के क्रियाकलाप के एक पक्ष के रूप में राजनीतिक व्यवस्था के उदयकाल से ही विद्यमान रहा है। किन्तु, व्यवस्थित अध्ययन के क्षेत्र के रूप में इसका विकास हाल ही में हुआ है। अठारहवीं शताब्दी में शासकीय कार्यो के व्यवस्थित प्रबन्ध के साथ सम्बद्ध "केमरलिज्म" की विचारधारा जर्मन विद्वानों की विशेष रूचि का क्षेत्र बन गई थी। तत्पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका में अलक्जैण्डर हैमिल्टन और टॉमस जैफर्सन ने लोक प्रशासन के कतिपय पक्षों की ओर ध्यान आकर्षित किया। तथापि वुडरो विल्सन के निबन्ध "दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन" को ही लोक प्रशासन के व्यवस्थित अध्ययन का आरम्भिक आधार माना जाता रहा है। विल्सन का तर्क था कि यूरोपीय प्रशासन की कतिपय पद्धतियों का अमेरिका में प्रयोग उनकी निरंकुश एकतान्त्रिकता की भावना को बिना अपनाये भी किया जा सकता है। स्पष्ट रूप से वुडरो विल्सन लोक प्रशासनिक व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययनों के प्रति रूचि रखने के अतिरिक्त संकर-सांस्कृतिक एवं अन्तर-सांस्कृतिक आदान-प्रदानों के पक्षपाती थे। साथ ही, इस काल में डॉर्गन बी. ईटन तथा अन्य मनीषियों ने अमेरिका में ब्रिटिश कार्मिक प्रशासन की पद्धतियों को अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया। यह दृष्टिकोण भी विकासशील तुलनात्मक अभिगम का ही परिचायक माना जा सकता है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रैडरिक टेलर ने "वैज्ञानिक प्रबन्ध" के आन्दोलन का सूत्रपात करके अमेरिकी प्रशासनिक विचारधारा के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था। टेलर की कृति "वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त" अमेरिका में वृहत्तर उत्पादकता की चुनौती का प्रत्युत्तर थी। अमेरिकी प्रशासनिक सिद्धान्त पर "टेलरवाद" का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उस समय टेलर के प्रयास प्रशासनिक विज्ञान के विकास में बढ़ती हुई रूचि के अनुरूप थे। उसका दर्शन सजग पर्यवेक्षण, निरीक्षण, परिमापन और सामान्यीकरण के वैज्ञानिक विधितंत्र का 'एक सर्वोत्तम मार्ग' स्वीकारा गया। वस्तुत: बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में "वैज्ञानिक प्रबन्ध" एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन बन गया। लेनिन ने तो सोवियत रूस में औद्योगिक प्रशासन में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग भी किया। स्वयं मैक्स वेयर ने भी वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों को औद्योगीकरण की आवश्यकताओं के अनुरूप पाया। इस प्रकार टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त काफी सीमा तक संकर-राष्ट्रीय व्यावहारिकता रखते थे।

वैज्ञानिक प्रबन्ध ने संयुक्त राज्य अमेरिका में शासकीय सुधारों को और अधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दौर में इस प्रभाव की कसौटी स्पष्ट थी। इसने प्रशासनिक प्रक्रिया के सार्वभौम सामान्यीकरणों की खोज को लोकप्रिय बनाया तथा कार्यकुशलता की धारणा पर विशेष बल दिया। वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन को सफलता मिलने के पश्चात् लिखी गई लोक प्रशासन की कृतियों में प्रशासन के सिद्धान्तों के प्रति चिन्तन प्रत्यक्ष है। 1926 और 1927 में क्रमश: लियोनार्ड व्हाइट और विलियम विलोबी की लोक प्रशासन पर दो महत्वपूर्ण पाद्य-पुस्तकें प्रकाशित हुई। इन दोनों पुस्तकों तथा इस काल में प्रकाशित लोक प्रशासन सम्बन्धी अन्य कृतियों में सामान्यतया "प्रबन्धकीय" अभिगम अपनाया गया और इनमें

प्रशासन के कतिपय "सार्वभौम" सिद्धान्तों के वर्णन करा प्रशासनिक विज्ञान के निर्माण के प्रयासों के प्रति आस्था व्यक्त की गई।

विलोबी आरम्भिक लोक प्रशासन के प्रस्तावकों में से रहा है। सन् 1919 में उसने लिखा कि प्रशासन "यद्यपि विज्ञान नहीं तो अध्ययन का ऐसा विषय अवश्य है जिसमें वैज्ञानिक प्रणाली का दृढ़ता के साथ उपयोग किया जाना चाहिए।" बाद में उसने कहा कि प्रशासन में "सामान्य उपयोग के मौलिक सिद्धान्त उसी प्रकार के होते हैं जैसे किसी विज्ञान के होते है।" विलोबी का यह मत था कि "वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग से यह सिद्धान्त निर्मित किये जाने चाहिए।" पारम्परिक लोक प्रशासन के एक अन्य विद्वान व्हाइट ने सिद्धान्तों के संकर-सांस्कृतिक रूप पर बल दिया। व्हाइट ने तो यहां तक कहा कि एक परीक्षित परिकल्पना माना गया सिद्धान्त अपने उपयुक्त संदर्भ में प्रयुक्त होकर ग्रेट-ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, ईराक, रूस सभी के लोक प्रशासन तंत्रों हेतु एक उपयोगी मार्गदर्शक बन सकता है।

विलोबी और व्हाइट के उपर्युक्त मतों में लोक प्रशासन में वैज्ञानिक प्रणाली को प्रयुक्त करने की आवश्यकता, वैज्ञानिक रूप से परीक्षित सिद्धान्त निर्माण की सम्भावना और इस प्रकार के सिद्धान्तों की सम्भावित उपयोगिता पर बल दिया गया है।

यह उल्लेखनीय है कि अमेरिकी सामाजिक वैज्ञानिकों के विदेशों में अनुसंधान के लिए आवश्यक धनराशि की अपर्याप्तता तथा इस कालावधि में संयुक्त राज्य अमेरिका की विश्व के अन्य देशों में कम रूचि होने के कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्ववर्ती काल में निर्मित परिकल्पनाओं का संकर-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में गहन रूप से परीक्षण नहीं हो सका। प्रशासनिक विज्ञानों के विकास के आरम्भिक दौर का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रशासन के सिद्धान्तों में "कट्टरता" की मात्रा इतनी अधिक थी कि इन सिद्धान्तों में सामान्यतया यह भ्रम हो जाता था कि प्रशासन का पूर्णतया विकसित वैज्ञानिक आधार जैसे निर्मित ही हो चुका हो, जबकि यह सही नहीं था।

बाद में, मानवीय सम्बन्धों के अध्ययनों ने प्रशासनिक व्यवहार के विश्लेषण में नये तत्व जोड़े तथा इस प्रकार अनौपचारिक संगठनों की क्रिया-प्रणाली से संबंधित नवीन प्रस्थापनाओं का विकास हुआ। किन्तु इस क्षेत्र में आन्तरिक और बाह्य पर्यावरण के मध्य पारस्परिक गतिशील सम्बन्धों के अध्ययन के लिए बहुत ही कम कार्य हुआ है। अनेक कारणों से मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन में संकर-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य विकसित नहीं किया जा सका।

अमेरिका में 1933 के प्रारम्भ में "न्यू डील" योजना आर्थिक मन्दी के निराकरण के लिए प्रशासकीय योजना के रूप में प्रस्तुत की गई थी। इसने अर्थव्यवस्था के प्रबन्ध में लोक प्रशासन की भूमिका को और अधिक प्रभावशाली बनाया और योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के इस दौर में संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक प्रशासन अपेक्षाकृत लक्ष्योन्मुख बन गया। विशेष रूप से टैनेसी घाटी प्राधिकरण जैसे नये लोक संगठनों के लिए यह शत सत्य थी जो कि व्यापक रूप से सामाजिक- आर्थिक विकास के लिए संगठित किये गये थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्ववर्ती काल में इस प्रकार की लक्ष्योन्मुखता अमेरिका में विकास प्रशासन के अंकुरण का परिचायक थी। इसी प्रकार अमेरिकी प्रशासनिक साहित्य में राजनीतिक व्यवस्था और उसकी प्रशासनिक प्रणाली के मध्य सम्बन्धो में रूचि प्रतिबिम्बित हुई। वुडरो विल्सन तथा फ्रैंक गुडनौ द्वारा प्रतिपादित

राजनीति एवं प्रशासन के बीच द्विभागीकरण की धारणा को प्रबल चुनौती दी जाने लगी, क्योंकि व्यवहार में इन दो पहलुओं के बीच सीमा-रेखा खींचना असम्भव प्रतीत हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान एवं उसकी समाप्ति के पश्चात् प्रशासनिक विचारधाराओं में नवीन परिवर्तन आया। एडविन स्टीन, हर्बर्ट साइमन और ड्वाइट वाल्डो जैसे विद्वानों ने प्रशासनिक साहित्य में अधिक वैज्ञानिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता पर बल दिया। अन्य कतिपय लेखकों ने लोक प्रशासन में संकर-सांस्कृतिक विश्लेषणों के विकास के लिए आह्वान किया। उदाहरणार्थ-रॉबर्ट डाल ने बलपूर्वक कहा कि "जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं बनता लोक प्रशासन के 'विज्ञान' बनने के दावे सारहीन से ही है।''

1.3 तुलनात्मक प्रशासन का "पारम्परिक" अध्ययन

"तुलनात्मक शासन" से सम्बन्धित पारम्परिक साहित्य में वैदेशिक सम्बन्धों, राजनीतिक दलों, चुनाव यंत्रों, दबाव समूहों, संविधानों तथा संस्थाओं के औपचारिक पहलुओं की ही अधिक व्याख्या की थी, जबकि तुलनात्मक प्रशासन का अध्ययन केन्द्रीय प्रशासन तंत्र, विकेन्द्रित प्रणालियों, लोक सेवा संरचनाओं, लोक वित्त, वित्तीय प्रशासन, कार्यपालिका पर नियन्त्रण और प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यो पर केन्द्रित रहा। "विदेशी सरकारों" के शासन के सम्बन्ध में किये गये अध्ययनों में प्रमुख यूरोपीय शक्तियों जैसे, ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली और सोवियत संघ के संदर्भ में सांस्थानिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया। इन अध्ययनों में से कुछ मुख्यतया संविधानिक सरकारों के अर्थात् प्रमुखतया जनतांत्रिक सरकारों के सम्बन्ध में थे। उनका बल औद्योगीकृत पाश्चात्य देशों के आदर्श पर आधारित उन राजकीय संस्थानों और पद्धतियों पर था जो पश्चिमी राष्ट्रों के लिए महत्वपूर्ण थी। इन अध्ययनों में कुछ मात्रा में औपनिवेशिक प्रशासनों से संबंधित व्याख्या भी सम्मिलित थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उत्तरवर्ती अध्ययनों में पारम्परिक तुलनात्मक शासन साहित्य की आलोचनाएं की गई। इनमें से कतिपय आलोचनाएं ये थीं-पारम्परिक साहित्य संस्कृति-आबद्ध था, पश्चिमी राष्ट्रों और संस्थानों के अध्ययन तक सीमित था, संविधानवाद एवं पश्चिम के उदार जनतंत्र के मूल्यों से प्रतिबद्ध होने के कारण प्रकृति में आदर्शात्मक था, राजनीतिक और प्रशासनिक विकास की पाश्चात्य पद्धतियों की श्रेष्ठता में विश्वास रखने के कारण यह संकीर्ण प्रकृति का था, मूल रूप से यह विधिवादी एवं औपचारिकतावादी (फॉर्मेलिस्टिक) था, यह परिप्रेक्ष्य में पारिस्थितिकीय नहीं था और शासकीय संस्थाओं की बहु-प्रकार्यात्मक प्रकृति की इसने उपेक्षा, की थी। इसके अतिरिक्त विद्वानो द्वारा यह भी उल्लेख किया जाता है कि शासन और प्रशासन सम्बन्धी पारम्परिक तुलनात्मक साहित्य विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक एवं समस्योन्मुख होने के स्थान पर मुख्य रूप से वर्णनात्मक था। साथ ही प्रकृति में मूलतः यह "तुलनात्मक" नहीं था, क्योंकि एक ही मन्द के अन्तर्गत अनेक राष्ट्रों की सरकारों के अध्ययन के बावजूद इन अध्ययनों में संकर-सांस्कृतिक तथा संकर-सामयिक विश्लेषण एवं व्याख्या नहीं की जाती थी। वास्तव में इस पारम्परिक साहित्य में संकर-सांस्कृतिक, संकर-सामयिक तथा पाश्चात्येत्तर क्षेत्र के प्रशासनिक तन्त्रों के अध्ययनों के लिए आवश्यक प्रत्ययों एवं रीति-विज्ञान का भी अभाव था। इन्हीं सीमाओं पर दृष्टिपात कर रिग्ज ने एक प्रासंगिक प्रश्न उठाया है कि क्यों न इस पुरानी सामग्री को "तुलनात्मक शासनों" का अध्ययन कहने के स्थान पर "विदेशी सरकारों" का अध्ययन कहा जाये।

रिग्ज का यह कथन पारम्परिक अध्ययनों में वास्तविक तुलनात्मक तत्वों के अभाव की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

यहां यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि उपरोक्त आलोचनाएं सामान्य रूप से पारम्परिक तुलनात्मक अध्ययनों को पारिस्थितिक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखती। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र का आरम्भ सीमित आधार पर होता है। यही बात आरम्भिक तुलनात्मक साहित्य पर भी लागू होती है। वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका एवं ग्रेट-ब्रिटेन के विचारकों के अतिरिक्त बहुत कम विद्वानों ने शासन-तंत्र के सम्बन्ध में गहन विचार करने का प्रयास किया है। इस कारण पश्चिमी राष्ट्रों में विकसित प्रशासनिक सिद्धान्तों पर इन देशों मे प्रचलित मूल्यों व मान्यताओं की छाप पड़ना स्वाभाविक ही था। साथ ही, यह नहीं भूलना चाहिए कि राजनीतिक विज्ञान के विषय पर चिरकाल से राजनीतिक दर्शन का प्रभुत्व रहा है। इस प्रभाव के फलस्वरूप राजनीति विज्ञान की कृतियों में आदर्शात्मक तत्वों का बाहुल्य रहा है। इसके अतिरिक्त भूतकाल में विकासशील देशों की संख्या आज की अपेक्षा बहुत कम थी और सम्भवत: तब विकासशील देशों की प्रशासनिक प्रणाली के अध्ययन के लिए पर्याप्त अनुदान भी उपलब्ध नहीं थे जिनकी सहायता से लोक प्रशासन के विद्वान सहजता से इन देशों का अनुभवमूलक अध्ययन कर पाते। यह भी उल्लेखनीय है कि इस काल में सामाजिक विज्ञानों की शोध-पद्धति आज की भांति परिष्कृत नहीं थी। अत: प्रशासनिक अनुसंधान की प्रकृति आज की तुलना में कम वैज्ञानिक थी। यह भी समझना आवश्यक है कि आरम्भिक तुलनात्मक अध्ययन उस उदार जनतांत्रिक पर्यावरण को प्रतिध्वनित करते है जिसमें कि उनका विकास हुआ था। इनमें विशिष्ट पर्यावरण स्थितियों में काम कर रहे विशिष्ट समाजों की समस्याओं को प्रतिबिम्बित करने की रूचि दिखाई देती है। इसलिए उनको "आदर्शात्मक" कहकर उनकी आलोचना करना राजनीतिक-प्रशासनिक विचार के विकास की पारिस्थितिकी की उपेक्षा करना ही होगा। इसकी अपेक्षा, इन अध्ययनों को इनके द्वारा किये गये योगदान के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इन अध्ययनों के परिणामस्वरूप कतिपय महत्वपूर्ण परिकल्पनाओं का जन्म हुआ जिन्हें बाद में परीक्षित, संशोधित अथवा अस्वीकृत किया गया और इस प्रकार इस प्रक्रिया ने प्रशासनिक विज्ञान के विकास को बल प्रदान किया। उदाहरण के लिए पारम्परिक प्रशासनिक अवधारणाएं, जैसे-संगठन, प्राधिकार, नियन्त्रण, संचार, नियोजन, समन्वय, कुशलता और मितव्ययता भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन से सम्बद्ध मुख्य पहलू हैं। इसी प्रकार शासन-तंत्रों पर वर्णनात्मक सामग्री को प्रशासनिक विश्लेषण का आरम्भ माना जाना चाहिए। संक्षेप में, नये तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन के लिए पारम्परिक तुलनात्मक शासन अध्ययन को इस दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए कि वह शासकीय और प्रशासनिक अध्ययन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का परिचायक है।

1.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रेरणा-स्त्रोत

द्वितीय विश्वयुद्ध एवं उसके पश्चात् तुलनात्मक साहित्य की स्थिति में भारी मोड़ आया। आज तुलनात्मक लोक प्रशासन ने एक सम्मानित अकादमिक एवं व्यावसायिक स्थिति प्राप्त कर ली है। इसका प्रमाण संदर्भिकाओं, पुस्तकों, पत्रिकाओं, सम्मेलनों, शैक्षणिक पाठ्यक्रमों और व्यावसायिक कार्यक्रमों आदि की निरन्तर बढ़ती हुई संख्या है। एक प्रासंगिक प्रश्न यह उठता है कि यह परिवर्तन क्यों और कैसे आया? इसके उत्तर के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन के

अकादमिक अध्ययन को प्रोत्साहित करने वाले महत्वपूर्ण घटकों का विश्लेषण करना प्रासंगिक होगा।

अमेरिका में तुलनात्मक लोक प्रशासन के व्यवस्थित अध्ययन के अन्तर्निहित अभिप्रेरक स्त्रोतों को सामान्य रूप से नीति-उन्मुख उत्प्रेरकों और बौद्धिकता उन्मुख उत्प्रेरकों में विभक्त किया जा सकता है। उक्त दोनों श्रेणियों को वर्तमान विश्लेषण की सहायक ही मानना चाहिए क्योंकि व्यवहार में तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलू परस्पर आश्रित है, अत: इन दोनों उत्प्रेरकों के बीच एक दृढ़ विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती।

1.4.1 नीति-उन्मुख उत्प्रेरक

नीति-उन्मुख उत्प्रेरकों से अभिप्राय उन घटकों से है जो कि नीति-निर्माण एवं नीति-संशोधन की आवश्यकताओं के कारण तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में सहायक बने। इस प्रकार के घटकों ने नीति-निर्माण एवं नीति-क्रियान्वयन को अधिक तर्क-संगत बनाने के लिए व्यावहारिक ज्ञान का विकास सम्भव बनाया। साथ ही व्यावहारिक प्रशासन से प्राप्त अनुभवों ने अकादमिक अनुसंधान की प्रक्रिया को सहायता प्रदान की। यह सब इस कारण अधिक सम्भव बना कि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तथा उसके पश्चात् लोक प्रशासन के बहुत से अमेरिकी विद्वान अन्य देशों में व्यावहारिक प्रशासन प्रक्रियाओं में संलग्न हुए तथा उन्होंने अपने अनुभव का उपयोग प्रशासनिक विज्ञान को अधिक अनुभवमूलक बनाने में किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में संयुक्त राज्य अमेरिका का दो क्षेत्रों पर सैनिक आधिपत्य हुआ था। उन क्षेत्रों में कार्यरत अमेरिकी विद्वान-जो तब प्रशासकों के रूप में कार्य कर रहे थे-ऐसी प्रशासनिक समस्याओं से परिचित हुए जिनका समाधान अमेरिकी परम्परागत राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन के सिद्धान्तों द्वारा सम्भव नहीं था। इसी दौरान, विभिन्न सांस्कृतिक विन्यासों में कार्यरत विद्वान भिन्न-भिन्न पर्यावरणों में विद्यमान संरचनाओं की कार्यात्मकता से भी परिचित हुए और इन नवीन ज्ञान का उपयोग उन्होंने तुलनात्मक अध्ययन को अधिक व्यवस्थित बनाने के लिए किया। तदोपरान्त इस तथ्य पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा कि प्रशासनिक संस्थाएं केवल प्रशासनिक कार्य ही सम्पादित नहीं करती, किन्तु राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य प्रकृति की क्रियाओं में भी अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से भाग लेती हैं। उसी प्रकार यह भी माना जाने लगा कि राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक तंत्र, प्रशासनिक तंत्र की कार्यप्रणाली को बहुत बड़ी मात्रा में प्रभावित करते हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तुलनात्मक अध्ययन में रूचि निरन्तर बढ़ती रही। यूरोप के आर्थिक पुनरूद्धार के लिए अमेरिका द्वारा बनाई गई मार्शल योजना और तत्पश्चात् विकासशील देशों के लिए निर्मित चार-सूत्री कार्यक्रम के लागू होने के फलस्वरूप बाहरी देशों में अमेरिका की राजनीतिक और आर्थिक रूचि एवं प्रतिबद्धता बढ़ी। इस प्रतिबद्धता को निभाने के लिए अमेरिका ने विभिन्न देशों की तकनीकी सेवाओं का निर्यात प्रारम्भ किया, क्योंकि शीघ्र ही यह अनुभव होने लगा था कि नव-विकसित राष्ट्रों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता का सही उपयोग तब तक नहीं हो सकता था जब तक कि इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का आधुनिकीकरण न हो जाये। प्रशासनिक दक्षता एवं कार्यकुशलता की अभिवृद्धि से ही यह देश अपने आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं को एक सुसंगत आधार प्रदान कर सकते थे। फलस्वरूप अमेरिकी विद्वानों ने इन देशों

के प्रशासनिक तंत्रों की कार्यप्रणाली के प्रति रूचि दिखानी आरम्भ की, अत: तकनीकी सहायता कार्यक्रम के साथ तुलनात्मक प्रशासनिक प्रक्रियाओं के बारे में लेखन कार्य ने भी जोर पकड़ा। अमेरिकी विद्वान संयुक्त राष्ट्र के तकनीकी सहायता दलों में भी शामिल हो गए। शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक सुधारों का एक आन्दोलन उभरने लगा जिसमें अमेरिकी सरकार को अमेरिकी विश्वविद्यालयों, निजी प्रतिष्ठानों और बहुपक्षीय संगठनों से भी सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। लोक प्रशासन के विद्यार्थियों के दल प्रशासनिक सुधार के इस बड़े उपक्रम में जुट गये। उस काल में विभिन्न विकासशील देशों में कार्यरत लोक प्रशासन के विद्यार्थियों में सचेतन पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य शीघ्र विकसित हुआ। यह अवश्य है कि तकनीकी सहायता कार्यक्रम की आरम्भिक स्थिति में तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास की गति कुछ मन्द रही। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि आरम्भिक काल में तकनीकी सहायता वर्ष-प्रतिवर्ष चल रही थी तथा इसकी दीर्घकालिकता के सम्बन्ध में लोक प्रशासन के विद्वान पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं थे। फलस्वरूप, विदेशों में सामाजिक-प्रशासनिक परिवर्तन में विस्तृत और अधिक गहन अध्ययन के लिए दीर्घकालीन नियुक्तियाँ चाहने वाले विद्वान निरूत्साहित हुए।

विकासशील देशों में बढ़ती हुई तकनीकी सहायता के साथ अधिकाधिक वितान वहाँ आधुनिकीकरण की समस्याओं में रूचि लेने लगे। यह स्वीकार कर लिया गया कि नवोदित राष्ट्र "उभरती सम्भावनाओं की क्रांति" के दौर से गुजर रहे हैं एव संस्थानिक परिवर्तन तथा नई परिस्थितियों ने अनुकूलन की चुनौतियों का सामना करने के लिए "आधुनिकीकृत" अथवा विकसित राष्ट्रों, जो विकासशील देशों के शांतिपूर्ण आधुनिकीकरण में अपना हित भी समझते हैं, की सक्रिय सहायता आवश्यक है। यदि मात्र राजनीतिक दृष्टि से ही शीत-युद्ध के संदर्भ में विचार किया जाये तो भी विकासशील राष्ट्रों की विश्व राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सम्भवत: इसीलिए संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य विकसित राष्ट्रों ने विकासशील देशों की समस्याओं में गहन रूचि प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया। विश्व मंच पर नये राष्ट्रों की बहु-संख्या के उदय के फलस्वरूप तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसंधान के नवीन अवसर उपस्थित हुए। विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का उनके पर्यावरणों के संदर्भ में अध्ययन कर लोक प्रशासन के विद्वान अपने चिन्तन को अधिक अनुभवमूलक आधार प्रदान कर सके।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भौगोलिक स्थिति, जनसंख्या वितरण, सामाजिक स्तरीकरण, सांस्कृतिक संरचना, आर्थिक प्रगति, वैचारिक नवीनीकरण, राजनीतिक स्थिरता एवं सरकारी संस्थानों की विविधता के कारण नवोदित राष्ट्रों में विविधता है। यह विविधता सामाजिक विश्लेषण में संकर-सांस्कृतिक तुलना के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

उदीयमान राष्ट्रों में सर्वांगीण विकास हेतु विभिन्न क्षेत्रों में योजनाबद्ध रूप से प्रयत्न किया जा रहे हैं। साथ ही यह स्वीकार किया जाने लगा है कि विकास के समस्त प्रयत्न तब तक प्रभावी नहीं हो सकते जब तक कि विकास कार्यक्रमों का प्रशासन सुव्यवस्थित एवं दक्ष नहीं हो जाता। फलस्वरूप, इन देशों में आर्थिक तथा सामाजिक विकास के साथ-साथ "प्रशासनिक विकास" के पहलू पर ध्यान दिया जा रहा है। प्रशासन की निर्बलताओं को दूर करने के लिए बहुत से सरकारी एवं गैर सरकारी अध्ययन किये गये है जिनकी सहायता से प्रशासनिक सुधारों के कार्यक्रम निर्धारित किये जा सके हैं। इस प्रकार लगभग सभी राष्ट्रों में प्रशासनिक साहित्य की रचना बहुत

बड़ी मात्रा में हुई है। इस साहित्य-भण्डार ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के ज्ञान को एक ठोस आधार प्रदान किया है।

1.4.2 बौद्धिकता-उन्मुख उत्प्रेरक

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के काल में लोक प्रशासन के कई युवा विद्वान अकादमी क्षेत्र को अस्थाई रूप से छोड़कर व्यावहारिक सरकारी प्रशासन में संलग्न हो गये थे। इस नये अनुभव के परिणामस्वरूप ये विद्वान पारम्परिक अमेरिकी लोक प्रशासन के संस्कृतिबद्ध रूप से असंतुष्ट हो गये थे। रॉबर्ट डाल का यह तर्क कि "लोक प्रशासन के विज्ञान होने का दावा निस्सार है क्योंकि लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं है" चौथे दशक और उसके पश्चात् इस प्रकार के चिन्तन का एक उदाहरण है, फलत: तुलनात्मक लोक-प्रशासन के विद्यार्थी तुलनात्मक समाजशास्त्र, मानव विज्ञान तथा अन्य क्षेत्रों के विकास से परिचित होकर, अपने क्षेत्र में भी संकर-सांस्कृतिक, संकर-राष्ट्रीय और संकरकालिक प्रासंगिकता की सैद्धान्तिक रचनाओं के विचार में अधिक रूचि लेने लगे। उन्होंने स्वीकार किया कि अमेरिकी सांस्कृतिक संदर्भ में विकसित हो रही परिकल्पनाओं को लोक प्रशासन विज्ञान का भाग होने के लिए संकर-सांस्कृतिक विन्यासों में परीक्षित किया जाना चाहिए। इस परीक्षण के उपरान्त ही लोक प्रशासन के सिद्धान्तों की रचना की जा सकती है। अत: लोक प्रशासन की विधा को सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के लिए तुलनात्मक पद्धति के महत्व पर बल दिया जाने लगा। इस बल के फलस्वरूप तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास की गति तीव्र हुई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् लोक प्रशासन के विद्यार्थियों का प्रमुख ध्यान इस बात पर भी गया कि लोक प्रशासन के अध्ययन को पारम्परिक एवं औपचारिक प्रवृत्तियों से हटाकर प्रशासनिक संगठन मे मानव के वास्तविक व्यवहार पर किस प्रकार केन्द्रित किया जाये। यही रूचि सामाजिक विज्ञानों में तथाकथित "व्यवहारवादी आन्दोलन" की उत्प्रेरक सिद्ध हुई।

1.5 व्यवहारवादी आन्दोलन

यह सर्वमान्य तथ्य है कि व्यवहारवादी आन्दोलन ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास को प्रोत्साहित करने में भारी योगदान दिया है, अत: प्रशासनिक विश्लेषण में व्यवहारवाद के आवश्यक तत्वों का संक्षिप्त उल्लेख करना यहां प्रासंगिक होगा। आधुनिक व्यवहारवाद, जिनका आरम्भिक विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व हुआ, तत्वत: विभिन्न परिस्थितियों में मानव व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन से सम्बद्ध है। राजनीतिक विज्ञान में पारम्परिक, ऐतिहासिक, आदर्शात्मक और मुख्यतया वर्णनात्मक विश्लेषणों की अध्ययन-विधि के विरोध के फलस्वरूप ही इस नवीन विचारधारा का जन्म हुआ, जबकि प्रशासनिक अध्ययनों में, व्यवहारवाद का आरम्भ मानव-सम्बन्ध आन्दोलन एवं उसके बाद के चैस्टर बरनार्ड एवं हर्बर्ट साइमन की कृतियों के प्रकाशन से माना जाता है। साइमन का तर्क है कि "प्रशासनिक व्यवहार" का अध्ययन व्यवहारवादी आन्दोलन का एक अंग है और केवल विषयवस्तु में ही "राजनीतिक व्यवहार", समाजशास्त्र, मानव-विज्ञान, मनोविज्ञान तथा अन्य व्यवहारवादी विद्याओं से भिन्न है।

प्रशासनिक अध्ययन में व्यवहारवादी अधिगम की कुछ मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं -

(1) व्यवहारवादी साहित्य आदर्शात्मक एवं निर्देशात्मक होने की अपेक्षा वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अधिक है। प्रशासनिक अध्ययनों में अभिप्रेरणा (मोटिवेशन) से संबंधित अध्ययन ही इस विशेषता के अपवाद है। अभिप्रेरणा से सम्बन्धित साहित्य विश्लेषणात्मक होने के अतिरिक्त आदर्शात्मक एवं निर्देशात्मक भी है।

(2) यह प्रयोग की जाने वाली शब्दावली की कार्यात्मक परिभाषा, पर्यवेक्षण, परीक्षण एवं प्रयोगशालीय अध्ययन जैसी परिशुद्ध अनुसंधान विधियों पर आधारित अनुभववादी अध्ययन पर बल देता है।

(3) व्यापक रूप से, यद्यपि एकांतिक रूप से नहीं, व्यवहारवाद गणितीकरण, सांख्यिकी और औपचारिक सिद्धान्त संरचना प्रक्रियाओं का उपयोग करता है।

(4) व्यवहारवाद का चरित्र अन्तर-विषयीय है और यह अन्य सामाजिक विज्ञानों द्वारा निर्मित परिकल्पनाओं एवं एकत्रित तथ्यों का पर्याप्त उपयोग करता है तथा साथ ही प्रशासनिक संदर्भ में इन परिकल्पनाओं का परीक्षण करता है।

लोक प्रशासन में व्यवहारवादी अधिगम ने वैज्ञानिक अनुसंधान तथा व्यवस्थित सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन प्रदान किया है। संकर-सांस्कृतिक संदर्भ में परिकल्पनाओं के परीक्षण ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को आवश्यक बना दिया है। तुलनात्मक लोक प्रशासन ने विभिन्न प्रशासनिक प्रणालियों की पारिस्थितिकियों के अध्ययन के लिए प्रत्यय, प्रतिमान, रीति-विज्ञान और निष्कर्ष विभिन्न सामाजिक विज्ञानों से ग्रहण किये हैं और इस प्रकार अपनी अन्तर-विषयीय उन्मुखता विकसित की है। स्वयं व्यवहारवाद ने एक ऐसे छात्र की भाँति कार्य किया है जिसके लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन अन्य विषयों से निरन्तर निकट सम्बन्ध रख सका है।

यह उल्लेखनीय है कि व्यवहारवाद के प्रभाव के परिणामस्वरूप लोक प्रशासन के विद्वानों ने वैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियों का प्रयोग कर प्रशासनिक व्यवहार का संकर-सांस्थानिक, संकर-राष्ट्रीय एवं संकर-सांस्कृतिक अध्ययन किया है। इससे लोक प्रशासन के ज्ञान को तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में विकसित होने में सुविधा हुई है। व्यवहारवाद की अन्तर-विषयक प्रकृति होने के परिणामस्वरूप तुलनात्मक लोक प्रशासन ने राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, मानव-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों में हुए शोध एव उनमें विकसित अनुसंधान पद्धतियों का पर्याप्त लाभ उठाया है, तथापि तुलनात्मक लोक प्रशासनिक व्यवहार पर हुए अध्ययनों की संख्या कॉफी कम है। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यवहारवादी अनुसंधान में समय व संसाधनों की अत्यधिक आवश्यकता होती है जो कि लोक प्रशासन के विद्वानों को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सके हैं। ऐसी सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि भविष्य में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास के क्रम में संकर-सांस्कृतिक संदर्भ में सांगठनिक एव व्यावहारिक निर्णय-प्रक्रियाओं पर किये जाने वाले अनुभवमूलक अध्ययनों में वृद्धि होगी तथा व्यवहारवाद का प्रभाव तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों पर और अधिक गहरा हो जायेगा। अभी तक हुए तुलनात्मक लोक प्रशासन में मॉरो बर्जर, राबर्ट प्रैस्थस, माईकल क्रोजियर तथा अन्य विद्वानों ने संकर-सांस्कृतिक पर्यावरणों में अधिकारी तंत्रीय व्यवहार के अनुभवमूलक अध्ययन किये हैं।

क्रोजियर ने अपने अध्ययन "दि ब्यूरोक्रैटिक फिनामिनन" के अन्तर्गत फ्रांस में प्रचलित अधिकारी तंत्रीय व्यवहार का अनुभवमूलक विश्लेषण किया है। क्रोजियर ने पाया है कि फांस के

सामाजिक पर्यावरण का वहाँ के प्रशासन पर प्रचुर प्रभाव पड़ता है। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जो अन्तर-वैयक्तिक सम्बन्ध फ्रांस के समाज में पाये जाते हैं, लगभग वही फ्रान्स के प्रशासन में भी पाये जाते हैं।

मॉरो बर्जर ने अपनी पुस्तक "ब्यूरोक्रैसी एण्ड सोसाइटी इन मॉडर्न इजीप्ट" में यह विश्लेषण किया है कि वेबर ने अधिकारी तंत्रीय प्रतिमान के तत्व किस सीमा तक मिस्र के उच्चतर प्रशासनिक अधिकारियों के व्यवहार में पाये जाते हैं। बर्जर ने पाया कि वेबर का प्रतिमान मिस्र की लोक सेवा पर पूर्णतया सही नहीं उतरता। वास्तव में बर्जर द्वारा अपनाई गई शोध प्रणाली की यह एक निर्बलता थी कि उसने वेबर के अधिकारी तंत्रीय प्रतिमान के "आदर्श रूप" (आइडियल टाइप) की प्रकृति का उपयुक्त अर्थ न समझ उसको अनुभवमूलक शोध का एक मानदण्ड माना, जोकि मूलत: गलत था। फिर भी बर्जर के अध्ययन से मिस्र के उच्चतर प्रशासकों के व्यवहार के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है।

भारत में भी व्यवहारवादी अनुसंधान का उपयोग कई विद्वानो ने किया है। इनमें चन्द्रप्रकाश भाम्भरी, कुलदीप माथुर, वी, ए. पाई पनन्दीकर, रामाश्रय राय एवं शान्ति कोठारी के अध्ययन प्रमुख है। भाम्भरी ने अखिल भारतीय सेवाओं में नियुक्त हुए प्रशिक्षणार्थियों के दृष्टिकोणों का अध्ययन किया है, कुलदीप माथुर ने अपनी पुस्तक "ब्यूरोक्रैटिक रिसपॉन्स टू डवलपमेन्ट" में उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान के खंड विकास अधिकारियों की पृष्ठभूमि, दृष्टिकोणों एवं मूल्यों का अध्ययन किया है, पनन्दीकर ने भारतीय प्रशासकों के विकास संबंधी व्यवहार एवं मूल्यों का अनुभवमूलक विश्लेषण किया है एवं रामाश्रय राय तथा शान्ति कोठारी ने अपनी पुस्तक "रिलेशन्स बिटवीन पॉलिटिशियन्स एण्ड दि एडमिनिस्ट्रेटर्स" में उत्तरप्रदेश के एक जिले में राजनीतिक नेताओं एव प्रशासनिक अधिकारियों के मध्य सम्बन्धों का गहन अनुभवमूलक अध्ययन किया है। इन सब में तुलनात्मक पद्धति की दृष्टि से कुलदीप माथुर का अध्ययन सर्वाधिक प्रासंगिक है। भारत में व्यवहारवादी अभिगम को अपना कर तुलनात्मक लोक प्रशासन पर अध्ययन अधिक मात्रा में किये जाने की आवश्यकता है।

1.6 तुलनात्मक राजनीतिक आन्दोलन

द्वितीय विश्वयुद्ध के उत्तरवर्ती काल में राजनीतिक प्रणालियों के तुलनात्मक अध्ययन में अधिक रूचि उत्पन्न हुई। तुलनात्मक राजनीतिक आन्दोलन एवं तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन के अनेक अभिप्रेरक घटक समान थे, जैसे-पाश्चात्येत्तर राष्ट्रों का उदय, अमेरिका की राजनीतिक एवं आर्थिक मामलों में विश्वव्यापी सम्बद्धता और व्यवहारवाद का उदय। वास्तव में हैरल्ड लॉसवेल, राबर्ट मिशेल्स और लॉरेन्ज लोवेल जैसे कतिपय विद्वानों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्ववर्ती राजनीतिक प्रणालियों के तुलनात्मक अध्ययन में रूचि प्रदर्शित की थी किन्तु इस आन्दोलन को गति विश्वयुद्ध के बाद में ही मिली। दोनों तुलनात्मक राजनीति और तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन पारम्परिक अध्ययनों से अत्यधिक असंतुष्ट थे। दोनों आन्दोलनों में वैचारिक संरचनाओं के प्रति अधिक उन्मुखता रही है, दोनों ने अन्तर-विषयीय प्रकृति लिये, मुख्यता अपना अध्ययन विकासशील राष्ट्रों पर केन्द्रित किया है और अब भी वे अनुभव कर रहे हैं कि अब तक सम्पन्न हुआ क्षेत्रीय अनुसंधान आवश्यकता से कम है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद

के काल में तुलनात्मक राजनीति में होने वाली घटनाओं ने उदीयमान तुलनात्मक लोक प्रशासन को प्रभावित किया।

तुलनात्मक राजनीति आन्दोलन के उदय में ही पहला प्रभावशाली प्रयास 1953 में अमेरिका स्थित सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् ने तुलनात्मक राजनीति पर ग्रीष्मकालीन गोष्ठी का आयोजन करके किया। तभी परिषद् ने तुलनात्मक राजनीति समिति की स्थापना की जिसने तुलनात्मक राजनीति विषय के विकास और अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। गेब्रियल ऑलमण्ड, लियोनार्ड बिन्डर, जेम्स कोलमैन, जोजेफ ला पालोम्बारा, ल्यूशियन पाई, सिडनी वरबा और मायरन वीनर-ये सभी तुलनात्मक राजनीति समिति के सदस्य थे जिन्होंने लोक-प्रशासन का अध्ययन राजनीतिक क्रिया-कलाप विषयक पक्ष के रूप में किया। 1962 में समिति के तत्वावधान में "व्यावहारिक विज्ञानों के उन्नत अध्ययन केन्द्र" में राजनीतिक विकास में अधिकारी तंत्र की भूमिका पर एक सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन में पठित निबन्धों का सम्पादन जोजेफ ला पालोम्बारा ने किया और "अधिकारी तंत्र और राजनीति विकास" (ब्यूरोक्रैसी एण्ड पॉलिटिकल डवलपमेन्ट) नाम से ग्रन्थ प्रकाशित किया।

उस सम्मेलन में तुलनात्मक लोक प्रशासन तथा विशेषतया इसके विकास प्रशासन संबंधी पक्ष के अध्ययन को पर्याप्त गति प्राप्त हुई।

उक्त दोनों आन्दोलनों में उनके अध्ययन की विषय-वस्तु की एकता के कारण घनिष्ठ वैचारिक सम्बन्ध है। रॉबर्ट होल्ट का कथन है कि "राजनीतिक प्रणाली और प्रशासनिक प्रणाली के बीच सीमा रेखा विश्लेषिक रूप से परिभाषित समष्टि प्रणाली एव व्यष्टि प्रणाली के बीच की सीमा रेखा है। "इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप अधिकारी तंत्र को राजनीतिक प्रणाली की महत्वपूर्ण उप-प्रणाली की परम्परा का प्रचलन हुआ। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्यार्थियों ने संकर-सांस्कृतिक विन्यासों में राजनीतिक प्रणाली और अधिकारी तत्र के बीच अन्तर-क्रियाओं में रूचि प्रदर्शित की है तथा तुलनात्मक राजनीतिक साहित्य में विकसित परिकल्पनाओं का उपयोग किया है। यह उदाहरण अल्फ्रेड डायमेंट के इस सुझाव की प्रामाणिकता का साक्षी है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्यार्थी तुलनात्मक राजनीति में लोक प्रशासन से संबंधित ठोस सामग्री और अनुसंधान पद्धति सम्बन्धी परिष्कृत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

नीति की आवश्यकताओं और बाह्य बौद्धिक वातावरण के अतिरिक्त तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन के संगठन ने भी तुलनात्मक प्रशासनिक विश्लेषण के विकास की प्रक्रिया को प्रभावित किया है।

1.7 तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिनिधि संगठनात्मक पक्ष

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को और आगे बढ़ाने का पहला व्यवस्थित प्रयास 1952 में किया गया जबकि अमेरिका स्थित पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन क्लियरिंग हाउस ने तुलनात्मक प्रशासन पर प्रिन्सटन में एक सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन ने लोक प्रशासन समिति के अधीन एक तुलनात्मक लोक प्रशासन उप-समिति नियुक्त की जिसे विदेशों में अनुभवमूलक अनुसंधानों के एक कार्यक्रम को विकसित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। उपसमिति ने अपने प्रतिवेदन में तुलनात्मक क्षेत्रीय अनुसंधान पर वॉलेस लेयर और हर्बर्ट कॉफमैन द्वारा रचित एक संशोधित रूपरेखा को सम्मिलित किया।

सेयर-कॉफमैन द्वारा निर्मित रूपरेखा में प्रशासनिक प्रणाली के संगठन, प्रशासनिक प्रणाली के नियन्त्रण और प्रशासनिक पदसोपान की स्वीकृति और अनुवृत्ति प्राप्त करने की प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित करते हुए एक त्रिसूत्रीय कार्यनीति का सुझाव किया। यह कार्यनीति दो पूर्वानुमानों पर आधारित थी-(अ) सभी समाजों में पद सोपानात्मक पद्धतियों के सांगठनिक सम्बन्धों में क्रम-समानता है, तथा (ब) इन पद्धतियों के सम्बन्ध में सामग्री एक प्रश्नावली द्वारा प्राप्त की जा सकती है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि जो प्रश्नावली तैयार की गई, उसमें प्रश्न अधिकतर पाश्चात्य अनुभवों को प्रतिबिम्बित करते थे। इस पर अल्फ्रेड डायमेंट ने उचित टिप्पणी की है कि वे प्रयत्न "तुलनात्मक प्रशासन में आरम्भिक प्रयासों के सीधेपन को प्रतिबिम्बित करते हैं।" सेयर-कॉफमैन रूपरेखा पर धनाभाव के कारण आगे कार्य नहीं हो सका।

1953 में ही अमेरिकी राजनीति विज्ञान परिषद् (अमेरिकन पॉलिटिकल साइन्स एसोसिएशन) ने तुलनात्मक प्रशासन पर एक तदर्थ उपसमिति बनायी, जो अमेरिकी लोक प्रशासन संस्थान के अधीन तुलनात्मक प्रशासनिक दल के निर्माण के पूर्व तक कार्य करती रही।

1.7.1 तुलनात्मक प्रशासनिक दल

तुलनात्मक प्रशासनिक दल (तु.प्र.द.) (कम्पैरेटिव एडमिनिस्ट्रेशन ग्रुप) की स्थापना अमेरिकी लोक प्रशासन संस्थान की एक समिति के रूप में 1963 में की गयी। आरम्भ में उदीयमान राष्ट्रों की बहु- आयामीय समस्याओं में रूचि रखने वाले फोर्ड फाउण्डेशन ने इस संस्था के संचालन हेतु तीन वर्ष के लिए धनराशि दी थी। फाउण्डेशन ने तु.प्र.द. को दूसरा अनुदान पाँच वर्ष के लिए 1966 में प्रदान किया, किन्तु 1971 में इस अनुदान का नवीनीकरण नहीं किया गया। तथापि वर्तमान में यह दल दूसरे स्त्रोतों से प्राप्त सहायता के आधार पर कार्य कर रहा है। फ्रैड रिग्ज आरम्भ से लेकर 1970 तक दल के अध्यक्ष रहे, तत्पश्चात् रिचर्ड गेबल इसके अध्यक्ष बने।

विकास प्रशासन के क्षेत्रों में तु.प्र.द. ने अनुसंधान, शिक्षण और अधिक प्रभावशाली लोक नीति के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए विविध कार्यक्रम तैयार किये। फोर्ड फाउण्डेशन के अनुदान के कारण तु.प्र.द विकासशील देशों के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पर्यावरण के व्यवस्थित संदर्भ में प्रशासनिक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित रह सका। दल अनुसंधान, परिसंवाद, सम्मेलन और शिक्षण सामग्री तथा अभिगमों के परिष्करण के क्षेत्रों में कार्य करता है। साथ ही यह विकास प्रशासन से सम्बद्ध विद्वानों और व्यावहारिक कार्यकर्ताओं के बीच सम्पर्क-साधन के रूप में कार्य करता है। इसके सदस्यों में विद्वान और सरकारी अधिकारी-दोनों सम्मिलित हैं जो दल के लक्ष्यों और कार्यक्रमों में सक्रिय रूचि लेते हैं। तु.प्र.द. अपने कार्य-क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय है। इसने एशिया, अमेरिका और यूरोप में तुलनात्मक लोक प्रशासन सम्बन्धी अनुसंधानों को प्रोत्साहित किया है। इसके सदस्य विभिन्न उदीयमान देशों में विकास प्रशासन की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हैं और परामर्श भी देते हैं।

तुलनात्मक प्रशासनिक दल ने एशिया, यूरोप, लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, राष्ट्रीय आयोजन, तुलनात्मक नगर प्रशासन और राजनीति, संगठन के सिद्धान्त, अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन, तुलनात्मक व्यवस्थापिका अध्ययन तुलनात्मक शैक्षणिक प्रशासन और तंत्र सिद्धान्त पर ग्यारह समितियाँ निर्मित की है, जिनके माध्यम से यह अधिकांश कार्य करता है। इस प्रकार, इस संगठन

में क्षेत्रीय अनुसंधान, सैद्धान्तिक विकास और सदस्योन्मुखता पर संतुलित बल दिया गया है। अधिकांश समितियाँ अधिकृत संगठनों जैसे-अन्तर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण संयुक्त राष्ट्र के संगठन तथा अन्य राष्ट्रीय सरकारों से निरन्तर सम्पर्क रखती है।

तु.प्र.द, ने अनेक परिसंवाद आयोजित किये हैं तथा अमेरिकी विश्वविद्यालयों में और विभिन्न राष्ट्रों जैसे कोरिया, ब्राजील और इटली में अनुसंधान परियोजनाएं चलायी हैं। इस प्रक्रिया में तुलनात्मक प्रशासन के विभिन्न पक्षों पर एक सौ से अधिक अनुसंधान प्रबन्ध तैयार किये जा चुके हैं। इनमें से अधिकांश प्रबन्ध उचित रूप से संशोधन के पश्चात् प्रकाशित भी हो चुके हैं अथवा प्रकाशन की प्रक्रिया में हैं। तु.प्र.द. ने एक नियतकालिक समाचार पत्र भी प्रकाशित किया है जो दल के सदस्यों के बीच सम्पर्क का एक साधन है। 1969 से सेज प्रकाशन ने तु.प्र.द. के सहयोग से एक त्रैमासिक पत्रिका, जर्नल ऑफ कम्पैरेटिव एडमिनिस्ट्रेशन प्रकाशित करना आरम्भ किया। साथ ही दल के तत्वावधान में प्रायोगिक शिक्षण परियोजनाएं चलाई गई और तुलनात्मक प्रशासन में क्षेत्रीय अनुसंधान को प्रोत्साहित किया गया है।

तुलनात्मक प्रशासनिक दल से सम्बद्ध विद्वानों में से कुछ ये हैं-राल्फ ब्रेबांटी, फ्रैडरिक क्लीवलैंड अल्फ्रेड डायमेंट, सैम्युल आइसनस्टाड्स, बरट्रैम ग्रॉस, फैरल हैडी, जेम्स हैफी, वारेन इल्चमैन, मार्टिन लैन्डाउ, जॉन मांटगोम्री, फ्रैड रिग्ज, एमिल सैडी, वालेस सेयर, फ्रैंक शरवुड, विलियम सिफिन और ह्राइट वाल्डो। इस सूची से तुलनात्मक प्रशासनिक आन्दोलन को "आत्मचेतना (सेल्फ-कॉशन्स) आन्दोलन" की संज्ञा दी है। इस आन्दोलन का नेतृत्व, जैसाकि लिण्टन काल्डवैल ने कहा है, तुलनात्मक प्रशासनिक दल ने ही किया है।

तुलनात्मक प्रशासनिक दल ने लोक प्रशासन का क्षितिज विस्तृत किया है और सभी सामाजिक वैज्ञानिकों-विदेशी विद्वानों सहित-के लिए इस विषय विशेष के द्वार खोल दिये हैं। विभिन्न प्रशासनिक प्रणालियों को उनके पारिस्थितिक सम्बन्धों में अध्ययन करके अधिक व्यवस्थित कार्य-क्षेत्र तैयार किया है और विकास प्रशासन की समस्याओं में अपने सदस्यों की रूचि बढ़ायी है । तुलनात्मक लोक प्रशासन का परम ध्येय, काल्डवैल के अनुसार, प्रशासनिक व्यवहार सम्बन्धी ज्ञान की सार्वभौम विधा का निर्माण करना एव लोक प्रशासन की विधा को प्रामाणिक और व्यापक बनाना है।

1.8 अमेरिका से बाहर तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अमेरिकी अध्ययन पर सर्वाधिक प्रभाव यूरोपीय विद्वान मैक्स वेबर का रहा है। किन्तु विरोधाभास यह है कि यूरोपीय प्रशासनिक-विधि परम्परा ने यूरोप में प्रशासनिक व्यवहार के इस प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययन के मार्ग में बाधा डाली है। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन के विकास में यूरोपीय विद्वानों का योगदान बिल्कुल ही नहीं रहा। उदाहरणस्वरूप, जून 1953 में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति विज्ञान परिषद् ने तुलनात्मक लोक प्रशासन पर एक उपसमिति बनाई जिसके अध्यक्ष चार्ल्स एशर बनाये गये। प्रशासनिक विज्ञानों के अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान ने भी विभिन्न यूरोपीय देशों के प्रशासनिक अनुभवों पर कुछ अध्ययन तैयार किये हैं किन्तु कुल मिलाकर इस प्रकार के अध्ययनों की संख्या बहुत कम है।

1962 में फैरल हैडी ने अमेरिकी तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वानों के साथ बौद्धिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले यूरोपीय विद्वानों में पॉल मेयर, फ्रिट्ज मोर्सटाइन मार्क्स, ब्रायन चैपमैन, आन्द्रे मोलिटर और रोमन श्नुर का उल्लेख किया था। अब तो इन विद्वानों की संख्या और भी अधिक हो गई है। यह भी उल्लेखनीय है कि तु.प्र.द. की यूरोपीय उपसमिति में अन्य अनेक यूरोपीय विद्वानों ने सक्रिय रूप से भाग लिया है किन्तु दूसरी ओर प्रशासनिक विज्ञान के अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान ने, जिसकी कि लोक प्रशासन की अमेरिकी समिति एक राष्ट्रीय इकाई है, तु.प्र.द. से अपना निकट सम्पर्क नहीं रखा है।

हाल के वर्षो में अमेरिकी फाउण्डेशनों की सहायता से अथवा अपनी निजी पहल से भारत, पाकिस्तान, फिलिपीन्स, थाइलैण्ड, ईरान, वियतनाम, इजरायल, कोरिया, तुर्की, ब्राजील और तन्जानिया आदि में लोक प्रशासन के संस्थान निर्मित किए गए है। ये लोक प्रशासन संस्थान, अनुसंधान और शिक्षण का कार्य करते हुए अपने देश में सार्वजनिक नीति प्रक्रिया के आधार को प्रोन्नत करने की प्रक्रिया में संलग्र हैं और इनमें से कुछ पत्रिकाएं, पुस्तकें, प्रबन्ध और पत्रिकाएं प्रकाशित करते हैं एव नियतकालिक परिसंवाद तथा सम्मेलन आयोजित करते हैं। यद्यपि इन संस्थाओं का अमेरिका में तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन से सीधा सम्बन्ध नहीं है तथापि इनके क्रिया-कलाप अमेरिकी विद्वानों के कार्य के अनुपूरक अवश्य हैं।

1.9 तुलनात्मक लोक प्रशासन का शिक्षण

किसी विषय का शिक्षण उस विषय के संगठनात्मक पर्यावरण को सूचित करता है और अंशत: उसका निर्माण भी करता है। ड्वाइट वाल्डो ने 1948 में कैलीफोर्निया विश्वविधालय, बर्कले में तुलनात्मक लोक प्रशासन पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया, तब से अनेक विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर पर तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन कराया जाता है। वस्तुत: लोक प्रशासन के प्राय: सभी स्नातकोत्तर कार्यक्रमों में तुलनात्मक लोक प्रशासन पाठ्यक्रम पाया जाता है, यद्यपि प्रत्येक विद्यालय में और प्रत्येक पाठ्यक्रम में इस विषय के भिन्न-भिन्न तत्वों पर बल दिया जाता है । कुछ पाठ्यक्रम तुलनात्मक संरचना पर बल देते हैं तो दूसरे पाठ्यक्रम विकासशील देशों की अथवा अन्य देशों की प्रशासनिक समस्याओं के अध्ययन पर बल देते हैं तो कुछ पाठ्यक्रम में स्थानीय, विशेष रूप से नागरिक सरकार पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। उदाहरण के लिए न्यूयॉर्क विश्वविधालय में स्नातकोत्तर लोक प्रशासन में तुलनात्मक लोक-प्रशासन की सिद्धान्त की रचना और पद्धति, पश्चिमी प्रशासन, तुलनात्मक पाश्चात्येत्तर प्रशासन (मध्य पूर्व के विशेष संदर्भ में) और तुलनात्मक स्थानीय सरकार पर पाठ्यक्रम है। इस स्कूल में तुलनात्मक नगरीय वित्त और तुलनात्मक नगर शासन और प्रशासन पर भी पाठ्यक्रम चलते हैं। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन पर कुछ पाठ्यक्रम भी हैं। अमेरिकी विश्वविद्यालयों के तुलनात्मक लोक प्रशासन पाठ्यक्रमों में इस प्रकार की भिन्नताएं पायी जाती हैं और अपेक्षाकृत कम मात्रा में ऐसी भिन्नताएं ग्रेट ब्रिटेन और कुछ अन्य यूरोपीय देशों में देखने को मिलती हैं। बहुत से विकासशील देशों में तुलनात्मक लोक प्रशासन में नये पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये गये हैं, यद्यपि वर्तमान में इन्हें बड़ी शक्तियों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस आदि की प्रशासनिक व्यवस्थाओं और तुलनात्मक प्रशासनिक सिद्धान्त पर एक सम्मिलित पाठ्यक्रम तक सीमित रखा जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में भी तुलनात्मक लोक प्रशासन का शिक्षण लोक प्रशासन के शिक्षण के साथ पूर्णरूपेण सम्बद्ध नहीं है। वहाँ दोनों क्षेत्रों के सह-अस्तित्व में बहुत कम पारस्परिक अन्तर-क्रिया है। शरबुड का तर्क है कि लोक प्रशासन के सिद्धान्त और तुलनात्मक लोक प्रशासन पर पृथक्-पृथक् पाठ्यक्रमों से केवल पुनरावृति ही होती है। उसका कथन है कि प्रशासनिक सिद्धान्तों पर कोई श्रेष्ठ पाठ्यक्रम तुलना की पर्याप्त सामग्री के बिना पूर्ण नहीं हो सकता और तुलना पर कोई पाठ्यक्रम-सिद्धान्तों को मुख्य रूप से आधार बनाये बिना निर्मित नहीं किया जा सकता। तथापि यह माना जाना चाहिए कि सामान्यतया कुछ सीमाओं के कारण दोनों क्षेत्रों के पृथक्-पृथक् पाठ्यक्रम बने हैं । ये सीमाएं समय और पाठ्यक्रम सूची से सम्बन्धित हैं । निकट भविष्य के लिए यह सम्भावना की जा सकती है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन पर पृथक् पाठ्यक्रम बने रहेंगे।

1.10 सारांश

उपर्युक्त विचार-विमर्श से यह स्पष्ट है कि प्रशासनिक विचारों को उस पर्यावरण के संदर्भ में, जिसमें कि वे विकसित हुए है, देखा जाना चाहिए। यद्यपि शासन और प्रशासन के आरम्भिक अध्ययन संकर-सांस्कृतिक प्रशासनिक विश्लेषण के वर्तमान प्रयोजन के लिए अपर्याप्त हैं, तथापि इस विषय के प्रोन्नयन के लिए आधार तैयार करने में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। सर्वाधिक महत्व की बात यह है कि इन अध्ययनों ने अपने समय की पर्यावरणिक चुनौतियों का उत्तर दिया है। यह भी कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व ही पारिस्थितिक, लक्ष्योन्मुख, वैकासिक और एक सीमा तक, लोक प्रशासन के तुलनात्मक (संकर-राष्ट्रीय) पक्षों में रूचि का विकास होना प्रारम्भ हो गया था, यद्यपि इस विषयवस्तु को द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ही प्रमुख स्थान प्राप्त हो सका।

द्वितीय विश्वयुद्ध में और उसके तुरन्त बाद पाश्चात्येत्तर देशों के अध्ययन में रूचि प्राय: सभी सामाजिक विज्ञानों का समान लक्षण हो गया। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्यार्थियों के समक्ष संकर-सांस्कृतिक संदर्भ में प्रत्यक्ष सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन हेतु आवश्यक प्रशासनिक विकास का प्रश्न था। इस प्रकार उन्होंने तुलनात्मक संदर्भ में लोक प्रशासन के पारिस्थितिक और वैकासिक पक्षों में पर्याप्त रूचि विकसित की। अमेरिकी प्राविधिक कार्यक्रम तथा फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा विकास प्रशासन के अध्ययन के लिए प्रदत्त वित्तीय सहायता से तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन को विशेष प्रोत्साहन मिला। इस आन्दोलन को उन विद्वानों से बौद्धिक समर्थन प्राप्त हुआ है जो लोक प्रशासन के अध्ययन को वैज्ञानिक स्थिति प्राप्त कराने में रूचि रखते हैं अथवा जो तुलनात्मक राजनीति आन्दोलन में संलग्न हैं। इन सभी विद्वानों ने राजनीति एवं प्रशासन सम्बन्धी संस्थानों के अध्ययन को उनके सामाजिक विन्यास के परिप्रेक्ष्य में किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया है। इसी प्रकार विकास-प्रक्रिया का अध्ययन तुलनात्मक राजनीति और तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्यार्थीयों के लिए समान महत्व का विषय रहा है।

1.11 अभ्यास प्रश्न

1. "तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास" विषय पर एक लेख लिखिए।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन में प्रमुख तुलनात्मक तत्व क्या हैं? पारम्परिक तुलनात्मक प्रशासन में वे कितने विद्यमान थे? विवेचना कीजिए।

3. तुलनात्मक लोक प्रशासन में विहित नीति व बौद्धिकता उन्मुख उत्प्रेरकों से क्या आशय है? चर्चा कीजिए।
4. व्यवहारवादी आन्दोलन तथा तुलनात्मक लोक प्रशासन में क्या पारस्परिक सम्बन्ध है? चर्चा कीजिए।
5. "तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रतिनिधि सांगठनिक पक्ष" विषय पर एक टिप्पणी लिखिए।

1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. विलियम सिफिन (सं.), टुवर्ड दी कम्पैरेटिव स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, इण्डियाना यूनिवर्सिटी प्रेस, ब्लूमिंगटन, 1957
2. कीथ हैंन्डर्सन, कम्पैरेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन-थ्योरी एण्ड रेलेवेन्स, न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी, न्यूयॉर्क, 1967
3. फैरल हैडी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन-ए कम्पैरेटिव पर्सपेक्टिव, प्रेन्टिस हॉल, एंगलबुड क्लिफ़्स, 1966

इकाई-2

फ्रैड रिग्ज की सैद्धान्तिकी एवं प्रतिमान

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मूल सैद्धान्तिक संकल्पनाएं

2.3 पारिस्थितिक वैकासिक परिप्रेक्ष्य

2.3.1 एग्रेरिया और इंडस्ट्रिया

2.3.2 फ्यूज्ड-प्रिज्मेटिक-डिफ्रैक्टेड समाजों के प्रतिमान

2.3.3 विजातीयता

2.3.4 रीतिवाद

2.3.5 परस्पर व्यापन

2.3.6 स्वजन-पक्षपात

2.3.7 बहु-सम्प्रदायवाद अथवा कलैक्टस की विद्यमानता

2.3.8 प्रिज्मैटिक अर्थव्यवस्था

2.3.9 बहु मानकवाद एवं मतैक्य का अभाव

2.3.10 सत्ता का वितरण-प्राधिकार बनाम नियन्त्रण

2.4 प्रिज्मैटिक समाज में परिवर्तन की समस्या

2.5 मूल्यांकन

2.5.1 परस्पर व्यापन-एक प्रतिबन्धित विचार

2.5.2 प्रिज्मैटिक प्रतिमान की नकारात्मक प्रकृति

2.5.3 रीतिवाद- धनात्मक एवं निषेधात्मक

2.5.4 विवर्तन, समन्वय और निष्पादन

2.6 इकाई सारांश

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप यह समझने में समर्थ होंगे कि -

- प्रशासनिक प्रणालियाँ तथा पर्यावरण कैसे परस्पर संयुक्त हैं?
- प्रशासनिक पारिस्थितिकी क्या है?
- प्रशासनिक पारिस्थितिकी विषयक रिग्ज की सैद्धान्तिकी क्यों प्रासंगिक है?
- प्रिज्मैटिक समाज क्या है? कौन से हैं? उनकी रीति व व्यवहार क्या हैं?
- प्रिज्मैटिक समाजों में परिवर्तन की दशा और दिशा क्या है?
- फ्रैड रिग्ज के प्रतिमान क्यों और कितने महत्वपूर्ण है?

2.1 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में समकालीन सिद्धान्तकारों में सम्भवत: सर्वोच्च विद्वान फ्रैड रिग्ज है जिसने प्रशासनिक प्रणालियों और उनके पर्यावरण के मध्य पारस्परिक क्रिया के वैचारिकीकरण के सम्बन्ध में गहन अध्ययन किया है। उसकी रूचि 'विकासमान' अथवा संक्रान्तिकालीन समाज में रही है। इस प्रकार के समाजों की "प्रशासनिक पारिस्थितिकी" की व्याख्या हेतु ही उसने "प्रिज्मैटिक-साला" प्रतिमानों का निर्माण किया है। इस अध्याय में सर्वप्रथम रिग्ज के आरम्भिक "एग्रेरिया" और "इण्डस्ट्रिया" के प्रतिमानों के कतिपय मूल घटकों का परिचय दिया गया है, तत्पश्चात् उसके "फ्यूज्ड-प्रिज्मैटिक-डिफ्रैक्टैड" प्रतिमानों के तात्विक लक्षणों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यहां यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि रिग्ज तुलनात्मक लोक प्रशासन के उन लेखकों के लिए आदर्श है जो गम्भीरतापूर्वक पारिस्थितिक परिप्रेक्ष्य में रूचि लेते हैं।

2.2 मूल सैद्धान्तिक संकल्पनाएं

रिग्ज ने यह मत व्यक्त किया है कि वेबर का अधिकारीतंत्र का आदर्श रूप (आइडियल टाइप) प्रतिमान, अपेक्षाकृत स्वायत्त प्रशासनिक प्रणाली की अपनी मान्यता के कारण, विकासमान राष्ट्रों के अध्ययन के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक नहीं है क्योंकि इन राष्ट्रों में प्रशासनिक संरचनाओं की अन्य सामाजिक संरचनाओं से स्वायत्तता की वही मात्रा उपलब्ध नहीं है जैसी कि विकसित समाजों में पाई जाती है। प्रशासनिक संरचनाएं जो सामाजिक प्रणाली के अन्य भागों के साथ घनिष्ठ और निरन्तर पारस्परिक क्रियाओं में संलग्न रहती हैं, विकासमान देशों में उच्चरूप से बहु-क्रियाकारी लक्षण ग्रहण कर लेती हैं। यह भी सम्भावना है कि ये संरचनाएं पूर्णतया 'प्रशासनिक' कार्य कम करें और गैर-प्रशासनिक कार्य अधिक। ऐसे भी उदाहरण हो सकते हैं जहाँ व्यवहार में "व्यक्त" (मैनिफैस्ट) प्रशासनिक कार्य सर्वथा उपेक्षित कर दिये जाएं। इस प्रकार की स्थितियों में, आदर्श रूप अधिकारी तंत्र के कठोर मानकों के आधार पर एक प्रशासनिक प्रणाली का मूल्यांकन करना अत्यधिक कठिन है। विकासमान राज्यों में वास्तविक अधिकारी तंत्रीय प्रणालियाँ वैध-विवेकपूर्ण प्रतिमान अथवा विशुद्ध पारम्परिक प्रतिमान से इतनी दूर होती हैं कि विशुद्ध द्विभागीकृत निर्मितियों (कान्स्ट्रक्ट्स) की सहायता से उनका अध्ययन भ्रामक परिणाम ही प्रस्तुत करेगा। इसलिए रिग्ज ने तर्क किया है कि "आदिम" (प्रिमिटिव) और "आधुनिक" (मॉडर्न) समाजों के सांरचनिक लक्षणों के मिश्रित रूप युक्त समाजों के अध्ययन के लिए नवीन वैचारिक निर्मितियों की आवश्यकता है।

रिग्ज ने यह मत भी व्यक्त किया है कि विकासमान समाजों में "परस्परव्यापी" (ओवरलैपिंग) और "विजातीय" (हैट्रोजीनस) सरंचनाओं को वेबर के अधिकारीतंत्रीय प्रतिमान की वैचारिक संरचना के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह प्रतिमान सामाजिक संरचनाओं (विशेष रूप से प्रशासनिक संरचनाओं) के सार्वभौम "अधिकारीतंत्रीकरण" की ओर बढ़ने की सतत धारा की कल्पना पर आधारित प्रतीत होता है। यूजिन लिटवक ने दावा किया है कि वेबर का अधिकारीतंत्र प्रतिमान तभी सफल हो सकता है जब कि एक संगठन तात्त्विक रूप से एक-रूपीय घटनाओं से सम्बन्धित हो तथा उन व्यवसायों में संलग्न हो जो सामाजिक कुशलता की अपेक्षा ज्ञान के पारस्परिक क्षेत्रों पर बल देते हैं। इस संदर्भ में, कार्ल डायश ने यह टिप्पणी की

कि वेबर ने कोई "गतिशील" आदर्श रूप प्रस्तुत नहीं किये, यद्यपि उसके विश्लेषण में "परिवर्तन" की प्रक्रिया पर विचार अवश्य किया गया है।

विद्वानों ने यह भी इंगित किया है कि वेबर के अधिकारीतंत्र के विश्लेषण का एक 'पक्ष ऐसा है जिस पर बहुत कम बल दिया गया है, वह है विश्लेषण के "स्थूल" (मैकरोस्कोपिक) और "सूक्ष्म" (माइक्रोस्कोपिक) स्तरीय विश्लेषणों के बीच मध्य-क्षेत्र स्तरीय (मिडल रेंज) विश्लेषण द्वारा समन्वय स्थापित करना। राजनीतिक प्रणाली और उसकी प्रशासनिक उप-प्रणाली के मध्य पारस्परिक क्रिया के कुल विस्तृत अध्ययन के अतिरिक्त वेबर ने आर्थिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक प्रणालियों के प्रशासनिक तंत्र के साथ सम्बन्धों का विस्तार से विश्लेषण नहीं किया। यद्यपि उसने "अधिकारीतंत्रीकरण" को मौद्रिक अर्थ-व्यवस्था के उदय और पूँजीवाद की प्रकृति के साथ सम्बद्ध किया एवं उसने समाज में सामाजिक-आर्थिक भिन्नताओं के समतलीकरण करने में अधिकारीतंत्र के प्रभाव का भी उल्लेख किया, किन्तु इस विषय-क्षेत्र में वेबर का विश्लेषण अर्द्ध-विकसित ही प्रतीत होता है।

टालकट पार्सन्स के अनुसार यद्यपि "वेबर के प्राधिकार के विश्लेषण के सभी महत्वपूर्ण प्राविधिक तत्व सामाजिक सम्बन्ध के समस्त क्षेत्र के लिए सामान्यीकृत महत्व रखते हैं, "तथापि वेबर ने प्राधिकार के संगठन को विश्लेषणात्मक स्वायत्तता के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार देखा है कि जिससे सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में पाये जाने वाले विभिन्न तंत्रों की पारस्परिक अन्तर्निर्भरता का बोध स्पष्ट नहीं हो पाता। पार्सन्स ने सामान्यीकृत सामाजिक तंत्र अभिगम को सभी मुख्य स्तरों पर व्यवस्थित रूप से प्रयुक्त न करने के लिए भी वेबर की आलोचना की है।

इसके अतिरिक्त यह भी युक्ति दी गई है कि प्राधिकार प्रणाली और सामाजिक संरचनाओं की परस्पर क्रियात्मक पद्धतियों पर वेबर के विश्लेषण में अधिक बल नहीं दिया गया। इस प्रकार, एलविन गल्डनर ने मत व्यक्त किया है कि आदर्शरूप प्रतिमान स्थान और काल की सतर्कताओं के प्रति अपेक्षाकृत अनभिज्ञ है और यह धारणा उत्पन्न करता है कि अधिकारीतंत्र सामाजिक संरचनाओं के भारी अन्तरों के बावजूद, तत्वत: एक ही रूप में विद्यमान रहा है। गल्डनर की दृष्टि में वेबर का अधिकारीतंत्रीय प्रतिमान केवल उन्हीं तत्वों से निर्मित है जो सामाजिक संरचना की विविधता का विचार किये बिना एक समान बने रहते हैं।

वेबर के विश्लेषण की उपर्युक्त आलोचना से यह प्रतीत होता है कि "पारिस्थितिकीय" अभिगम में विश्वास करने वाले कतिपय विद्वान "विचारों की पारिस्थितिकी" के विचार के महत्व की उपेक्षा करते हैं। कुछ लेखकों में यह प्रवृत्ति देखी गयी है कि अपने सामाजिक-प्रशासनिक विश्लेषण में वेबर के योगदान की दिखावटी प्रशंसा करते हैं और उसके पश्चात् जो वेबर ने नहीं किया उसके लिए उसकी आलोचना करते हैं, यह बताने के लिए कि वेबर के विश्लेषण में क्या त्रुटियाँ रह गयी हैं, लम्बी-लम्बी सूचियाँ तैयार की जाती हैं और वेबर के वास्तविक योगदान को नगण्य घोषित करने की चेष्टा की जाती है। इस प्रकार उचित परिप्रेक्ष्य से बाहर वेबर की कृतियों का मूल्यांकन करके विवेक-संगत विश्लेषण के सिद्धान्तों की उपेक्षा की जाती है। वेबर का अध्ययन उस काल के संदर्भ में जिसमें कि वह अपने विचार लिपिबद्ध कर रहा था, उसके आदर्श रूप रीति-विज्ञान, उसके विश्लेषण के स्वत: शोधात्मक रूप, उसकी ऐतिहासिक प्रणालियों की व्याख्या तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप से, सामाजिक विचार के विकास में उसके स्थान के परिप्रेक्ष्य में ही किया जाना चाहिए।

न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण के नियम की "सीमाओं" की खोज तब तक सम्भव नहीं थी जब कि उसके विचारों के विकास में नयी अव्याख्येय असंगतियों की खोज नहीं हुई। आज न्यूटन की इस बात के लिए आलोचना करना कि उसने सापेक्षवाद के सिद्धान्त को ध्यान में नहीं रखा, अत्यधिक पारिस्थितिकी-विरोधी पूर्वाग्रह से अधिक कुछ नहीं होगा। तथापि विरोधाभास यह है कि वेबर के अधिकारीतंत्र के विश्लेषण का मूल्यांकन प्राय: उस सारी प्रगति के दृष्टिकोण से किया जाता है जो संगठन-सिद्धान्त, तंत्रात्मक विश्लेषण और वैकासिक सिद्धान्त ने लगभग पिछले तीन दशकों में की है। आवश्यकता इस बात की है कि वह बलपूर्वक कहा जाए कि वेबर ने "अधिकारीतंत्र" की व्याख्या ठीक उसी रूप में की है जिसमें कि उसने इस प्रत्यय को परिभाषित किया है। स्पष्टतया इस परिभाषा में वर्तमान "विकासमान" राष्ट्रों की संस्थाओं को सम्मिलित नहीं किया गया है। अधिकारीतंत्रो के वैचारिकीकरण में उन समाजों पर दृष्टि अवश्य थी जहाँ की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया न बहुत स्पष्ट थी न ही तीव्र, फलत: परिवर्तन के उन सभी सम्भावित परिणामों पर विचार नहीं किया गया जो "विकासमान" सामाजिक प्रणालियों में होते हैं। वास्तव में, उस समय "विकासमान" राष्ट्र बहुत नहीं थे। इसके अतिरिक्त वेबर के अधिकारीतंत्र के विश्लेषण को उसके आदर्श रूप प्रतिमान, जो रीति-विज्ञान की दृष्टि से एक "स्थिर" तंत्र निर्मित है, के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि वेबर के विश्लेषण का मूल्यांकन करते हुए दो पूरक अभिगम अपनाये जा सकते हैं- (1) वेबर के रीति-विज्ञान एवं लेखन काल के संदर्भ में उसके विचारों की परीक्षा करना तथा (2) वेबर के विचारों को सामाजिक विश्लेषण की वर्तमान आवश्यकताओं की दृष्टि से देखना। द्वितीय अभिगम अपनाते समय यह स्वीकार करना चाहिए कि वेबर के विश्लेषण की अधिकतर सीमाएं मूलरूप से निहित "निर्बलताएं" नहीं हैं, अपितु वर्तमान आवश्यकताओं के संदर्भ में ही उत्पन्न सीमाएं हैं। इसलिए आवश्यकता यह है कि त्वरित (रैपिड) रूप से परिवर्तनशील अनुभवमूलक यथार्थता की चुनौती का सामना करने के लिए नई वैचारिक श्रेणियाँ बनाने हेतु प्रयत्न किया जायें। इस संदर्भ में अभी हाल में लोक प्रशासन के अध्ययनों में पारिस्थितिक-वैकासिक परिप्रेक्ष्यों पर अधिक बल दिया गया है।

2.3 पारिस्थितिक-वैकासिक परिप्रेक्ष्य

2.3.1 एग्रेरिया और इण्डस्ट्रिया

रिग्ज ने अपने एग्रेरिया-इण्डस्ट्रिया प्रतिमानों में उन समाजों के मध्य जो "मुख्य रूप से अथवा लाक्षणिक रूप से औधोगिक हैं" और जिनमें "कृषिकी संन्थाएं" प्रधान हैं, भेद किया है। राजनीतिक एवं प्रशासनिक संक्रमण की पद्धतियों सहित वास्तविकताओं के वर्गीकरण और विश्लेषण के लिए पीरकाल्पनिक (हाइपोथैटिकल) श्रेणियों की प्रणाली प्रदान करने के लिए ये प्रतिमान बनाये गये थे। निरीक्षण से प्राप्त तथ्यों से एग्रेरिया और इण्डस्ट्रिया के उन ध्रुवीय प्रतिमानों की निर्मिति में शाही चीन और समकालीन अमेरिका के समाजों ने क्रमश: आधार प्रदान किया है। तात्विक रूप से, ये प्रतिमान वेबर के पारम्परिक और वैध-विवेकपूर्ण प्राधिकार प्रणालियों की निर्मितियों के समान हैं। यह अन्तर अवश्य है कि जहाँ वेबर ने अपने प्रतिमानों

की रचना में निगमनात्मक अभिगम का उपयोग किया है, वहाँ रिग्ज ने अपने प्रतिमानों को वैचारिक रूप प्रदान करने के लिए आगमनात्मक अधिगम का उपयोग किया है।

एग्रेरिया के मुख्य सांरचनिक लक्षण निम्न प्रकार उपस्थित किये गये हैं -

(1) आरोपणात्मक (एसक्रिपटिव), विशिष्टात्मक (परटिक्यूलरिस्टिक) और विर्कीण (डिफ्यूज्ड) पद्धतियों की प्रधानता,

(2) स्थिर स्थानीय (लोकल) समूह और सीमित स्थानिक (स्पेशियल) गतिशीलता,

(3) अपेक्षाकृत सरल और स्थायी व्यावसायिक विशिष्टीकरण, तथा

(4) (विकीर्ण) डिफ़्यूज्ड प्रभावों वाली सम्मानपूर्ण (डैफेरैन्शियल) स्तरण (स्ट्रेटिफिकेशन) की प्रणाली।

इसके विपरित एक "आधुनिक इण्डस्ट्रिया समाज" को निम्नलिखित संरचनात्मक रूपों द्वारा लक्षित किया गया है -

(1) उपलब्धि (एचीवमैन्ट), सार्वभौमिक (यूनिवर्सल) एवं विशिष्ट (स्पैसिफिक) मानकों की प्रधानता,

(2) सामाजिक गतिशीलता की उच्च मात्रा-सामान्यतया, किन्तु अनिवार्यतया अनुलम्ब (वर्टिकल) अर्थ में नहीं

(3) अन्य सामाजिक रचनाओं से पृथकृत सुविकसित व्यावसायिक प्रणाली,

(4) व्यावसायिक उपलब्धियों की सामान्यीकृत पद्धतियों पर आधारित "समतावादी" वर्ग प्रणाली तथा

(5) "संघों" की प्रमुखता अर्थात् क्रियात्मक रूप से विशिष्ट, अनारोपणात्मक (नॉन-एस्किप्टिव) संरचना।

रिग्ज सहित कई विद्वानों ने यह अनुभव किया है कि एग्रेरिया और इण्डस्ट्रिया के ध्रुवीय प्रकार संक्रमणकालीन समाजों के अध्ययन में विशेष रूप से सहायक नहीं हैं। यद्यपि रिग्ज ने एक मध्यवर्ती श्रेणी, "ट्रांजिशिया" निर्मित की, किन्तु यह श्रेणी एग्रेरिया और इण्डस्ट्रिया के ध्रुवीय प्रकारों की अपेक्षा कम विकसित की गई। "मिश्रित प्रकार के" समाजों के विश्लेषण के लिए आदर्श प्रकारों (आइडियल टाइम्स) में विद्यमान यांत्रिकी पर्याप्त नहीं थी। आलोचकों का कथन है कि आधुनिक "इण्डस्ट्रिया" प्रणाली स्वतन्त्र रूप से कभी भी विद्यमान नहीं रहती, अपितु सदैव ही अपने भीतर "एग्रेरिया" प्रणाली के तत्व लिये रहती है। इन प्रतिमानों में समाज की एकदिशात्मक गति-कृषि प्रधान स्थिति से एक उद्योग प्रधान स्थिति की ओर-की अवधारणा भी निहित है। साथ ही एक अनुसंधानकर्ता के दृष्टिकोण से इन प्रतिमानों की श्रेणियाँ अत्यधिक अमूर्त और सामान्य पायी गई हैं। इन प्रतिमानों की एक विशेष सीमा यह भी रही कि प्रशासनिक प्रणालियों के विश्लेषण को इस सारी परियोजना में केवल पारिधिक स्थान ही प्रदान किया गया। स्वयं लिग्ज ने 1959 में एग्रेरिया-इण्डस्ट्रिया रीति-विज्ञान को त्यागकर एक नये "फ्यूज्ड-प्रिज्मैटिक-डिफ़ैक्टैड" समाजों के वर्गीकरण की रचना की। अपनी कुछ सीमाओं के उपरान्त भी एग्रेरिया-इण्डस्ट्रिया रीति-विज्ञान ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में पारिस्थितिकीय अध्ययनों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

2.3.2 फ्यूज्ड-प्रिज्मैटिक-डिफ़ैक्टैड समाजों के प्रतिमान

बहु-कार्यात्मकता (मल्टी-फन्क्शनैलिटी) के विचार के अनुरूप सामाजिक संरचनाएं कार्यात्मक रूप से "अपविस्तृत" (डिफ्यूज्ड) हो सकती हैं (यदि से बहु संख्यक कार्यो को करती हैं), अथवा कार्यात्मक रूप से "विशिष्ट" (स्पैसिफिक) हो सकती हैं। रिग्ज ने कार्यात्मक रूप से अपविस्तृत समाजों को "फ्यूज्ड" और कार्यात्मक रूप से विशिष्ट समाजों को "डिफ़ैक्टैड" नाम दिया है। इन दो ध्रुवीय प्रकारों का मध्यवर्ती समाज "प्रिज्मैटिक' है। इस प्रकार फ्यूज्ड-प्रिज्मैटिक-डिफ़ैक्टैड प्रतिमानों का निर्माण आदर्श प्रकारों के रूप में किया गया है जो किसी वास्तविक समाज में नहीं पाये जाते हैं। यह अवश्य हो सकता है कि किन्हीं समाजों में इन आदर्श रूप प्रतिमानों की विशेषताएं स्थूल रूप से विद्यमान हों। इन प्रतिमानों का उद्देश्य अध्ययन-सामग्री को संकलित करना एवं एक स्वत: शोधात्मक प्रयोजन सम्पन्न करना है।

पार्सन्स की समरूप परिवर्तियों (पैटर्न वेरियेबल्स) का उपयोग करते हुए रिग्ज ने परिकल्पना की है कि "डिफ़ैक्टैड" प्रणाली सार्वभौमिकतावाद (यूनिवर्सलिज्म) और उपलब्धि-उन्मुखता की दृष्टि से उच्च स्थान प्राप्त करेगी, फ़्यूज्ड प्रतिमान विशिष्टतावाद (परटिक्यूलरिज्म) और आरोपण में उच्च स्थान पायेगा तथा प्रिज्मैटिक प्रतिमान इन दोनों मापदण्डों का मध्यवर्ती होगा। रिग्ज ने समरूप परिवर्तियों की मध्यवर्ती श्रेणियों भी विकसित की हैं। इस प्रकार एक प्रिज्यमैटिक समाज को वरणीयता सिद्धान्त अथवा सिलैक्टिविज्म (सार्वभौमिकतावाद और विशिष्टतावाद की मध्यवर्ती श्रेणी), "सिद्धि" अथवा "एटेनमैन्ट' (उपलब्धि और आरोपण की मध्यवर्ती श्रेणी) और "बहु-कार्यात्मकतावाद" (कार्यात्मक विशिष्टता और कार्यात्मक अपविस्तृतता की मध्यवर्ती श्रेणी) द्वारा लक्षित किया गया है। रिग्ज ने चेतावनी दी है कि इन परिवर्तियो के मध्य सह-सम्बन्ध केवल परिकल्पना का विषय होगा, परिभाषा का नहीं, अर्थात् केवल अनुभवमूलक निष्कर्षो से ही इस प्रकार के सह-सम्बन्धो का अस्तित्व और मात्रा पहचानी जा सकती है।

प्रिज्मैटिक समाज में सामाजिक संरचनाओं के महत्वपूर्ण तत्वों और इस समाज के प्रशासनिक उपतंत्र जिसे रिग्ज ने "साला" कहा है के साथ उनकी परस्पर-क्रिया का अध्ययन ही रिग्ज के विश्लेषण का केन्द्र-बिन्दु है। फ्यूज्ड तथा डिफ़ैक्टैड समाजों की उसने केवल रूपरेखा ही प्रदान की है जो केवल उस सीमा तक प्रासंगिक है जिस सीमा तक वह प्रिज्मैटिक समाजों के विश्लेषण में सहायक है। रिग्ज की मुख्य रूचि संक्रमणकालीन अथवा विकासमान समाजों में प्रशासनिक समस्याओं पर प्रकाश डालने में रही है।

रिग्ज के प्रिज्मैटिक-साला प्रतिमानों के आधारभूत लक्षणों में तीन विशेषताएं लक्षित की गई हैं- "विजातीयता" (हैट्रोजिनीटी) "रीतिवाद" (फॉर्मेलिज्य) और "अतिव्यापन" (ओवरलैपिंग)।

2.3.3 विजातीयता (हैट्रोजिनीटी)

प्रिज्मैटिक समाज में विजातीयता की ऊँची मात्रा विद्यमान होती है। विजातीयता से अभिप्राय सर्वथा विभिन्न प्रकार की प्रणालियों, व्यवहारों और दृष्टिकोणों का समाज में एक ही समय में साथ-साथ विद्यमान होना है। फ्यूज्ड और डिफ़ैक्टैड लक्षणों का सहअस्तित्व एक अपूर्ण और असमान सामाजिक परिवर्तन का सूचक है और उसका परिणाम भी है। एक प्रिज्मैटिक समाज में "परिष्कृत" बुद्धिजीवी वर्ग-युक्त नगरीय क्षेत्र, पाश्चात्य शैली के कार्यालय और प्रशासन के

आधुनिक उपकरण विद्यमान रहते हैं। दूसरी ओर, ऐसे समाज में ग्रामीण क्षेत्र भी होते हैं जिनका रूप-रंग और दृष्टिकोण पारम्परिक होता है तथा ग्राम-प्रमुख अथवा वृद्ध ही विविध राजनीतिक, प्रशासनिक, धार्मिक एवं सामाजिक भूमिकाओं का सम्पादन करते हैं। इसी प्रकार प्रशासनिक प्रणालियों का भी लक्षण विजातीयता होता है। एक प्रिज्मैटिक समाज में "साला" आधुनिक "कार्यालयों" (आफिसेज) और परम्परागत "दरबारों" (कोर्टस) अथवा कक्षों (चैम्बर्स) के साथ विद्यमान रहता है।

2.3.4 रीतिवाद (फॉर्मेलिज्म)

"रीतिवाद" औपचारिक रूप से निर्धारित और प्रभावशाली रूप से व्यवहृत मानकों तथा नियमों और यथार्थताओं के मध्य विसंगति अथवा सामंजस्य की मात्रा बताता है। सामंजस्य का स्तर इन तत्वों के मध्य '"यथार्थवाद' (रियलिज्म) की मात्रा बताता है। इसके विपरित रूप से इन दोनों के मध्य विसंगति रीतिवाद का प्रतिनिधित्व करती है। औपचारिकता और प्रभावशाली व्यवहार के मध्य जितनी अधिक विसंगति होगी वह प्रणाली उतनी ही अधिक रीतिवादी मानी जायेगी। फ़्यूज्ड और डिफ़ैक्टैड समाजों में अपेक्षाकृत यथार्थवाद की उच्च मात्रा होती है, जबकि एक प्रिज्मैटिक समाज रीतिवाद की उच्च मात्रा द्वारा लक्षित किया जाता है। प्रिज्मैटिक समाजों में वास्तविक शासकीय व्यवहार सविधियों के अनुरूप नहीं होता, यद्यपि सार्वजनिक अधिकारी कुछ कानूनों का शब्दशः अनुसरण करने पर आग्रह करते हैं। बहुधा वे कानूनों के कतिपय प्राविधिक प्रावधानों और नियमों का अत्यन्त सावधानी के साथ अनुसरण करने का आग्रह करते हैं, जबकि उसी समय अन्य विधानों-जोकि सामान्य नियमों और उद्देश्यों से सम्बन्ध रखते हैं-की अपेक्षा करते हैं। कार्यक्रम के लक्ष्यों पर बल देने की कमी, प्रशासनिक निष्पत्ति के मार्ग-दर्शक के रूप में सामाजिक सत्ता की दुर्बलताओं और स्वेच्छानुसार प्रशासन के लिए भारी छूट ही रीतिवाद की प्रवृत्ति को जन्म देती हैं। रीतिवादी व्यवहार के लिए प्रोत्साहन कतिपय अधिकारियों की स्वाभाविक "प्रवृत्तियों" अथवा विशिष्ट स्थितियों में उनको प्राप्त होने वाली अनुचित आय से मिल सकता है। इस प्रकार, रीतिवाद सामान्य रूप से अधिकारियों के भ्रष्टाचार की प्रक्रिया के साथ जुड़ जाता है।

रिग्ज के अनुसार यथार्थवाद-रीतिवाद द्विविभाजन का नीति परिणाम यह है कि एक डिफ़ैक्टैड समाज की प्रशासनिक संस्थाओं में औपचारिक सुधार द्वारा प्रशासनिक व्यवहार में परिवर्तन भी आ सकता है, जबकि एक प्रिज्मैटिक समाज में, सम्भवतः इस प्रकार के सुधार केवल सतही प्रभाव डालते हैं। इसलिये प्रिज्मैटिक समाजों में किन्हीं सांस्थानिक परिवर्तनों को लाने के पूर्व सार्वजनिक अधिकारियों में यथार्थवाद को प्रोत्साहन करने की प्रवृत्ति विकसित की जानी चाहिए।

2.3.5 परस्पर-व्यापन (ओवरलैपिंग)

विजातीयता और रीतिवाद से सम्बन्धित एक लक्षण है- "परस्पर-व्यापन" जो एक डिफ़ैक्टैड समाज की औपचारिक रूप से विशिष्टीकृत संरचनाओं और फ्यूज्ड प्रकार की अविशेषित संरचनाओं के सहअस्तित्व के परिमाण का बोधक है। उस सीमा तक जिसमें संरचनाएं डिफ़ैक्टैड समाज में अपने "व्यक्त" कार्यो को करती हैं, पर्याप्त परस्पर-व्यापन नहीं होता। इसी प्रकार, एक

फ्यूज्ड समाज में, जिसमें प्राय: सभी प्रकार के कार्यो के लिए संरचनाओं का केवल एक विन्यास रहता है, परस्पर-व्यापन की समस्या उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि उस प्रकार के समाज में जो भी" औपचारिक" (फॉर्मल) होता है, वह "प्रभावशाली" (इफैक्टिव) भी होता है। दूसरी ओर एक प्रिज्मैटिक समाज में, यद्यपि नई अथवा "आधुनिक" सामाजिक संरचनाओं की निर्मिति की जाती है, सार रूप में पुरानी अथवा अविशिष्टीकृत संरचनाएं ही सामाजिक प्रणाली में प्रमुख स्थान रखती हैं। विवर्तित संरचनाओं के साथ सामान्य रूप से सम्बद्ध नये नियम और मूल्यों को केवल दिखावटी समर्थन दिया जाता है और इस प्रकार पुराने मूल्यों के पक्ष में जो कि अविशिष्टीकृत समाज के लिए उपयुक्त हैं, उनकी अपेक्षा की जाती है। "साला" (प्रशासनिक उपतंत्र) में परस्पर-व्यापन के अस्तित्व की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि प्रशासनिक निर्णय किस सीमा तक गैर-प्रशासनिक अर्थात् राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य तंत्रों द्वारा निर्धारित होते हैं।

एक प्रिज्मैटिक समाज में परस्पर-व्यापन के कतिपय उल्लेखनीय आयाम हैं। इनका वैचारिकीकरण, "स्वजन पक्षपात", "बहु साम्प्रदायिकतावाद" और "क्लैक्टस" की विद्यमानता, "बहु नियात्मकतावाद" अथवा मतैक्य की कमी और "प्राधिकार" का "नियन्त्रण" से पृथक्करण के रूप में किया गया है।

2.3.6 स्वजन-पक्षपात (नैपाटिज्म)

एक डिफ़ैक्टैड समाज में पारिवारिक निष्ठा के विचार को सरकारी व्यवहार से पृथक रखा जाता है, जबकि एक फ्यूज्ड समाज में राजनीतिक-प्रशासनिक प्रणाली में आनुवंशिकता का लक्षण रहता है और इसलिए रक्त सम्बन्धों अथवा पारिवारिक सम्बन्धों को भारी महत्व दिया जाता है। दूसरी ओर प्रिज्मैटिक समाज में नवीन औपचारिक संरचनाएं पारिवारिक और रक्त सम्बन्धों पर अधिरोपित कर दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त प्रशासन में सार्वभौम मानकों की उपेक्षा कर दी जाती है, जबकि प्रशासनिक भर्ती स्वजन-पक्षपात के आधार पर निर्धारित की जाती है। इस प्रकार, व्यक्त रूप से तो पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर प्रशासनिक नियुक्तियों का विरोध किया जाता है, किन्तु आचरण में इस व्यवस्था को अपनाया जाता है।

2.3.7 बहु-सम्प्रदायवाद अथवा कालेक्टस की विद्यमानता

डिफ़ैक्टैड समाज में प्राय: प्रत्येक व्यक्ति को "जनसंचार" के लिए "सक्रिय" (मोबिलाइज) किया जाता है। इस प्रकार के समाज में एक राष्ट्रीय समुदाय (नेशनल कॉम्यूनिटी) होता है जो कि अपने अभिजात वर्ग समूहों के साथ विद्यमान रहता है। दूसरी ओर, एक फ्यूज्ड समाज में जन-संचार माध्यमों का अभाव रहता है, और इस प्रकार वहाँ जन-समवायन की मात्रा कम होती है। प्रत्येक ग्राम अथवा जन-जाति अपेक्षाकृत एक "बन्द" तंत्र (क्लोज्ड सिस्टम) के रूप में कार्य करते हैं अर्थात् इन तंत्रों की अपने पर्यावरण से नाममात्र की परस्पर-क्रिया होती है। इन दो ध्रुवीय प्रकारों के मध्य में प्रिज्मैटिक समाज आता है जहाँ अभिजातों की प्रतीक पद्धति (सिम्बल सिस्टम) के साथ जन-समीकरण (मास एसिमिलेशन) की गति सम्भवत: समवायन की गति की अपेक्षा मन्दतर होती है। यह स्थिति "बहु सम्प्रदायवाद" (पॉली-कॉम्यूनलिज्म) की स्थिति को जन्म देती है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रजातीय धार्मिक और जातीय समूह परस्पर वैमनस्यपूर्ण सम्बन्धों में

साथ-साथ रहते हैं। इस प्रकार के "बहु सम्प्रदायात्मक" समाज में विविध "हित समूहों" की सदस्यता अधिकांशत: बिरादरियों पर आधारित होती है। रिग्ज ने इन समूहों को "क्लैक्टस" कहा है । क्लैक्टस में उपलब्धि-उन्मुखता, वरणीयतावाद और बहु कार्यात्मकतावाद के लक्षण होते हैं। "क्लैक्टस" अर्ध-पारम्परिक प्रकार के अपेक्षाकृत अपविस्तृत कार्य करते हैं, यद्यपि उनका संगठन "आधुनिक" प्रकार का ही होता है। स्वाभाविक रूप से बहु सम्प्रदायवाद और "कलैक्टस","साला" के चरित्र को प्रभावित करते हैं। प्रिज्मैटिक समाज में एक सार्वजनिक अधिकारी शासन की अपेक्षा, अपनी जाति के सदस्यों के प्रति सामान्यतया बहत्तर निष्ठा विकसित कर लेता है। शासकीय पदों पर नियुक्तियों और नियमों एवं उपनियमों जैसे प्रशासनिक मामलों में सर्वाधिक प्रभावशाली अल्पसंख्यक समुदाय असमानुपाती प्रतिनिधित्व एवं लाभ प्राप्त कर लेता है। तथापि, अन्य अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए कभी-कभी सरकारी पदों पर भर्ती हेतु एक प्रकार का समानुपाती प्रतिनिधित्व प्रदान करने हेतु एक अभ्यंश (कोटा) प्रणाली का उपयोग किया जाता है, किन्तु इस प्रकार की व्यवस्था विविध समुदायों में पारस्परिक वैमनस्य का कारण भी बन जाती है। इस प्रकार के वैमनस्य के परिणामस्वरूप विभिन्न शासकीय संस्थाओं में कार्यरत विरोधी समुदायों के सदस्यों के मध्य असहयोग उत्पन्न होने की सम्भावनाएं बन जाती हैं।

कभी-कभी "साला" अथवा इसको कोई उप-तंत्र किन्हीं विशिष्ट ' क्लैक्दस" के साथ विशिष्ट सम्बन्ध विकसित कर लेता है अथवा स्वयं एक "कलेक्टस" की भाँति कार्य करने लगता है। इन परिस्थितियों में "साला" मुख्य रूप से किसी विशिष्ट समुदाय के हित में कार्य करता है, किन्तु फिर भी यह उपलब्धि और सार्वभौम मानकों को दिखावटी समर्थन देना जारी रखता है। साला और क्लैक्ट के बीच इस सहयोग के फलस्वरूप साला के अधिकारी रिश्वत अथवा अन्य अवैध तरीकों से लाभ कमाते हैं। प्रिज्मैटिक व्यवहार का यह पक्ष प्रिज्मैटिक समाज की आर्थिक उप-प्रणाली के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है।

2.3.8 प्रिज्मैटिक अर्थव्यवस्था - "बाजार-कैण्टीन" प्रतिमान

एक डिप्रैक्टैड समाज में मूल्य-निर्धारण तात्विक रूप से बाजार की मांग और पूर्ति तत्वों द्वारा किया जाता है। इसके विपरित, फ्यूज्ड समाज में "संघर्ष-घटक" (ऐरिना फैक्टर्स)-वे घटक जो शक्ति संतुलन प्रतिष्ठा और समेकता का निर्धारण करते हैं-अर्थव्यवस्था पर प्रमुख रहते हैं तथा इसके परिणामस्वरूप मूल्य निर्धारण का प्रश्न कदाचित ही उठता है। प्रिज्मैटिक समाज में "बाजार" और "संघर्ष" तत्व परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा इस प्रकार "मूल्य अनिश्चितता" की ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं कि जिसमें सामान्यतया एक वस्तु अथवा सेवा के लिए नियत मूल्य निर्धारित करना असम्भव होता है।

रिग्ज ने सार्वजनिक अधिकारियों और उनके असामियों के मध्य विनियम सम्बन्धों का क्रेता और विक्रेता के सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया है। इस प्रकार प्रिज्मैटिक समाज में सार्वजनिक सेवाओं के लिए वसूल किया जाने वाला मूल्य सार्वजनिक सेवा और उसके असामियों के मध्य सम्बन्धों की प्रकृति के समनुरूप होता है। फलस्वरूप स्वजनीय क्लैक्ट्रस और प्रधान समुदाय के सदस्यों को घटी दर पर सेवाओं का विक्रय किया जाता है, और इसके विपरित अल्पसंख्यक समुदाय और बाहरी "क्लैक्ट्स" के लोगों से उन्हीं वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए ऊँचा मूल्य लिया जाता है। दूसरे शब्दों में, प्रिज्मैटिक समाज में आर्थिक संगठन एक अनुदान प्राप्त

(सब्सिडाइज्ड) कैण्टीन के समान कार्य करते हैं तथा विशेष सुविधा-प्राप्त समूहों के समुदायों और राजनीतिक रूप से "प्रभावशाली" व्यक्तियों को निम्नतर दरों पर वस्तुएं और सेवाएं बेची जाती हैं। इसके अतिरिक्त ये आर्थिक संगठन एक "मातहत" (ट्रिब्यूटरी) कैण्टीन के लक्षण रखते हैं तथा इस प्रकार "बाह्य" समुदायों के सदस्यों से वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए अधिक मूल्य वसूल करते हैं।

प्रिज्मैटिक समाज में मूल्य-अनिश्चितता एक "बाजार" जैसा वातावरण बनाती है, जिसमें वित्तीय व्यवहार के विभिन्न पक्षों जैसे-कर, शुल्क छूट और रिश्वत की मात्राओं के सम्बन्ध में सौदा होता रहता है। इस प्रकार के व्यवहार, समस्त वित्तीय प्रशासन और विशेष रूप से आय-व्ययक (बजट) निर्माण, लेखा विधि और लेखा परीक्षण पर पर्याप्त प्रभाव डालते हैं। मूल्य-अनिश्चितता सरकारी राजस्व संग्रह को भी दुर्बल करती है, जिसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक अधिकारियों को वेतन कम ही मिल पाता है। नियमित माध्यमों द्वारा कम पारिश्रमिक मिलने के परिणामस्वरूप सार्वजनिक अधिकारी अनुचित साधनों द्वारा अपनी आय बढ़ाने हेतु अभिप्रेरित एवं प्रवृत्त हो जाते हैं। इस प्रकार शासकीय व्यवहार के मानकों पर आर्थिक उपतंत्र का प्रभाव पड़ता है और यह मानक प्रिज्मैटिक समाज के आर्थिक उपतंत्र को भी प्रभावित करते हैं।

2.3.9 "बहु मानकवाद" (पॉली-नार्मेटिविज्म) एवं मतैक्य का अभाव

एक प्रिज्मैटिक समाज में मानकों और नियमों के "नये" विन्यास, पारम्परिक व्यवहार प्रणालियों के साथ-साथ विद्यमान रहते हैं। व्यवहार के औपचारिक और "प्रभावी" मानदण्डों के परस्पर-व्यापन के फलस्वरूप प्रिज्मैटिक समाज के अन्दर होने वाली सामाजिक परस्पर-क्रियाओं में आचरण के मानकों पर मतैक्य के अभाव के लक्षण पाये जाते हैं। "बहु मानकवाद" अथवा" मानकरहितता" की इस प्रकार की स्थिति का प्रभाव "साला" पर पड़ता है, जहाँ कि सरकारी अधिकारी सार्वजनिक रूप से तो वस्तुनिठा, सार्वभौमिकता और उपलब्धि-उन्मुख मानकों के पालन का दवा करते हैं, परन्तु वास्तविक व्यवहार में अधिकतम आत्मगत, आरोपणोन्मुख और विशिष्टतावादी आचरण के मानकों का अनुसरण करते हैं। वे पद-स्थिति की परम्परागत कठोर पद-सोपानात्मक व्यवस्था का भी आदर करते हैं। ये अधिकारी दावा करते हैं कि वे अपने व्यवहार में विकास-युक्त मानकों का अनुसरण करते हैं। उनकी पश्चिमी मानकों की तथा साथ ही अपने सामाजिक अतीत का अनुसरण करने की अभिलाषा के कारण प्रशासनिक अधिकारी "अनुकारी" (माइमैटिक) व्यवहार-जिसका अभिप्राय दूसरों द्वारा किये गये व्यवहार की नकल करना है-विकसित कर लेते हैं।

एक प्रिज्मैटिक समाज के सार्वजनिक अधिकारियों का चयन-स्त्रोत सामान्य रूप से कतिपय विशिष्ट समूहों तक ही प्रतिबंधित होता है। शिक्षा एवं प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर भर्ती की प्रणाली के बावजूद, सरकारी सेवाओं में प्रगति के अवसर, बड़ी मात्रा में, सेवा में वरिष्ठता एवं उच्चाधिकारी से मिलने वाले समर्थन पर ही निर्भर रहते हैं। एक सामान्य नागरिक भी "साला" के साथ अपने सम्बन्ध में, बहु मान्कीय होता है। एक ओर तो वह यह घोषणा करता है कि सरकारी व्यवहार में कठोर वैध-विवेकपूर्ण व्यवहार का पालन किया जाना चाहिए तो दूसरी ओर वह स्वयं के लाभ के लिए सरकारी नियमों की उपेक्षा करने को तत्पर रहता है।

2.3.10 सत्ता का वितरण: प्राधिकार बनाम नियन्त्रण

प्रिज्मैटिक समाज की सत्ता-संरचना में केन्द्रीकृत प्राधिकार की संरचनाओं तथा स्थानीकृत नियन्त्रण व्यवस्था के बीच परस्पर-व्यापन पाया जाता है। ऐसे समाज में प्राधिकार (शासकीय रूप से अधिकृत अथवा वैध सत्ता) एवं नियन्त्रण (वास्तविक किन्तु गैर-शासकीय रूप से स्वीकृत अथवा वैध सत्ता) का पृथक्करण पाया जाता है।

साला के प्राधिकार तथा समाज के नियन्त्रण की संरचनाओं-जो बहु-सम्प्रदायवाद एवं बहु-मानकवाद पर आधारित हैं-के बीच परस्पर-व्यापन होता है। इस प्रकार प्रशासनिक कार्य, प्रशासनिक संरचनाओं के अतिरिक्त, गैर-प्रशासनिक संरचनाओं द्वारा भी सम्पादित किये जाते हैं। इस प्रकार का परस्पर-व्यापन राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रभावित करता है। सामान्यतया, प्रिज्मैटिक समाज में, रिग्ज के शब्दों में, एक 'असंतुलित राजतंत्र' पाया जाता है, जिसके अन्तर्गत राजनीतिक-प्रशासनिक तंत्र पर प्रशासकों का प्रभुत्व होता है, इसके बावजूद कि राजनीतिज्ञों के पास औपचारिक रूप से नीति-निर्माण का अधिकार विद्यमान होता है। इस प्रकार एक डिफ़ेक्टैड समाज के प्रशासनिक तंत्र की अपेक्षा "साला" में प्रशासकों की भूमिका अधिक प्रभावशाली होती है। अधिकारियों के हाथ में सत्ता के इस प्रकार के केन्द्रण का फल यह होता है कि जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति उनकी संवेदनशीलता कम हो जाती है। रिग्ज की मान्यता है कि संक्रमणकालीन समाजों में लोक प्रशासन व्यवस्था को सुदृढ़ किये जाने से राजनीतिक विकास में बाधा उपस्थित हो सकती है।

एक महत्वपूर्ण सीमा तक राजनीतिक नेताओं (अथवा "प्राधिकार" धारकों) का प्रभाव प्रशासकों को पारितोषिक अथवा दण्ड देने की उनकी क्षमता के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। सम्भव है कि एक दुर्बल "औपचारिक नेतृत्व" सांगठनिक लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए प्रशासकों को उचित रूप से पारितोषिक देने में समर्थ न हो। ऐसी अवस्था में सम्भव है कि साला के प्रशासक स्वयं के हितों की सुरक्षा की ओर अधिक ध्यान देने के लिए अभिप्रेरित हों। इस प्रकार साला के एक अधिकारी का व्यवहार एक ओर तो निर्णय-प्रक्रिया पर प्रभावशाली नियन्त्रण का हो सकता है, तो दूसरी ओर दायित्व-विहीनता का भी हो सकता है।

प्रिज्मैटिक समाज में एक प्रशासनिक अधिकारी साला की उत्पादकता के स्तर को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है। रिग्ज ने सुझाया है कि प्रशासनिक उत्पादकता और अधिकारीतंत्रीय सत्ता के बीच एक विपरीत अनुपात होता है-अधिकारी जितने अधिक शक्तिशाली होते हैं, प्रशासक के रूप में वे उतने ही कम प्रभावशाली होते हैं। उल्लेखनीय रूप से, साला के विभिन्न लक्षणों में से कुछ हैं-प्रशासनिक भर्ती-व्यवस्था में स्वजन पक्षपात, भ्रष्टाचार, अपव्यय, विधानों के प्रशासन में अकुशलता एवं सत्ता पाने तथा निजी हितों की रक्षा करने की अभिलाषा।

2.4 प्रिज्मैटिक समाज में परिवर्तन की समस्या

रिग्ज ने यह मत व्यक्त किया है कि पश्चिमी राष्ट्रों में विकास-प्रक्रिया के लम्बे समय में होने वाले फैलाव के कारण यह राष्ट्र अपने प्रभावशाली अथवा वास्तविक व्यवहार को निर्धारित (प्रेस्क्राइब्ड) व्यवहार के साथ धीरे-धीरे समंजित करने में समर्थ हो सके। फलस्वरूप, इन राष्ट्रों को समकालीन संक्रमणशील समाजों की अपेक्षा, रीतिवाद, विजातीयता और परस्पर-व्यापन की समस्याओं का कम सामना करना पड़ा।

यह उल्लेखनीय है कि एक प्रिज्मैटिक समाज को परिवर्तन के लिए बाह्य और आन्तरिक दबावों का सामना करना पड़ता है। यदि परिवर्तन प्रधान रूप से बाह्य दबावों (जैसे विदेशी प्राविधिक सहायता) के कारण होता है तो इसे "बहिर्जात" (एक्जो-जैनस) परिवर्तन कहा जा सकता है। इसके विपरित जो परिवर्तन प्रधान रूप से आन्तरिक प्रक्रिया द्वारा पोषित होता है, उसे "अन्तर्जात" (एण्डो-जैनस) परिवर्तन कहा-जाता है। जब परिवर्तन के लिए दोनों प्रकार के दबाव लगभग समान रूप से प्रभावशाली होते हैं तब जनित परिवर्तन को "समाज-स्त्रोतजात" (इक्की-जैनटिक) परिवर्तन कहा जा सकता है। रिग्ज ने परिकल्पना की है कि एक समाज में विवर्तन की प्रक्रिया जितनी अधिक बहिर्जात होगी, उसका प्रिज्मैटिक चरण उतना ही अधिक रीतिवादी एवं विजातीय होगा। इस प्रकार एक बहिर्जात प्रिज्मैटिक समाज में एक अन्तर्जात प्रिज्मैटिक समाज की अपेक्षा रीतिवाद, विजातीयता और परस्पर-व्यापन अधिक होने की संभावना है। यह अन्तर इस कारण होता है कि अन्तर्जात परिवर्तन के साथ, प्रभावशाली व्यवहार नये औपचारिक संस्थाओं की रचना से पहले घटता है लेकिन एक बहिर्जात रूपान्तरण में यह अनुक्रम विपरीत हो जाता है। यह विडम्बना है कि बाह्य प्रभाव से होने वाले परिवर्तन को यथासम्भव कम से कम समय में आत्मसात् करने के लिए प्रिज्मैटिक समाजों को रीतिवाद विजातीयता और आन्तरिक तनावों की उग्रता का सामान्यता और अधिक सामना करना पड़ता है।

2.5 मूल्यांकन

प्रिज्मैटिक-साला प्रतिमान के कतिपय मुख्य लक्षणों का आलोचनात्मक मूल्यांकन रिग्ज के सामाजिक और प्रशासनिक प्रणालियों के रीति-विज्ञान के व्यापक संदर्भ में अब किया जा सकता है। रिग्ज द्वारा प्रतिपादित पारिस्थितिकीय प्रतिमान विकासमान देशों में प्रशासकीय व्यवहार को अभिप्रेरित करने वाले सादर्भिक मूल्यों के विश्लेषण एवं उनको पहचानने हेतु वैचारिक उपकरण प्रदान करते हैं तथापि लोक प्रशासन में एक "वास्तविक" पारिस्थितिक अभिगम के अन्तर्गत प्रशासनिक प्रणाली और इसके पर्यावरण के मध्य पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन करना चाहिए तथा यह विश्लेषण करना चाहिए कि प्रशासनिक प्रणाली व पर्यावरण एक-दूसरे को किस प्रकार व किस सीमा तक प्रभावित करते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि रिग्ज के प्रिज्मैटिक समाज के विश्लेषण में मुख्य संकेन्द्रण प्रशासनिक संरचनाओं पर पर्यावरण के प्रभावों के विषय में है। उसके विश्लेषण में लोक प्रशासन को एक ऐसी आश्रित परिवर्ती (डिपैन्डैंट वैरिएबल) के रूप में देखा गया है जिसमें अपने पर्यावरण को नियन्त्रित करने अथवा सुधारने की बहुत कम स्वायत्तता अथवा स्वतन्त्र क्षमता हो। रिग्जीय प्रतिमानों का यह रूप साला तथा विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक पर्यावरण संरचनाओं के मध्य पारस्परिक क्रियाओं के विश्लेषण में स्पष्ट है किन्तु राजनीतिक प्रणाली और अधिकारीतंत्र के मध्य सम्बन्धों पर की गई रिग्ज की प्रस्थापना में ऐसा कम प्रकट होता है। तथापि, उसके विश्लेषण में स्वतन्त्र परिवर्ती (इन्डिपैन्डैट वैरिएबल्स) सामाजिक प्रणाली में अधिकारीतंत्र के बाहर ही रहते हैं। विश्व में बहुत से "प्रिज्मैटिक" समाजों में आपेक्षिक रूप से स्वायत्त प्रशासनिक उप-प्रणालियाँ, जो सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों का निर्देशन करने की क्षमता रखती हैं, पायी जाती हैं। प्रिज्मैटिक समाजों के विश्लेषण में यह ध्यान रखना चाहिए कि विभिन्न विन्यासों में प्रशासनिक प्रणाली की क्षमताएं भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। रिग्ज के प्रतिमानों में मुख्य बल प्रशासनिक तंत्रों के पर्यावरण की संरचना पर है न कि स्वयं प्रशासनिक

तंत्रों पर। उसकी प्राथमिक रूचि प्रशासनिक तंत्र के "छुट" एवं "आउटपुट" पक्षों की अपेक्षा "इनपुट" पक्ष पर अधिक प्रतीत होती है। प्रिज्मैटिक प्रतिमान आपेक्षिक रूप से प्रशासनिक तंत्रों के विश्लेषण के बजाय सम्पूर्ण विकासमान सामाजिक प्रणालियों को वैचारिकी प्रदान करने के रूप में अधिक सफल है। ऐसा मुख्यतया इसलिए है कि रिग्ज ने अपने द्वारा रचित सिद्धान्त-पुन्ज को लोक प्रशासन के संदर्भ में अभी तक पूरी तरह विकसित नहीं किया है।

प्रशासनिक तंत्र के पर्यावरण की संरचना के संबंध में उल्लेखनीय यह है कि रिग्ज के प्रतिमान इस सम्भावना पर अपर्याप्त बल देते हैं कि एक सामाजिक संरचना अन्य संरचनाओं को प्रभावित किये बिना भी स्वयं परिवर्तित हो सकती है, तथापि, अनुभवमूलक विश्व में ऐसे कई उदाहरण हो सकते हैं जबकि एक प्रिज्मैटिक समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक उपतंत्र तो प्रिज्मैटिक हो किन्तु उसके प्रशासनिक उपतंत्र आपेक्षिक रूप से डिफ़ैक्टैड हो। उदाहरण के लिए भारत और मलेशिया जैसे देशों में, उनके औपनिवेशिक अनुभव के फलस्वरूप राजनीतिज्ञों और प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिकाओं में उल्लेखनीय भिन्नता एव विशिष्टीकरण है-इन व्यवस्थाओं में सामान्य रूप से राजनीतिज्ञ प्रशासकों की तुलना में अधिक शक्तिशाली हैं। यद्यपि रिग्ज ने विभिन्न मिश्रित तंत्रों की संभावना का भी उल्लेख किया है, ऐसा प्रतीत होता है कि प्रिज्मैटिक प्रतिमान का मुख्य बल इस अवधारणा पर निर्भर है कि ऐसे समाजों में कतिपय संरचनाओं के सह-परिवर्तन की मात्रा ऊँची है। इस दृष्टिकोण से एक सीमित सांरचनिक संयोजनों का विन्यास ही बन पाता है। इसलिए संक्रमणकालिक समाजों के विश्लेषण के लिए अधिक "मिश्रित" प्रकार की श्रेणियाँ बनाने की स्पष्ट आवश्यकता है जो समाज में प्रत्ये उप-प्रणाली की स्वायत्तता की मात्रा को भी ध्यान में रखें।

इस प्रकार मिश्रित वैश्लेषिक श्रेणियों की अनुपस्थिति में, रिग्ज के विश्लेषण में कतिपय कारणात्मक (कॉजल) तात्पर्य-युक्त तत्वों का आभास होता है। उदाहरणार्थ, यह अनिवार्य रूप से सत्य नहीं है कि रीतिवाद से प्रशासनिक अधिकारियों की शक्ति बढ़े ही अथवा प्रशासकों की बड़ी हुई सत्ता प्रशासनिक अकार्यकुशलता को ही जन्म दे और न ही यह दावा किया जा सकता है कि प्रशासनिक अधिकारियों की राजनीतिज्ञों के नीचे अधीनता, सत्ता केन्द्रों की क्रियाशीलता को अनिवार्यता अधिक प्रभावशाली बनाती है। वास्तव में, काफी कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि "सत्ता" जैसा शब्द विविध प्रकार के सामाजिक पर्यावरणों में किस संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। इसी प्रकार, रिग्ज का विश्लेषण उसके द्वारा सुझाए सामाजिक और प्रशासनिक संरचनाओं के सहसम्बन्धों में कारणात्मक सम्बन्धों का भ्रम उत्पन्न करता है। यह तर्क किया जा सकता है कि कारणात्मकता के ये तत्व रिग्ज के आदर्श रूप निर्मितियों की तार्किक संरचनाओं के उपादान हैं, तथापि, अपने विश्लेषण के बहुत से बिन्दुओं पर रिग्ज ने प्रिज्मैटिक प्रतिरूपों एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या इस ढंग से की है कि ऐसा आभास होता है कि वह अनुभवमूलक विश्व में विद्यमान प्रतिरूपों का सत्यपूर्ण वर्णन ही कर रहा है।

हम यह जानते है कि रिग्ज प्रिज्मैटिक समाज के अन्तर्गत कतिपय सांरचनिक स्थितियों के बीच परस्पर सम्बन्धों पर अधिक विस्तार से परिकल्पना करके अपने विश्लेषण को अधिक उपयोगी बना सकता है। आर.एस. मिलने ने एक उदाहरण देते हुए यह बताया है किस प्रकार कतिपय सांरचनिक स्थितियाँ अन्य सांरचनिक लक्षणों के उदय एवं विकास होने के कारण बन सकती हैं। उसने परिकल्पना की है कि एक प्रिज्मैटिक प्रतिमान के अन्तर्गत दो स्थितियों में

प्रशासनिक अधिकारी सम्भवत: शक्तिशाली न हों-पहली, यदि वहाँ लोक सेवाओं की तटस्थता की परम्परा हो, और दूसरी यदि वहाँ राजनीतिज्ञ प्रशासनिक अधिकारियों पर नियन्त्रण करने में सक्षम हों। भारत में कुछ मात्रा तक दोनों विशेषताएं विद्यमान हैं, जब कि फिलिपीन में दूसरी विशेषता तो विद्यमान है किन्तु पहली नहीं। इस प्रकार रिग्ज के विश्लेषण में विभिन्न प्रिज्मैटिक समाजों के बीच सांरचनिक विविधताओं को सम्मिलित करने के लिए अधिक वैश्लेषिक श्रेणियों की रचना की आवश्यकता है।

2.5.1 परस्पर-व्यापन-एक प्रतिबन्धित विचार

यहां पर "परस्पर-व्यापन" के विचार का भी आलोचनात्मक विश्लेषण किया जाना वांछनीय प्रतीत होता है। रिग्ज के विश्लेषण में "परस्पर-व्यापन" को क्षेत्र सीमित दिखायी देता है, क्योंकि इस प्रत्यय का उपयोग केवल पाश्चात्य व्यवहारों पर आधारित संस्थाओं और पारम्परिक संस्थानों की साथ-साथ विद्यमानता को बताने के लिए ही किया गया है। इसमें संक्रमणकालिक समाजों में विद्यमान परस्पर व्यापन के कतिपय अन्य स्त्रोतों को सम्मिलित नहीं किया गया है। जॉन मॉटगोमरी ने यह मत व्यक्त किया है कि विकासमान देशों में योग्य व्यक्तियों को पूर्ण रूप से हटाये बिना प्रशासनिक सुधारों को लाने का एक रास्ता पहले से चले आने वाले प्रशासकों की प्रतियोगिता में एक नये प्रशासक-वर्ग को खड़ा कर कार्यो के दोहरेपन को जन्म देना है, अथवा पुराने अधिकारीतंत्र की पूर्णरूपेण उपेक्षा करना है। उदाहरण के लिए अर्द्ध-सार्वजनिक निगम और इसी प्रकार की अन्य संरचनाएं, राष्ट्रीय लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अधिकारी तंत्र को अभिप्रेरित कर सकती हैं और नियन्त्रित गैर-सरकारी क्षमताओं को विकसित भी कर सकती हैं।

एक विकासमान अथवा प्रिज्मैटिक समाज में जो सच है वह संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे "सापेक्षिक रूप से डिफ़ैक्टैड समाज" में भी सत्य हो सकता है। माईकल क्रोजियर ने मन्तव्य प्रकट किया है कि अमेरिकी प्रशासक एक ही विषय-क्षेत्र से संबंधित दो या तीन प्रतियोगी अभिकरणों की स्थापना करना अनुचित नहीं मानते। इन अभिकरणों का पारस्परिक संघर्ष निश्चित रूप से अपव्यय का कारण होता है, लेकिन यह संस्थाएं नये विचारों और रूचिकर परिवर्तन के साधन भी बनती हैं। इस प्रकार विकसित समाज, संरचनाओं की कम बहुकार्यात्मकता के बावजूद, परस्पर-व्यापन के संबंध में, यदि इसे व्यापक रूप से देखा जाये तो विकासशील समाजों से भिन्न नहीं हैं और यह भी उल्लेखनीय है कि परस्पर-व्यापन प्रशासनिक विकास की प्रक्रिया के लिए स्वयं दुष्प्रभावात्मक नहीं है, क्योंकि जैसाकि क्रोजियर ने टिप्पणी की है कुछ मामलों में यह "नये विचार और रूचिकर परिवर्तन" लाता है।

इस प्रकार रिग्ज के पारिस्थितिकीय प्रतिमानों में, विभिन्न विन्यासों में क्रियाशील परस्पर-व्यापन के अस्तित्व को अधिक मान्यता मिलनी चाहिए। आपेक्षिक रूप से डिफ़ैक्टैड समाजों में परस्पर-व्यापन के स्त्रोतों का विश्लेषण रिग्ज के प्रतिमानों की स्वत: शोधात्मक उपयोगिता को बढ़ा सकता है। अन्यथा, परस्पर-व्यापन के लक्षणों को मुख्य रूप से प्रिज्मैटिक समाज के साथ ही जोड़ना और इसी के साथ-साथ परस्पर व्यापन के दोषों को गिनाना केवल प्रिज्मैटिक समाजों का नकारात्मक चित्र ही प्रस्तुत करता है।

2.5.2 प्रिज्मैटिक प्रतिमान की नकारात्मक प्रकृति

सामान्यतया प्रिज्मैटिक प्रतिमान में पाश्चात्य पूर्वाग्रह की झलक देखी जा सकती है। यदि प्रिज्मैटिक लक्षणों को डिफ़ैक्टैड समाज के पहलू से देखा जाय तो तत्वत: वे दोषयुक्त ही प्रतीत होंगे। प्रिज्मैटिक प्रतिमान की नकारात्मक प्रकृति सर्वप्रथम तो प्रिज्मैटिक समाज में विद्यमान व्यवहार के वर्णन के लिए रिग्ज द्वारा प्रयुक्त शब्दावली से ही स्पष्ट हो जाती है। प्रिज्मैटिक समाज की क्रियाशीलता को लक्षित करने के लिए रिग्ज ने "मानकहीनता" "कर्मकांडवाद" (रिच्युअलिज्म), "अनुकरणशीलता" (माइमैटिक बिहेवियर) दानयुक्त व्यय, "बाजार कैण्टीन", "अनुदान प्राप्त कैण्टीन", "मिथ्यायें" (मिथस), "दुहरी बात" (डबल टॉक) तथा "हस्तक्षेप भावना" जैसे शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। निश्चित रूप से ये सभी शब्द मूल्य-निर्देशक हैं। वे प्रिज्मैटिक समाज के केवल नकारात्मक पहलुओं पर ही बल देते हैं। प्रिज्मैटिक प्रतिमान ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण आशय प्रस्तुत करता है कि एक प्रिज्मैटिक समाज में "नकारात्मकता" ही "यथार्थ" है। प्रिज्मैटिक शब्दावली के विपरित डिफ़ैक्टैड समाज की कमियों के लिए प्रयुक्त भिन्न शब्दावली है, जिसमें "बाजार अपूर्णता" एवं "घर्षण" (फ्रिक्शन) जैसे सहानुभूति-बोधक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

तथापि, शब्दावली, प्रिज्मैटिक प्रतिमान के पीछे छिपे दर्शन का केवल एक प्रतिबिम्ब है, जैसाकि माईकल मोनरो ने हाल ही में मत प्रकट किया है- "ऐसा प्रतीत होता है कि रिग्ज की सिद्धान्त रचना में प्रिज्मैटिक समाजों की क्रियाओं के मूल्यांकन के लिए मानदण्ड के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देशों की सामाजिक प्रणाली के लक्षणों का उपयोग किया गया है। इस प्रकार प्रिज्मैटिक समाजों में विकास के गतिरोधों की व्याख्या, अस्थिर एवं विभ्रान्त समाजों में डिफ़ैक्टैड मानकों के दुष्प्रभावपूर्ण प्रयोग के रूप में की जाती है।"

ऐसा प्रतीत होता है कि रिग्ज ने प्रिज्मैटिक समाजों की केवल उन्हीं क्रियाओं को अध्ययन के लिए चुना है जो पश्चिम के मितव्ययता, कार्यकुशलता एवं नैतिकता के आदर्श मानकों का उल्लंघन करती दिखायी देती है। उसने संक्रमणकालीन समाजों में पाये जाने वाले नैतिकता, कार्यकुशलता एवं मितव्ययता के मानदण्डों की विकसित देशों की कार्य-कुशलता, अपव्यय एवं अनैतिकता की स्थिति से तुलना करने का पूरक कार्य नहीं किया और उसका प्रतिमान तत्वत: विकासमान देशों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक उपप्रणालियों के निषेधात्मक पक्षों का ही विश्लेषण करता है। तार्किक रूप से एक अन्तर्निहित, आदर्शीकृत अमेरिकी तुलनात्मक संदर्भ में, प्रिज्मैटिक प्रतिमान एक मुख्यतया निषेधात्मक प्रकृति लिए उभरता है।

रिग्ज ने यह स्वीकारा है कि संयुक्त राज्य अमेरिका डिफ़ैक्टैड प्रतिमान के अति समीप है, यद्यपि उसमें कुछ प्रिज्मैटिक लक्षण भी दिखाई देते हैं। उदाहरणस्वरूप, अमेरिकी स्थानीय शासन में आज भी कानूनों व नियमों का उल्लंघन बड़ी मात्रा में होता है। किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा आपेक्षिक रूप से अन्य डिफ़ैक्टैड समाजों में प्रिज्मैटिक व्यवहार के इस प्रकार के संदर्भ रिग्ज के विश्लेषण की योजना में केन्द्रीय स्थान नहीं रखते। इस सम्बन्ध में मोनरो की व्याख्या अधिक विस्तृत है। उसने युक्ति दी है कि अमेरिकी सामाजिक संरचनाओं में बड़ी मात्रा में प्रिज्मैटिक लक्षण विद्यमान हैं। इसके कुछ उदाहरण हैं-नागरिक अधिकारों के मामले में अमेरिकी

संविधान के शब्दों और भावना का उल्लंघन, हड़तालों से संबंधित कानूनों के प्रति सार्वजनिक कर्मचारियों की उदासीनता, उच्च सरकारी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार, निर्धारित विधानों को तोड़ने वाली श्रमिक संघों की कार्यवाहियाँ, नियामक अभिकरणों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार, कराधान पद्धति में कमियाँ, बीमा प्रणाली की कमजोरियाँ, "माफिया" जैसा अपराधी समूह, राजनीतिक रूप से समर्थित एकाधिकारिवर्ग, प्रशासन में स्टाफ का आधिक्य और असाधारण सैनिक व्यय। इन उदाहरणों का अभिप्राय यह सिद्ध करना नहीं कि अमेरिकी समाज सापेक्षिक रूप से प्रिज्मैटिक है, अपितु केवल यह इंगित करना है कि सम्भवतया रिग्ज ने सापेक्ष रूप से डिफ़ैक्टैड समाजों में प्रिज्मैटिक लक्षणों के परिमाण और प्रकृति को कम करके बताया है। वास्तव में उसकी अवधारणा है कि सामाजिक संरचनाओं के विवर्तन एवं इन संरचनाओं में काम करने वाले व्यक्तियों के व्यवहार में विद्यमान वैध-तर्कपरतता के लक्षणों में निकट सह-सम्बन्ध है। इस प्रकार रिग्ज के पारिस्थितिकीय प्रतिमानों में, केवल कुछ अपवादों को छोड़कर, प्रिज्मैटिक व्यवहार को विशिष्टीकरण के मध्यम स्तर के साथ जोड़ा गया है, जब कि डिफ़ैक्टैड समाज में प्रिज्मैटिक व्यवहार के कारणों की विवेचना नहीं की गई। इस अभिगम का परिणाम यह प्रतीत होता है कि प्रिज्मैटिक व्यवहार के कारणों की विवेचना नहीं की गई। इस अभिगम का परिणाम यह प्रतीत होता है कि प्रिज्मैटिक समाजों के वास्तविक व्यवहार का मूल्यांकन डिफ़ैक्टैड समाजों के औपचारिक रूप से निर्धारित व्यवहार के संदर्भ में किया गया है। वैश्लेषिक रूप से इस दृष्टिकोण ने एक ऐसा असंतुलन उत्पन्न कर दिया है कि जिससे प्रिज्मैटिक प्रतिमान में नकारात्मक तत्व एवं तात्पर्य अत्यधिक महत्व ग्रहण कर लेते हैं। यदि एक आपेक्षिक डिफ़ैक्टैड समाज में पाये जाने वाले वास्तविक व्यवहार की श्रेणियों की रचना की जाये और तब उनका प्रयोग प्रिज्मैटिक-साला तंत्र की क्रियाशीलता का मूल्यांकन करने के लिए किया जाये तो सम्भवतया विकासमान राष्ट्रों की सामाजिक और प्रशासनिक संरचनाओं की प्रतिमा ऐसी निषेधात्मक नहीं होगी जैसी कि रिग्ज ने प्रिज्मैटिक प्रतिमान में प्रदर्शित की है।

रिग्ज ने प्रिज्मैटिक समाज का औपचारिक और वास्तविक दोनों प्रकार के मानकों और व्यवहारों में विश्लेषण किया है, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि उसने "कथित" लक्ष्यों और उद्देश्यों के समरूप माना है। सांगठनिक विश्लेषण ने यह स्पष्ट कर दिया है कि औपचारिक रूप से "निर्धारित" लक्ष्य बहुधा ' 'वास्तविक" लक्ष्य नहीं होते। यदि सामाजिक अथवा प्रशासनिक समाज के "वास्तविक" लक्ष्य नहीं होते। यदि सामाजिक अथवा प्रशासनिक समाज के "वास्तविक" लक्ष्यों पर विचार न किया जाये तो अनुमानित उद्देश्यों और वास्तविक निष्पत्ति के बीच अनिवार्य रूप से अन्तर पाया जायेगा। यद्यपि किसी सामाजिक संगठन के वास्तविक लक्ष्यों का अध्ययन कठिन है, "औपचारिक" लक्ष्यों का वास्तविक लक्ष्यों के रूप में विचारित करने का विकल्प भी खतरनाक है। संक्षेप में "औपचारिक", लक्ष्यों को "वास्तविक" लक्ष्य मानने के कारण प्रिज्मैटिक समाज का नकारात्मक चित्र ही उभर पाता है।

एक प्रिज्मैटिक समाज में डिफ़ैक्टैड व्यवहार की विद्यमानता को प्राय: उपेक्षित किये जाने के कारण रिग्ज के प्रतिमान में निषेधवाद की समस्या बढ़ गयी है। रिग्ज ने प्रिज्मैटिक समाज की विभिन्न संरचनाओं की प्रभावशीलता में अन्तरों के पहलू पर अधिक ध्यान दिया है। होसे एबवूबा ने बताया है कि फिलिपीन में अन्तरों के पहलू पर अधिक ध्यान दिया है। होसे एबवूबा ने बताया है कि फिलिपीन में प्रशासनिक निर्णय-प्रक्रिया में एक ओर तो पूर्णतया वस्तुगत (ऑबजैक्टिव) आधारों पर निर्णय किये जाते हैं, दूसरी ओर पूर्णतया आत्मगत (सब्जैक्टिव) आधार

पर ही निर्णय लिये जाते हैं। रिग्ज द्वारा विचारित प्रिज्मैटिक समाज में डिफ़ैक्टैड लक्षणों की भी विद्यमानता का यह एक उदाहरण है। इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी विभिन्न देशों में देखने को मिल सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रिग्ज ने अपने पारिस्थितिकीय प्रतिमानों में सामाजिक व्यवहार के इस पक्ष का केवल स्पर्श मात्र ही किया है।

2.5.3 रीतिवाद-धनात्मक एवं निषेधात्मक

रिग्ज द्वारा प्रयुक्त की गई शब्दावली में "रीतिवाद" (फॉर्मेलिज्म) औपचारिक रूप से निर्धारित और वास्तविक व्यवहार के बीच तथा मानकों और वास्तविकताओं के बीच अन्तर की मात्रा बताता है। रिग्ज के अनुसार प्रिज्मैटिक समाज की ये विशेषताएं प्रशासनिक भ्रष्टाचार, मनमाने प्रशासन और नियोजन-लक्ष्यों की उपलब्धि में बाधाओं के कारण बनती हैं। इस प्रकार रिग्ज के अनुसार, रीतिवाद विकासमान देशों के लिए दुष्प्रभावात्मक (डिसफन्शनल) है।

संरचनात्मक-कार्यात्मक (स्ट्रक्चरल फन्कशनल) विश्लेषण एवं पारिस्थितिकीय (इकॉलाजिकल) परिप्रेक्ष्य-दोनों ही सुझाते हैं कि एक विशिष्ट संरचना का सुप्रभावात्मक (यूफन्कशनल) अथवा दुष्प्रभावात्मक (डिसफन्कशनल) होना कई घटकों-विशेषतया उसके पर्यावरण पर निर्भर करता है, किन्तु रिग्ज ने "रीतिवाद" के अपने विश्लेषण में पारिस्थितिकी के इस पक्ष पर प्रचुर ध्यान नहीं दिया है। एक अर्थ में रिग्ज का यह निष्कर्ष कि रीतिवाद अधिकांश या सभी परिस्थितियों में दुष्प्रभावात्मक होता है, एक "पारिस्थितिकीयेतर" (नॉन-इकॉलाजिकल) दृष्टिकोण का भी प्रतिनिधित्व करता है। निषेधात्मक रीतिवाद के रिग्ज के इस विचार के प्रति संतुलन के लिए इ.एच.वॉल्सन ने "धनात्मक रीतिवाद" का नया विचार प्रस्तुत किया है।

भारत, फिलिपीन और स्तालिनवादी रूस में लोक प्रशासन के अनुभवमूलक कतिपय उदाहरणों के संदर्भ में वॉल्सन ने पाया है कि रीतिवाद एक सरकार के कई धीमी गति से चलने वाली औपचारिकताओं की उपेक्षा कर, ऐसे धनात्मक और रचनात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है जो विकास-प्रक्रिया के लिए उपयोगी हो सकते हैं। इस प्रकार के "उपयोगी" रीतिवाद को वॉल्सन ने "धनात्मक रीतिवाद" पॉजिटिव (फॉर्मेलिज्म) की संज्ञा दी है। जबकि निषेधात्मक रीतिवाद रिग्ज की शब्दावली में, "निषेधात्मक विकास" की ओर ले जाता है, धनात्मक रीतिवाद धनात्मक विकास की प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होता है। वॉल्सन ने बताया है कि एक देश के नेता रीतिवाद के वातावरण जहाँ कि निर्धारित मानकों को कम सम्मान दिया जाता है, का उपयोग इस ढंग से कर सकते हैं कि जिससे विकास की प्रक्रिया को तीव्र किया जा सके। मिलने ने सुझाव दिया है कि विकासमान देशों में प्रशिक्षण संस्थानों को, जहाँ तक भी वह व्यवहार्य हो वहाँ तक, लोक सेवकों को सकारात्मक रीतिवाद का प्रयोग करने के गुण की शिक्षा दी जानी चाहिए और इस विशेषता को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। यद्यपि रीतिवाद में औपचारिक प्रशिक्षण प्रदान करना कठिन हो सकता है, तथापि मिलने का यह विचार धनात्मक रीतिवाद को तुलनात्मक लोक प्रशासन में एक नये अर्थपूर्ण आयाम के रूप में उभार सकता है। धनात्मक रीतिवाद से यह सजगता भी उत्पन्न होती है कि लोक प्रशासन में उच्च उत्पादकता केवल "वास्तविकतावाद" के परिणामस्वरूप ही सम्भव नहीं बनती।

2.5.4 विवर्तन, समन्वयन और निष्पादन

आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक विकास में सामान्य परिवर्तियों की अपनी खोज में रिग्ज ने विवर्तन (अथवा सांरचनिक विशिष्टीकरण) की मात्रा को एक उपयोगी मानदण्ड पाया है। उसके विश्लेषण में, केन्द्रीय परिवर्ती संरचनाओं का बढ़ता हुआ विशिष्टीकरण है न कि उस विवर्तन का कोई परिणाम, चाहे यह परिणाम उत्पादकता, पूँजी निर्माण, आय-वितरण, व्यक्तिगत सुरक्षा अथवा अन्य किसी रूप में हो। इस प्रकार रिग्ज ने समाज में विवर्तन की मात्रा के विकास के स्तर के साथ सम्बन्धों की कोई विश्लेषणात्मक श्रेणियों की स्थापना नही की है, यद्यपि उसने यह मत व्यक्त किया है कि विवर्तन एवं विकास को पारस्परिक रूप से सम्बन्धित करना एक महत्वपूर्ण स्वत: शोधात्मक प्रयोजन सिद्ध कर सकता है। एक अन्य घटक जिसे रिग्ज के प्रतिमानों में कम स्थान मिला है, "प्रशासनिक समन्वय" का है। यद्यपि रिग्ज ने विकासमान देशों के संदर्भ में सामान्य रूप से अपर्याप्त समन्वय अर्थात् "एकीकरण' ' (इन्टीग्रेशन) की समस्याओं का उल्लेख किया है, उसके पारिस्थितिकीय प्रतिमानों में इस प्रकार की समस्याओं को प्रशासन की आन्तरिक सांगठनिक प्रक्रियाओं से नहीं जोड़ा गया है। तथापि, उसने हाल में यह मन्तव्य प्रकट किया है कि एकतंत्र जितना अधिक विशिष्टीकृत बनता है, अत्यन्त विशेषीकृत सांगठनिक भूमिकाओं का समन्वय करना उतना ही अधिक कठिन एवं जटिल कार्य बन जाता है। लेकिन रिग्ज ने अपने इस विचार को अधिक विकसित नहीं किया है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि प्रिज्मैटिक समाजों में अधिकतर समस्याएं समन्वय की कमी के परिप्रेक्ष्य में देखी जा सकती है, इन समाजों में राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के बीच, सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों के बीच, योजना अभिकरणों और प्रशासनिक संगठनों के बीच और केन्द्रीय अधिकारियों और विकेन्द्रित प्रशासकीय अंगों के बीच समन्वय का अभाव पाया जाता है। इस प्रकार प्रिज्मैटिक प्रतिमान की संरचना के अन्तर्गत समन्वयन की समस्याओं के विश्लेषण को सम्मिलित करने की स्पष्ट आवश्यकता है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि रिग्ज के पारिस्थितिकीय प्रतिमानों में विकेन्द्रीकरण और प्रशासनिक निष्पादन के बीच सम्बन्धों पर विशिष्ट परिकल्पनाएं निहित नहीं है लेकिन इन प्रतिमानों के बाहर किये गये अपने विश्लेषण में उसने इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत अवश्य किये हैं। "प्रशासनिक विकास" के विचार की विवेचना करते हुए उसने स्वीकार किया है कि सांरचनिक विशिष्टीकरण की मात्रा बढ़ने के साथ ही निष्पत्ति-स्तरों में भी परिवर्तन हो जाता है। रिग्ज के पारिस्थितिकीय प्रतिमानों की स्वत: शोधात्मक उपयोगिता निश्चित रूप से बढ़ सकती है यदि उनमें विवर्तन, प्रशासनिक समन्वय की मात्रा और सांगठनिक निष्पादन के मध्य परस्पर सम्बन्धों के विषय में परिकल्पना करते हुए कुछ वैश्लेषिक श्रेणियों को सम्मिलित किया जाये। माना कि और अधिक पीरवर्तियो के सम्मिलित करने से शोध-कार्य के कठिनतर बन जाने की संभावना है, लेकिन यदि रिग्ज के प्रतिमानों को और अधिक प्रशासनाभिमुख करना है तो समन्वय और निष्पादन के घटकों का और अधिक विकास किया जाना आवश्यक है। प्रशासनिक परिणामों पर अधिक ध्यान दिये जाने से इन प्रतिमानों के वैकासिक परिप्रेक्ष्य को भी बल मिलेगा।

रिग्ज के आदर्श रूप प्रतिमानों ने "प्रशासनिक पारिस्थितिकी" के महत्व को रेखांकित कर तुलनात्मक लोक प्रशासन में अनुसंधान को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। "तंत्रात्मक" प्रतिमान

जो समष्टि-समाशास्त्रीय (मैक्रो सोसियोलॉजिकल) अधिगम का अनुसरण करते हैं, तात्विक रूप से विश्लेषण की तर्क-संगत रचनाएं हैं तथा विभिन्न पीरवर्तियों में कुछ मिश्रित सम्बन्ध सुझाती हैं। इन रचनाओं में किसी "वैज्ञानिक सिद्धान्त" की परिशुद्धता की सम्भावना नहीं की जानी चाहिए। तथापि यह तर्क किया जा सकता है कि शोधकर्ताओं की सुविधा के लिए इस प्रकार के प्रतिमानों में प्रयुक्त प्रत्ययों को शोध के लिए व्यावहारिक (ऑपरेशनल) बनाया जाना चाहिए। रिग्ज के सिद्धान्त-पुंज के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से प्रासंगिक है क्योंकि रिग्ज की मान्यता है कि विशिष्टीकरण की मात्राओं को यथोचित रूप से मापा जा सकता है। उसका मत है कि जैसे-जैसे रीति-विज्ञान की तकनीकों में सुधार होगा, यह सम्भव हो जायेगा कि प्रत्येक देश, जैसे-थाइलैण्ड, मिस्र, फिलिपीन, मैक्सिको, जापान, स्पेन, ब्राजील, न्यूज़ीलैण्ड, इथियोपिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, इटली को विवर्तन के पैमाने पर रखा जा सके।

अपने वर्तमान रूप में, पारिस्थितिकीय प्रतिमान विभिन्न समाजों के बीच केवल गुणात्मक और कार्यात्मक तुलनाओं के लिए सक्षम है। लेकिन इस प्रकार की तुलनाएं भी "कम या अधिक प्रिज्मैटिक", "उच्च रूप से प्रिल्मैटिक" और "विशेष रूप से प्रिज्मैटिक" जैसी धारणात्मक श्रेणियों पर निर्भरता के कारण कम उपयोगी बन जाती हैं। जब विवर्तन को मापने के प्रयास किये जाते हैं तब लोक प्रशासन के लिए कुछ विशिष्ट समस्याओं का उठना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए "नीति-निर्माण" तथा "नीति क्रियान्वयन" के बीच और "स्वविवेक" (डिसक्रीशन) और "नियमों का अनुसरण" के मध्य सीमाओं को परिभाषित करना कठिन है। इनके तथा अन्य सम्भावित शोध समस्याओं के बावजूद पारिस्थितिकीय प्रतिमानों ने प्रशासनिक प्रणाली और इसके सामाजिक पर्यावरण के बीच पारस्परिक क्रिया के कतिपय महत्वपूर्ण पक्षों के प्रति सजगता उत्पन्न की है।

2.6 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि संकर-सांस्कृतिक प्रशासनिक प्रतिरूपों के अध्ययन मे वेबर के तथा रिग्ज के विश्लेषण एक सीमा तक एक-दूसरे के पूरक है। तत्वत: वेबर ने अधिकारीतंत्र के लक्ष्यों का वर्णन किया है जो कतिपय प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक विकासों के फलस्वरूप पनपा तथा जिसने इस प्रकार के विकास में योगदान भी दिया। दूसरी ओर रिग्ज इस बात का उत्तर खोजता हुआ प्रतीत होता है कि वर्तमान विकासमान राष्ट्रों में उसी प्रकार के अधिकारीतंत्र का विकास तेजी से क्यों नहीं हो रहा हैं।

पारिस्थितिकीय प्रतिमानों के निर्माण में रिग्ज पर वेबर की रचनाओं का प्रभाव सरलता से देखा जा सकता है। वेबर के समान ही रिग्ज ने तीन आदर्श रूप निर्मितियाँ प्रस्तुत की हैं जो तत्वत: निगमनात्मक (डिडक्टिव) हैं। जबकि वेबर की श्रेणियों का आधार एक अधिकारीतंत्र के साथ सम्बद्ध औचित्य अथवा वैधता (लेजिटिमेसी) का प्रकार है, रिग्ज का रीति-विज्ञान सांरचनिक विशिष्टीकरण की कसौटी पर आधारित है। इस प्रकार रिग्ज का विश्लेषण वेबर के गुणात्मक रूप से विशिष्ट आदर्श रूप प्रतिमानों से भिन्न है। तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि वेबर के वैध विवेकपूर्ण अधिकारीतंत्र के लक्षण रिग्ज के डिफ़ैक्टैड समाज में प्रभुत्व रखते हैं। विशिष्ट रूप से, वैध विवेकपूर्ण प्राधिकार प्रणाली में संरचनाओं की अपेक्षावृत्त स्वायत्तता का लक्षण विद्यमान है जो कि डिफ़ैक्टैड समाज की भी एक विशेषता है। इसी प्रकार, यह भी देखा जा सकता है कि रिग्ज

के फ्यूज्ड समाज में वेबर की पारम्परिक प्राधिक़ार प्रणाली के कई लक्षण विद्यमान हैं। इन दोनों ही प्रणालियों में सरल प्रकार का भूमिका विशिष्टीकरण पाया जाता है।

यद्यपि रिग्ज की श्रेणियों में वेबर की चमत्कारिक अधिकारीतंत्र प्रणाली के ठीक समानान्तर कोई तंत्र नहीं मिलता, नैत्यकीकृत (रूटिनाइज्ड) चमत्कार के कुछ लक्षण अनुभवमूलक "प्रिज्मैटिक" समाजों जैसे भारत, नेपाल और ईरान में पाये जाते हैं। चमत्कारिक समाज के अनुभवमूलक उदाहरण आज कुछ भिन्न हैं, क्योंकि अधिकांश चमत्कारिक व्यक्तित्व वाले नेता स्पष्ट रूप से आधुनिकीकरण के कार्यक्रमों में संलग्न हैं। रिग्ज की प्रधान रूचि समसामयिक प्रशासनिक प्रणालियों के अध्ययन में होने के कारण उसने चमत्कारी नेतृत्व की किसी श्रेणी को निर्मित नहीं किया है। संभवतया उसकी अवधारणा है कि एक उदीयमान राष्ट्र में यदि चमत्कारी नेता हो तो भी प्रशासनिक तंत्र सामान्यतया राजनीतिज्ञों के प्रभुत्व में नहीं होता। वेबर और रिग्ज के वर्गीकरण उनमें संयोजित पारिस्थितिकीय तत्वों की संख्या में भिन्न हैं। वेबर के विश्लेषण में प्रशासनिक कर्मचारियों वर्ग की प्रकृति प्राधिकार प्रणाली की प्रकृति के संदर्भ में समझी जा सकती है। वेबर ने प्राधिकार प्रणाली के कतिपय सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानकों को प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग की प्रकृति के साथ सम्बद्ध किया है, परन्तु प्रशासनिक प्रणाली पर आर्थिक पर्यावरण के प्रभाव पर उसके द्वारा किया गया विश्लेषण बहुत संक्षिप्त है। प्रशासनिक पारिस्थितिकी के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्षों पर रिग्ज की व्याख्या वेबर की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। उसने समसामयिक संरचनात्मक-कार्यात्मक अभिगम का उपयोग किया है और इस प्रकार उसके विश्लेषण में तंत्रात्मक अभिगम की प्रचुर झलक मिलती है, तथापि दोनों विद्वानों ने राजनीतिक प्रणाली और इसकी प्रशासनिक उप-प्रणाली के बीच पारस्परिक क्रिया पर उल्लेखनीय रूप से ध्यान दिया है।

वेबर द्वारा किये गये वैध-विवेकपूर्ण प्राधिकार-तंत्र में कार्यरत प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग का विश्लेषण, उसके पारम्परिक और चमत्कारिक प्राधिकार-तंत्रों में विद्यमान प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग के विषय में किये गये विवेचन की तुलना में विस्तृत है। दूसरी ओर रिग्ज की रूचि एक प्रिज्मैटिक समाज में "साला" की कार्यप्रणाली पर अधिक है तथा इस प्रकार डिफ़ैक्टैड और फ्यूज्ड समाजों के प्रशासनिक प्रतिरूपों पर उसने बहुत कम विश्लेषण किया है। दूसरे शब्दों में, रिग्ज ने वेबर के समान, सामाजिक-सांस्कृतिक विकास के कतिपय विशिष्ट चरणों पर खड़े राष्टों पर ध्यान केन्द्रित किया है-यद्यपि दोनों ने राष्ट्रों के विभिन्न विन्यासों को चुना-और इसलिए दूसरे राष्ट्रों पर, तुलना के उद्देश्य से, आकस्मिक ढंग से ही विचार किया है। इस प्रकार वेबर के विश्लेषण का मर्म वैध-विवेकपूर्ण प्राधिकार प्रणाली एवं इसका अधिकारीतंत्र है, जब कि रिग्ज के विचार-विमर्श का केन्द्रीय विषय प्रिज्मैटिक समाज और उसका "साला" उपतंत्र है। वेबर के अधिकारीतंत्र और रिग्ज के "साला" के मध्य मुख्य भेद इस प्रकार देखा जा सकता है -

	अधिकारीतंत्र	**साला**
1.	कार्यालयों का श्रेणीबद्ध व्यवस्था में संगठित होना	"विजायतीता" (हैटरोजिनीटी)
2.	प्रत्येक पद का परिभाषित कार्यक्षेत्र	"परस्पर-व्यापन" (ओवरलैपिग)
3.	अधिकारियों का उपलब्धि एचीवमेन्ट के आधार	भर्ती का आधार "प्राप्ति" (एटेनमैन्ट) पर चयन एवं स्वजन पक्षपात

4.	रीतिवाद (फॉर्मेलिज्म)	नियमों द्वारा प्रशासन
5.	"सार्वभौमिक" एवं निवैयक्तिक कार्य प्रणाली, प्रशासनिक अधिकारियों पर केवल उनके पद के विषय में ही नियुत्त किया जा सकता है एवं	अधिकारिक व्यवहार में वैयक्तिकीकृत मानक एवं
6.	निजी कोष का सार्वजनिक कोष से पृथक्करण	व्यापक अधिकारिक भ्रष्टाचार

इस प्रकार के अन्तर करने में यह समस्या है कि रिग्ज का आदर्श रूप "साला" प्रतिमान एक "मिश्रित" प्रकृति का है और इसमें "अधिकारीतंत्र" के लक्षणों के सभी समानान्तर अवयवों को स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट कर सकना कठिन है।

तथापि, दोनों ही वर्गीकरणों में सामाजिक और विशेष रूप से प्रशासनिक प्रणाली में "विकास" की व्यवस्था के लिए वैश्लेषिक श्रेणियों की कमी है। अधिकारीतंत्रीकरण के एक-दिशात्मक (यूनि-डायरेक्शनल) विकास की मान्यता आधुनिकीकरण के संकटों एवं चुनौतियों के अध्ययन में विशिष्ट सहायक नहीं है। इसी प्रकार रिग्ज ने अपने पारिस्थितिकीय प्रतिमानों में विकास पर बढ़ते विवर्तन के प्रभाव का विश्लेषण नहीं किया है। वेबर के प्रतिमानों में वैकासिक उन्मुखता की कमी का मुख्य कारण यह हो सकता है कि वेबर ने उन समाजों का अध्ययन नहीं किया जहाँ कि आधुनिकीकरण की गति उग्र थी। "तृतीय विश्व" का उदय वेबर के काल में नहीं हुआ था और यहां तक कि "द्वितीय विश्व" भी उसकी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही उदित होना प्रारम्भ हुआ था। दूसरी ओर रिग्ज की कृतियों पर बहुत से राष्ट्रों के उदय का प्रभाव है तथा अपने पारिस्थितिकीय प्रतिमानों के बाहर उसने विकास प्रशासन के उदीयमान क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

2.7 अभ्यास प्रश्न

1."फ्रैड रिग्ज की सैद्धान्तिकी एवं प्रतिमान" विषय पर एक लेख लिखिए।
2.एग्रेरिया और इंडस्ट्रिया से क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिए।
3.रिग्ज के पारिस्थितिक-वैकासिक परिप्रेक्ष्य की विवेचना कीजिए।
4.प्रिज्मैटिक समाजों की प्रकृति व व्यवहारशीलता की समीक्षा कीजिए।
5.प्रिज्मैटिक समाजों में परिवर्तन की क्या समस्या है? स्पष्ट कीजिए।
6.रिग्ज के प्रतिमानों का मूल्यांकन प्रस्तुत कीजिए।

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. फ्रैड रिग्ज: दी एडमिनिस्ट्रेशन इन डवलपिंग कन्ट्रीज-दी थ्योरी ऑफ प्रिज्मैटिक सोसाइटी, हाउटन मिफिलिन, बोस्टन, 1994
2. फ्रेड रिग्ज: मॉडेल्स एण्ड प्रोयोरिटीज इन दि कम्पैरेटिव स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, कम्पैरेटिव एडमिनिस्ट्रेशन ग्रुप, शिकागो, 1963

इकाई-3
विकास प्रशासन की विचारधारा

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 वीकास का संप्रत्यय
3.3 विकास प्रशासन के अध्ययन का महत्व
3.4 विकास प्रशासन एवं प्रशासनिक विकास
3.5 वैकासिक एवं विकासिकेतर द्विविभाजन
3.6 विकास प्रशासन में अनुभव-मूलक और आदर्श-मूलक घटक
3.7 विकास प्रशासन की पारिस्थितिकी
3.7.1 राजनीतिक संदर्भ
3.7.2 आर्थिक संदर्भ
3.7.3 सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ
3.8 इकाई सारांश
3.9 अभ्यास प्रश्न
3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई की रचना एवं प्रतिपादन के फलस्वरूप आप समझ सकेंगे -

- विकास प्रशासन की विचारधारा का अर्थ एवं प्रासंगिकता।
- विकास प्रशासन एवं प्रशासनिक विकास में अन्तर।
- विकास प्रशासन के नियामक आदर्श एवं अनुभव मूलक घटकों की क्रियाशीलता एवं प्रभाव।
- विकास प्रशासन की पारिस्थितिकी से तात्पर्य व उसकी रचनात्मकता की अर्थवत्ता।

3.1 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वान समकालीन विश्व में विविधतापूर्ण प्रशासनिक प्रणालियों में हो रहे त्वरित परिवर्तन की गहनता को समझने के उद्देश्य से नये विचारों की निरन्तर खोज कर रहे हैं। इस स्थिति में, उनकी मुख्य रूचि परिवर्तनशील अथवा विकासमान समाजों में लोक प्रशासन की समस्याओं में है। इस संदर्भ में पारम्परिक अमेरिकी प्रशासनिक सिद्धान्त अपूर्ण प्रतीत होते हैं। महत्वपूर्ण रूप से पाश्चात्य अथवा अमेरिकी प्रशासनिक विचार की अन्तर्निहित प्रस्थापनाएं "पारिस्थितिकीयेत्तर" (नॉन-इकॉलॉजिकल) अथवा "स्थिर" समझी गयी हैं। फ्रैड रिग्ज ने कहा है कि इस प्रकार की प्रस्थापनाएं उस सीमा तक पारिस्थितिकीयेत्तर हैं जहाँ तक कि वे प्रशासनिक व्यवहार को उसके पर्यावरण से सम्बद्ध करने में असफल रही हैं तथा सामाजिक संरचनाओं की मूल सांस्थानिक पद्धतियों के विकास की परिस्थितियों का अध्ययन नहीं कर सकी है। यह आवश्यक है कि इस प्रकार की आलोचनाएं उस पर्यावरणिक संदर्भ में देखी जानी

चाहिए जिनमें अमेरिकी प्रशासनिक सिद्धान्तों का विकास हुआ। वास्तव में, अमेरिकी प्रशासनिक सिद्धान्तों को तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास का आधार स्थापित करने का श्रेय देना चाहिए।

अल्फ्रेड डायमेंट का मन्तव्य है कि प्रशासनिक एवं सांगठनिक अध्ययनों की अधिकांश वैचारिक रचनाओं में "स्थिर स्थिति" अथवा "संतुलन" के प्रति झुकाव पाया जाता है। मेरी पार्कर फॉले, हेनरी फेयल, लूथर ग्युलिक, जेम्स प्ले और लिंडल उरविक जैसे लेखकों ने मूलत: सांगठनिक परिवर्तन की समस्याओं पर विचार नहीं किया, अपितु उन्होंने प्रधानतया संगठन के घोषित लक्ष्यों की प्रभावशील ढंग से पूर्ति पर बल दिया। तथापि फॉले और ग्युलिक की कृतियों में इस प्रकार की परम्परानिष्ठा अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। यद्यपि फॉले ने संगठन में समन्वयन के महत्व पर बल दिया है, वह उरविक-मूने के अभिप्राय में प्रयुक्त "नियन्त्रण" के विचारों की आलोचक थी। इसी प्रकार, ग्युलिक यद्यपि "पोस्डकार्ब" के विचार का प्रतिपादक है, संगठन में अनुकूलन की क्रिया के प्रति भी वह सचेत है। उसने यह महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किया है कि संगठन का एक सिद्धान्त यदि एक स्थिति में उपयुक्त सिद्ध होता है तो हो सकता है कि वह किसी अन्य स्थिति में उपयुक्त सिद्ध न हो। तथापि ग्युलिक एव फॉले की निर्मितियों में परिवर्तन के ये तत्व पूर्णतया विकसित नहीं हैं।

डायमेंट ने संगठन-सिद्धान्तों के अन्य विचारों पर अपने विश्लेषण में पाया है कि एल्टन मेयो, चैस्टर बरनार्ड, एफ.जे., रोथलिसबर्गर, हर्बर्ट साइमन, जेम्स मार्च, रॉबर्ट प्रैस्थस, रॉबर्ट मर्टन, फिलिप सैल्जनिक और टॉलकट पार्सन्स जैसे विद्वानों की वैचारिक रचनाओं में यह अवधारणा की गई है कि एक तंत्र (अथवा संगठन) जो एक परिवर्तन-प्रक्रिया के पूर्व "संतुलित" था, ऐसी प्रक्रिया के अन्त में अपनी "संतुलन" की स्थिति में वापस आ जायेगा। इसके विपरित, क्रिस आरजिरिस, विलियम गोर और बरट्रैम ग्रॉस की निर्मितियाँ तत्वत: "गैर-संतुलन" प्रकार की हैं। कार्ल डायश और डेविड ईस्टन के संचार-नियन्त्रण (साइबरनैटिक्स) प्रतिमान इससे भिन्न श्रेणी में आते हैं। संचार प्रतिमान प्रशासनिक सिद्धान्तों से प्रासंगिकता रखते हैं क्योंकि विभिन्न आकारों के उपतंत्रों के स्तर पर निरन्तर होने वाले परिवर्तन के अध्ययन को वे सम्भव बनाते हैं।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में कतिपय मुख्य निर्मितियाँ गतिशील तत्वों की उपेक्षा करती हैं अथवा उन पर कम ध्यान देती हैं। वेबर के आदर्श रूप अधिकारीतंत्र का प्रतिमान अनिवार्यतया एक "स्थिर स्थिति तंत्र" प्रतिमान है। इसी प्रकार, रिग्ज ने मुख्यत: प्रशासन और राजनीतिक प्रणाली के मध्य संतुलन पर बल दिया है, यद्यपि वह संतुलन में सम्भावित विघटन के विचार को भी स्वीकार करता है। दूसरे शब्दों में, वेबर और रिग्ज के प्रतिमान सामाजिक परिवर्तन को "पारम्परिक" रूप से, केवल संतुलन सिद्धान्त के संदर्भ में देखते हैं। इन प्रतिमानों में परिवर्तनशील पर्यावरण में तेजी से बदलने वाली प्रशासनिक प्रणालियों की गतिशीलता की व्याख्या करने के लिए उपयुक्त यान्त्रिकी का अभाव है। यह समझना तो सरल है कि वेबर के अधिकारीतंत्रीय प्रतिमान में, जो अपेक्षाकृत स्थिर पर्यावरण में कार्य करने वाले अधिकारीतंत्र के आदर्श रूप लक्षणों को बताने के लिए निर्मित किया गया था, इस प्रकार के गतिशील घटकों की कमी क्यों है, लेकिन रिग्ज के संतुलनोन्मुख प्रिज्मैटिक प्रतिमान को इस

प्रकार की आलोचनाओं से बचाना कठिन है, क्योंकि वह तत्वत: विकासमान देशों में प्रशासन की व्याख्या करने के उद्देश्य से ही निर्मित किया गया। तथापि, इसका यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि रिग्ज के प्रिज्मैटिक प्रतिमान में गतिशीलता के तत्वों का सर्वथा अभाव है-उसमें गतिशीलता के तत्व तो हैं लेकिन भली-भाँति विकसित रूप में नहीं।

दूसरी ओर, अमेरिकी प्रशासनिक सिद्धान्त और व्यवहार में प्रशासनिक परिवर्तन अथवा "सुधार" के कतिपय तत्व दीर्घकाल से विद्यमान रहे हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से ही अमेरिकी प्रशासनिक संस्थानों में छोटे-बड़े अनेक सुधार किये जाते रहे हैं। इस प्रकार के सुधार मुख्यतया कार्मिक एवं वित्तीय प्रशासन तथा संस्थानिक पुनर्गठन के क्षेत्रों में किये गये हैं। अकादमिक क्षेत्र में प्रशासनिक परिवर्तन से संबंधित कृतियों में प्रशासन के उन सिद्धान्तों पर बल दिया गया है जो मितव्ययिता और कुशलता को प्रोत्साहित करते हैं। इस प्रकार ऐसे सुधार प्रयासों में मुख्य चिन्ता "श्रेष्ठतम" सम्भव उपाय से प्रशासन चलाने के "साधनों" पर रही है। इस प्रक्रिया में "लक्ष्यों" अथवा "उद्देश्यों" के विश्लेषण पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। एक प्रकार से लक्ष्यों को सामन्यतया पूर्व-निश्चित माना गया तथा इन्हें मितव्ययिता तथा कार्यकुशलता के समकक्ष रखा गया। इस प्रकार मितव्ययिता और कार्य-कुशलता को साधन और साध्य दोनों के रूप में प्रयुक्त किया गया। साधनों और साध्यों की इस अस्पष्टता ने तब तक गम्भीर समस्या नहीं उत्पन्न की जब तक कि प्रशासनिक सिद्धान्तों को बड़े पैमाने के संगठनों के लिए जो "नैत्यक" (रूटीन) प्रशासनिक कार्यो में अथवा गैर-वैकासिक लक्षणों वाले कार्यो में सलग्र थे, के अध्ययन के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अग्रणी लेखक, मैक्स वेबर की कृतियों में भी संगठनात्मक व्यवहार में विवेक-संगतता के विचार को लक्ष्य-निर्धारण और लक्ष्य-प्राप्ति की जटिल प्रक्रियाओं के साथ भली-भाँति समन्वित नहीं किया गया। यही कारण है कि लोक प्रशासन के आरम्भिक अध्ययनों में, लक्ष्यों के विश्लेषण पर कम बल दिये जाने के संबंध में एडवर्ड वाइडनर ने टिप्पणी की है कि पारम्परिक लोक प्रशासन के साधनों का तो गुणगान किया किन्तु लक्ष्यों को भुला दिया।

प्रशासनिक सिद्धान्तों में इस रिक्तता की पूर्ति करने के संकल्प से आज से कुछ वर्ष पूर्व वाइडनर ने विकास प्रशासन के प्रत्यय को प्रस्तुत किया। अन्य विद्वानों के साथ रिग्ज ने भी इस प्रत्यय पर बल दिया है। विकास प्रशासन के संप्रत्यय की रचना का उद्देश्य यह अध्ययन करना है कि लोक प्रशासन सामाजिक लक्ष्यों की उपलब्धि हेतु विभिन्न पारिस्थितिकीय विन्यासों में किस प्रकार कार्य करता है और परिवर्तित भी होता है। इस विस्तृत परिप्रेक्ष्य में, "विकास प्रशासन" शब्द की अनेक व्याख्याएं की जा चुकी हैं। इन में से कतिपय अगले पृष्ठों में प्रस्तुत की जायेंगी। लेकिन, पहले इस विषय पर विचार करना उपयुक्त होगा कि विकास प्रशासन के कुछ सिद्धान्तकारो ने "विकास" शब्द का प्रयोग किन अर्थो में किया है।

3.2 "विकास" का संप्रत्यय

"विकास" शब्द के कौशलगत अर्थ उद्देश्य-मूलक हैं, क्योंकि वे इसका उल्लेख प्राय: उच्चतर, पूर्णतर और अधिकतर पीरपक्रतापूर्ण 'वर्धन' (ग्रोथ) की स्थिति के रूप में करते हैं।

तथापि विकास प्रशासन के विद्यार्थियों ने अन्तिम परिपक्व स्थिति को निश्चित किये बिना एक अवस्था से दूसरी अवस्था में समाज के गतिशील परिवर्तन के रूप में विकास को देखा है। विकास को "मन की एक स्थिति", एक "प्रवृत्ति", "एक दिशा" के रूप में भी देखा गया है। बजाय एक निश्चित लक्ष्य के, विकास एक विशिष्ट दिशा में परिवर्तन की गति है। इसके अतिरिक्त विकास को उस परिवर्तन के उस पक्ष के रूप में देखा गया है जो अभीष्ट अथवा नियोजित हो तथा शासकीय कार्यो से निर्देशित हो। यह भी विचार व्यक्त किया गया है कि विकास को "निष्पादन" और उत्पादकता अथवा "न्याय" और समानता के आदर्शो की सहायता से मापा जा सकता है। ये विभिन्न व्याख्याएं बताती हैं कि विकास का विचार, कम से कम जैसा कि वह विकास प्रशासन के साहित्य में पाया जाता है, पर्याप्त विस्तृत, मूल्य-आधारित और अस्पष्ट है।

रिग्ज ने विकास को विवर्तन के उभरते स्तर द्वारा सम्भाव्य सामाजिक प्रणालियों की वर्द्धमान स्वायत्तता (विवेक) की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। उसके अनुसार "विवेक" विकल्पों में से चुनाव करने की क्षमता है, जबकि विवर्तन एक सामाजिक प्रणाली में विशिष्टीकरण एवं एकीकरण की मात्रा बताता है। रिग्ज ने विवर्तन को विकास अथवा विवेक की वृद्धि के लिए आवश्यक और सम्भवत: पर्याप्त स्थिति माना है।

विवेक पर बल देने से ही रिग्ज विकास को मानव समाजों की अपने भौतिक, मानवीय और सांस्कृतिक पर्यावरणों को रूपायित करने की बढ़ी हुई क्षमता के रूप में देखता है। इस प्रकार एक विकसित तंत्र, एक "अर्ध-विकसित" तंत्र की अपेक्षा, अपने पर्यावरण को अधिक मात्रा में परिवर्तित करने में सक्षम होता है। ऐसी क्षमता का उपयोग उत्पादन वृद्धि हेतु भी किया जा सकता है, किन्तु एक विकसित प्रणाली में उत्पादन-वृद्धि अथवा "वर्धन" की दर कम भी हो सकती है, यद्यपि अनुभव-मूलक स्थितियों में इस प्रकार के उदाहरण कदाचित ही मिलते हैं। इस प्रकार एक तंत्र में बिना विवेक का स्तर बड़े भी, एक प्राविधिक अन्वेषण, विदेशी सहायता अथवा जलवायु में परिवर्तन जैसे पर्यावरणिक परिवर्तनों से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। दूसरे शब्दों में, ऐसे कई उदाहरण हो सकते हैं जिनमें वर्धन बिना "विकास" के हुआ हो।

3.3 विकास प्रशासन के अध्ययन का महत्व

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन दल ने विकास प्रशासन के क्षेत्र में अत्यधिक रूचि रखी है। निमरोद रफेली ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के साहित्य में दो मुख्य प्रेरक चिन्तन लक्षित किये हैं -

(1) सिद्धान्त-निर्माण और

(2) विकास प्रशासन

ये दोनों विचार परस्पर संयुक्त हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन में सिद्धान्त निर्माण का अधिकांश कार्य "विकास" से सम्बद्ध है जबकि विकास प्रशासन का अध्ययन सिद्धान्त निर्माण से जुड़ा है। इस प्रकार सिद्धान्त का विकास और विकास का सिद्धान्त साथ-साथ आगे बढ़े हैं। यह परस्पराश्रितता समझ में आने योग्य है, क्योंकि तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र प्रधान रूप से विकास की विभिन्न स्थितियों में कार्यरत राष्ट्रों की प्रशासनिक प्रणालियों की तुलना से संबंधित

है। यह स्वीकार किया जा चुका है कि इसके केन्द्रीय चिन्तन का विषय होने से विकास प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक लोक प्रशासन में विद्यमान प्राय: सभी अधिगमों का मिलन-बिन्दु हो सकता है। ऐसा इसलिए भी सम्भव है कि विकास प्रशासन के विचार को विस्तृत दृष्टिकोण से देखा जाता है तथा इसे केवल "विकासमान" देशों पर केन्द्रण तक ही सीमित नहीं रखा जाता। यह उल्लेखनीय है कि विकास प्रशासन तुलनात्मक लोक प्रशासन की कतिपय शाखाओं तथा कथित "नवीन" (अमेरिका) लोक प्रशासन का मिलन-बिन्दु भी हो सकता है।

3.4 विकास प्रशासन एवं प्रशासनिक विकास

"विकास प्रशासन" शब्द दो परस्पर सम्बद्ध अर्थो में प्रयुक्त होता है-प्रथम, यह विकास कार्यक्रमों के प्रशासन तथा बड़े पैमाने के संगठनों-विशेषतया सरकारी संगठनों द्वारा प्रयोग की गयी रीतियों एव उनके वैकासिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए रचित नीतियों और योजनाओं के कार्यान्वयन का उल्लेख करता है; दूसरे, इसमें प्रशासनिक क्षमताओं को सुदृढ़ करने का भाव सम्मिलित रहता है। ये दोनों पक्ष, अर्थात् विकास का प्रशासन और प्रशासन का विकास, विकास प्रशासन की अधिकांश परिभाषाओं में संयुक्त हैं।

एडवर्ड वाइडर के विचारानुसार विकास प्रशासन प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों की उपलब्धि की ओर संगठन के मार्गदर्शन की प्रक्रिया का रूप लेता है। ये विभिन्न लक्ष्य अधिकृत रूप से निश्चित किये गये होते हैं। इसी प्रकार के विचार होसे एबवूवा, इनायतुल्ला, बी.एस. खन्ना और हॉन बी ली ने भी व्यक्त किये हैं। विकास प्रशासन की इन अधिकांश परिभाषाओं का मुख्य बल एक "कार्यान्मुख" (एक्शन-ओरिएन्टेड) एवं "लक्ष्योन्मुख" (गोल-ओरिएन्टेड) प्रशासनिक प्रणाली पर रहा है। विकास प्रशासन के विद्यार्थियों ने स्वीकार किया है कि विकास का प्रशासन और प्रशासन का विकास कार्यात्मक रूप से एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। रिग्ज के अनुसार विकास प्रशासन के इन दोनों पक्षों की परस्पर सम्बद्धता में अंडे और मुर्गी के समान कार्य-कारण भाव है। सामान्य रूप से प्रशासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन पर्यावरण में परिवर्तन के बिना नहीं लाये जा सकते है और पर्यावरण स्वंय तब तक परिवर्तित नहीं हो सकता जब तक कि वीकास कार्यक्रमों के प्रशासन को सुदृढ़ नहीं किया जाता। इस प्रकार विकास के अध्ययन में सरकार की क्षमता एक महत्वपूर्ण परिवर्ती है। सामान्य रूप से, विकास प्रशासन पर किये जाने वाले अनुसंधान में प्रशासनिक प्रणाली और उसमें होने वाले परिवर्तनों को स्वतन्त्र परिवर्तियों के रूप में विचारित किया जाता है, जब कि विकास के लक्ष्यों को आश्रित परिवर्तियों के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार के विचार फ्रैड रिग्ज, एडवर्ड वाइडनर, जोजेफ लापालोम्बारा और मार्टिन लैण्डाउ के हैं तथा ये तुलनात्मक राजनीति के उन कतिपय विचारकों की स्थापनाओं से समानता रखते हैं जिन्होंने राजनीतिक विकास के अध्ययन में राजनीतिक प्रणालियों की स्वतन्त्र अथवा हस्तक्षेपकारी पीरवर्तियों के रूप में व्याख्या की है। राजनीतिक विकास के इस प्रकार के सिद्धान्तकारों में सेम्यूल हंटिंग्टन, कार्ल डायश, सेम्यूल आइसनस्टाड्स, रॉबर्ट होल्ड एवं जॉन टर्नर प्रमुख हैं।

"दक्षतापूर्ण" ढंग से विकास सम्बन्धी लक्ष्यों को उपलब्ध करने के लिए प्रशासनिक क्षमता में वृद्धि योजना-बद्ध विकास के विचार से सम्बद्ध है, जो निर्धारित कालावधि के अन्तर्गत न्यूनतम लागत से निश्चित लक्ष्यों को उपलब्ध करने के कार्यक्रम से सम्बन्धित है। निःसंदेह नियोजन का

विचार पारम्परिक लोक प्रशासन में भी, विशेष रूप से हेनरी फेयल और लूथर ग्युलिक की कृतियों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आज विकास प्रशासन नियोजन, नीति कार्यक्रमों और प्रायोजनाओं के सूत्रण और उनके कार्यान्वयन से निकट रूप से संबंधित है। यह उल्लेखनीय है कि दिशात्मक परिवर्तन को विकास प्रशासन का केन्द्रीय विषय माना गया है। वी.ए. पाई पनन्दीकर ने विकास प्रशासन को "योजनाबद्ध परिवर्तन के प्रशासन" के रूप में देखा है। तथापि, सम्भव है कि सभी आयोजन वैकासिक न हों, साथ ही समस्त विकास प्रशासन को नियोजित भी नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार, योजनाबद्ध दिशात्मक वर्धन और "तंत्र परिवर्तन", सम्भव है, साथ-साथ चलें अथवा न भी चलें। अन्ततः यह स्वीकार जा चुका है कि एक योजना अन्य "विवेकपूर्ण" प्रक्रियाओं की भाँति अभीष्ट एवं अनभीष्ट दोनों परिणाम प्रदान कर सकती है।

विकास प्रशासन के वैचारिकीकरण में किसी लक्ष्योन्मुख प्रतिमान के निर्माण से सम्बद्ध समस्याएं भी सम्मिलित हैं। जैसा कि सेम्युल काट्स का कहना है, विकास कार्य के लक्ष्यों को परिभाषित करना कठिन है। उदाहरणार्थ यह हो सकता है कि निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा रहा हो अथवा भविष्य में उनके प्राप्त होने की सम्भावना भी न हो, अथवा प्राय: यह हो सकता है कि ये लक्ष्य केवल प्रत्याशित लक्ष्य ही हों जो किन्हीं अन्य स्थितियों के अध्ययन पर आधारित हों जैसे कि जब एक विकासशील राष्ट्र विकसित राष्ट्रों की नकल का प्रयास करता है। लक्ष्यों की पहचान करना कभी भी सरल नहीं होता और जटिल वैकासिक परिवर्तन की स्थितियों में तो यह और भी अधिक कठिन हो सकता है। औपचारिक अथवा अनौपचारिक, व्यक्त अथवा अव्यक्त, अभिप्रेत अथवा अनभिप्रेत, नियोजित अथवा अनियोजित-ये कुछ आयाम हैं जिनको लक्ष्य-प्रतिमानों के विश्लेषण में ध्यान में रखना आवश्यक है। तुलनात्मक लोक प्रशासन में इन समस्याओं पर अधिक अनुसंधान नहीं हुआ है। परिणामस्वरूप, लक्ष्योन्मुखता के महत्वपूर्ण पक्षों पर स्पष्टता का अभाव "विकास" प्रशासन की यथार्थ प्रकृति के सम्बन्ध में कभी-कभी भ्रम का कारण बन जाता है।

3.5 वैकासिक तथा वैकासिकेत्तर द्विविभाजन

क्योंकि सभी संगठनों के कुछ लक्ष्य अवश्य होते हैं, अत: अपनी लक्ष्योन्मुखता के कारण वे विकास प्रशासन के उपक्रम परिधि के अन्तर्गत आने का दावा कर सकते हैं। इससे अन्ततोगत्वा वैकासिक और वैकासिकेतर (गैर-वैकासिक) सार्वजनिक संगठनों के मध्य भेद करने की समस्या उठ खड़ी होती है। यह माना जा चुका है कि सामान्य रूप से विकास प्रशासन और "पारम्परिक" (देखने में वैकासिक से भिन्न) लोक प्रशासन में यह समानता है कि दोनों ही इस बात से सम्बद्ध हैं कि किस प्रकार नियमों, नीतियों और मानकों का शासकीय संगठनों द्वारा क्रियान्वयन किया जाता है। दूसरी ओर यह दावा किया जाता है कि वैकासिक प्रशासनिक प्रणाली वैकासिकेत्तर प्रशासनिक प्रणाली से लक्ष्यों, क्षेत्र, जटिलता और अपने कार्यो में नवपरिवर्तन की मात्रा के सम्बन्ध में भिन्नता रखती है। इस प्रकार की भिन्नताओं को स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए इर्विग स्वैडलो ने एक नगर नवीकरण कार्यक्रम (देखने में वैकासिक) और नगर जल विभाग के संचालन (देखने में वैकासिकेत्तर) के उदाहरणों का प्रयोग किया है। स्वैडलो ने टिप्पणी की है कि सम्भवत: दोनों प्रकार के प्रशासनों में भिन्नता इन कार्यो के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाइयों की मात्रा, आवश्यक "मार्ग-दर्शन" की मात्रा, कार्य करने के अनिच्छुक लोगों को सचेष्ट करने के लिए उचित

कार्यविधि ढूँढने की कठिनाइयों, नगर के एक भाग की पुन: संरचना में विवादग्रस्त हितों के बीच समझौता कराने और सरकार व जनता के बीच नये सम्बन्ध स्थापित करने से सम्बन्धित हैं। स्वैडलो के इस मत के सम्बन्ध में वुड ने तर्क किया है कि एक विकासशील देश में एक नगर नवीकरण कार्यक्रम को पूरा करने तथा नगर के जल विभाग का संचालन करने दोनों के लिए नवपरिवर्तन, संसाधनों, लोक समर्थन और अन्तर-सांगठनिक समर्थन की आवश्यकताएं पूरी करने हेतु समान मात्रा में कठिनाईयों उपस्थित होने की सम्भावना है। वास्तव में एक "उदीयमान" राष्ट्र के अन्दर नगर जल विभाग के संचालन में एक विकसित राष्ट्र के नगर नवीकरण कार्यक्रम के सम्पादन की अपेक्षा अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। तत्वत: एक विकासशील देश में दोनों प्रकार के कार्य "वैकासिक" कहे जा सकते है। स्वैडलो की विकास प्रशासन की सामान्य परिभाषा का उपयोग करते हुए यह माना जा सकता है कि विभिन्न पारिस्थितिकीय विन्यासों में प्रशासनिक विभागों के विभिन्न "मिश्रण" वैकासिक कहे जायेंगे।

विकासशील समाजों में एक धारणा प्रचलित है कि विकास की प्रक्रिया किसी देश के राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् ही आरम्भ होती है। इस प्रकार सामान्य रूप से औपनिवेशिक और अनौपनिवेशिक प्रशासन तंत्रों के मध्य भेद किया जाता है। इस प्रकार की भिन्नताएं प्राय: इस तथ्य की उपेक्षा करती हैं कि औपनिवेशिक कालावधि में भी किसी देश में विकास के कार्यक्रम और योजनाएं बन सकती है, जैसा भारत में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार ने एक नियोजन एवं विकास विभाग की रचना द्वारा किया था। इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि एक स्वशासित देश भी वास्तविक रूप से "वैकासिक" कहे जाने वाले कार्य करने में असमर्थ हो। इस प्रकार यह दावा करना एक अति-सामान्यीकरण ही होगा कि औपनिवेशिक शासन 'कानून और व्यवस्था' का शासन है, जबकि स्वशासन के अन्तर्गत होने वाला लोक प्रशासन वैकासिक प्रशासन ही होता है। यह भली-भाँति स्पष्ट है कि अधिकांश उदीयमान राष्ट्रों में परिस्थितिवश सामाजिक व्यवस्था के अनुरक्षण को शीर्ष प्राथमिकता दी जाती है जब कि विकास के प्रयत्नों पर विविध समस्याओं के कारण कम ध्यान दिया जाता है।

एक प्रशासनिक प्रणाली के अन्तर्गत ही प्राय: कुछ संगठनों को वैकासिक माना जाता है जब कि दूसरे संगठनों को नहीं। वस्तुत: कतिपय संरचनाएं-जैसे विकास नियोजन की इकाइयाँ और विकास बैंक-ऐसी हो सकती हैं जो अपनी परिभाषा के अनुसार ही विशेष रूप से विकास कार्यक्रमों से संबंधित दिखाई देती हैं। तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि विशिष्ट रूप से कुछ वैकासिकेतर अभिकरण भी होते हैं। जब वैकासिक और वैकासिकेतर के मध्य स्पष्ट भेद प्रदर्शित किया जाता है और कुछ ही प्रशासनिक अधिकारियों को "वैकासिक अधिकारी" माना जाता है तो यह भय रहता है कि अन्य (वैकासिकेतर) अधिकारियों का मनोबल गिर सकता है और इस प्रकार का द्विविभाजन करने का परिणाम यह भी हो सकता है कि विकास के लिए "नये" संस्थानों पर बल दिया जाये तथा पूर्व-विद्यमान संस्थानों के परिवर्तन पर कम ध्यान दिया जाए। इस संदर्भ में यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि कराधान और कानून तथा व्यवस्था के संस्थानों की सफलता वैकासिक और उनके क्रिया-कलाप की सफलता के लिए आधारभूत है।

एक अन्य घटक जो वैकासिक एवं वैकासिकेतर प्रक्रियाओं के बीच द्विविभाजन में योगदान करता है वह यह विचार है कि विकास प्रशासन पूर्ण रूप से विकासमान देशों के प्रशासन से सम्बद्ध है। इस प्रकार की मान्यता "विकासमान" तथा "विकसित" राष्ट्रों के तुलनात्मक

विश्लेषण हेतु विकास प्रशासन की धारणा की उपयोगिता को केवल कम ही करती है। वास्तव में, अनुभवमूलक स्थितियों में पूर्ण रूप से वैकासिक अथवा पूर्णतया उद्देश्य-उन्मुख प्रशासन तंत्र को पाना लगभग असंभव है, तथापि कुछ विद्वानों ने यह माना है कि विकासमान देशों के सभी कार्यक्रमों में वैकासिक बल रहता है। वस्तुत: समकालीन तुलनात्मक लोक प्रशासन आन्दोलन से सम्बद्ध साहित्य में, "विकासमान" राष्ट्रों के प्रशासन तंत्रों के अध्ययन पर बहुत बल दिया गया है और "विकसित" देशों के प्रशासन तंत्रों के अध्ययन पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है।

विकासमान देशों की प्रशासनिक प्रणाली पर प्रधान रूप से बल देना तुलनात्मक प्रशासनिक दल के प्राथमिक लक्ष्यों के अनुरूप है किन्तु इस बल के सम्बन्ध में यह नहीं विचारना चाहिए कि इस क्षेत्र में भावी शोध पर सीमाएं बाँधता है। चूँकि "विकसित" देशों की सामाजिक प्रणालियाँ भी मूलभूत परिवर्तन के दौर से गुजर रही हैं, अत: यह अत्यावश्यक है कि लोक प्रशासन के विद्यार्थी सामाजिक परिवर्तन का सामना करने और उसको निर्देशित करने के लिए प्रशासनिक प्रणालियों की क्षमता बढ़ाने की आवश्यकता से सम्बद्ध प्रश्नों का अध्ययन करें। समकालीन पाश्चात्य राष्ट्रों में अनवरत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास ने नवीन प्रशासनिक समस्याओं को जन्म दिया है। फलस्वरूप, लोक प्रशासन के वैकासिक पक्ष पर उदीयमान संकेन्द्रण अमेरिकी प्रशासनिक सिद्धान्तों में भी अब देखा जा सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि "विकासमान" और "विकसित" समाजों में प्रशासन की प्रकृति के मध्य द्विविभाजन स्पष्ट नहीं हो सकता, यद्यपि यह स्वीकार करना पूर्णतया उचित है कि उदीयमान राष्ट्र त्वरित सामाजिक परिवर्तन की आपेक्षिक रूप से अधिक बड़ी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं।

कुछ विद्वानों ने विकास प्रशासन को प्रशासनिक प्रणाली में नव-परिवर्तन की ऊँची मात्रा से लक्षित माना है तथा यह मन्तव्य प्रकट किया है कि ऐसा नव-परिवर्तन प्रशासन गैर-प्रशासनिक तंत्रों में भी नव-परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करेगा। वाइडनर ने इस पक्ष पर बल देते हुए कहा है कि समाज को आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर करने हेतु निर्देशन देने एवं राष्ट्र-निर्माण तथा सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति की प्रक्रियाओं में योगदान दे सकने के लिए प्रशासनिक तंत्र की क्षमता-वृद्धि की समस्या वास्तविक रूप से प्रशासन में नव-परिवर्तन की शक्तियों को सुदृढ़ करने की समस्या ही है।

यह बलपूर्वक कहा गया हैं कि विकास प्रशासन, अपनी कृतियों से ही, नव-परिवर्तनकारी है। तथापि इसका यह अभिप्राय नहीं है कि कुछ ऐसी प्रशासनिक प्रणालियाँ भी हैं जिनमें परिवर्तन का सर्वथा अभाव है और इसलिए वे पूर्णतया वैकासिकेतर है। तत्वत: इसका अभिप्राय: है कि एक प्रशासनिक इकाई को जिसका ध्येय वैकासिक लक्ष्यों को प्राप्त करना है, सम्भवता नैत्यक (रूटीन) प्रशासनिक क्रिया-कलापों में व्यस्त इकाइयों की अपेक्षा नवपरिवर्तन तथा सृजनात्मकता की आवश्यकता अधिक है, किन्तु फिर भी एक पर्यावरणिक संदर्भ में जो नैत्यक है यह दूसरे संदर्भ में वैकासिक हो सकता है।

अत: यह स्पष्ट हो जाना चाहिए वैकासिक और वैकासिकेतर प्रशासनों के मध्य स्पष्ट भेद नहीं किया जा सकता। बहुधा आदर्श रूप अभिप्राय में प्रयुक्त द्वि-विभाजन को विशिष्ट मूर्त संगठन के समान मान लिया जाता है। राजनीति-प्रशासन के द्विविभाजन के समान, इस प्रकार की भिन्नताएं करने में यह भूल होती है कि जहाँ भिन्नताएं केवल बल देने की मात्रा में होती है, जैसे "उष्ण एवं शीतल" में वहाँ ठोस द्विविभाजन करने का प्रयास किया जाता है। इसी प्रकार जो

परिघटना एक विन्यास में "वैकासिक" है वह दूसरे विन्यास में सम्भव है वैसी न मानी जाये। तथापि जैसा कि "विकास प्रशासन" शब्द का साहित्य में प्रयोग किया जाता है, यह उन प्रशासनिक प्रणालियों अथवा संगठनों का संदर्भ प्रस्तुत करता है जो केन्द्रीय रूप से प्रगतिशील सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्यों को उपलब्ध करने से सम्बद्ध हैं और जो प्रवृत्तियों में तथा कार्यो में नव-परिवर्तनकारी हैं। इसके अतिरिक्त सामान्य शब्दावली में सभी "विकासशील" राष्ट्रों की प्रशासनिक प्रणालियाँ विकास प्रशासन की गत्यात्मक प्रक्रिया में संलग्न समझी जाती हैं।

3.6 विकास प्रशासन में अनुभव-मूलक और आदर्श-मूलक घटक

रीति-विज्ञान सम्बन्धी दो विभिन्न परिप्रेक्ष्य विकास प्रशासन की कृतियों में संयुक्त है। कतिपय विद्यार्थियों की रूचि प्रधान रूप से "आदर्शक" (नॉरमेटिव) प्रश्नों में है, जब कि कुछ अन्य की मुख्य रूचि अनुभव-मूलक प्रश्नों में है। वास्तव में रूचियाँ परस्पराश्रित हैं। सुधारात्मक सुझावों में रूचि रखने वाले विद्वान अनुभवाश्रित ज्ञान की सहायता लेते हैं, जब कि मुख्य रूप से अनुभव-मूलक अध्ययनों में रूचि रखने वाले विद्यार्थी प्राय: एक विषय का अध्ययन हेतु चुनाव इसकी सम्भाव्य नीति प्रासंगिकता को ध्यान में रख कर करते है। विकास प्रशासन के अध्ययन की "विकासमान" देशों में प्रशासनिक क्षमताओं को बढ़ाने की प्रक्रिया में विशेष रूचि रही है। इस प्रकार इस क्षेत्र में विविध आदर्शक प्रश्नों पर बल की विद्यमानता स्वाभाविक है।

नीति-विज्ञानों में मूल्यों के प्रश्न के सम्बन्ध में पर्याप्त रूचि होना स्वाभाविक है। इस केन्द्रण ने लोक प्रशासन के समस्त क्षेत्र को कार्यक्रमात्मक (प्रोग्रेमैटिक) लक्ष्योन्मुखता अथवा मूल्योन्मुखता प्रदान की है। विकास प्रशासन मूल्यों का चुनाव करने की प्रक्रिया का और उन तरीकों का जिनसे यह मूल्य विभिन्न पारिस्थितिक विन्यासों में प्रशासन को प्रभावित करता हैं, का अध्ययन करता है। इसके अतिरिक्त विकास प्रशासन का विचार प्रशासनिक साधनों को प्रशासनिक लक्ष्यों के साथ सम्बद्ध करने में सहायक है, और इस प्रकार विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में वैकासिक लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए उपयुक्त साधनों के चुनाव की प्रक्रिया में भी सहायता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त विकास प्रशासन का अध्ययन लोक प्रशासन के व्यवसायज्ञों को, उन स्थितियों की समीक्षा करने में जो इन विभिन्न विन्यासों में विकास की गति को अधिकतम करती हैं, सहायक हो सकता है।

3.7 विकास प्रशासन की पारिस्थितिकी

"विकास" के प्रत्यय में एक सामाजिक प्रणाली की अपने पर्यावरण को प्रभावित करने की क्षमता निहित है, इसलिए स्वभावत: इसके अध्ययन की प्रवृत्ति पारिस्थितिक होनी चाहिए। जैसा कि वाइडनर ने मन्तव्य प्रकट किया है कि सामान्य रूप से पर्यावरणिक घटक, और विशेष रूप से सांस्कृतिक घटक, समाज में प्रभावशाली परिवर्तन लाने का प्रयास करने वालों के लिए महत्वपूर्ण प्रासंगिकता रखते हैं। इस प्रकार के घटक सरकारी कार्यक्रमों एवं अन्य नव-परिवर्तन के परिणामों को प्रभावित करते हैं। इसलिए मानवीय संस्कृति और पर्यावरण में परिवर्तन, अधिकांश परिवर्तन-प्रतिबद्ध देशों के लक्ष्यों में उच्चतम प्राथमिकता रखते हैं।

किसी भी समाज के अन्तर्गत राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में विकास की प्रक्रियाएं प्रशासनिक प्रणाली से अन्तर-क्रिया करती हैं। अन्य शब्दों में, सभी सामाजिक

तंत्र (प्रशासनिक तंत्रों सहित) अपने पर्यावरण के साथ "आदान-प्रदान" की प्रक्रिया में संलग्न होते हैं और उससे प्रभावित होते हैं। एक प्रशासनिक प्रणाली उनके पर्यावरण से आने वाली मांगों और समर्थन दारा महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित होती है तथा यह मांग एव समर्थन रूपी "इनपुट्स" प्रशासनिक प्रणाली द्वारा इसके "उत्पादन" (आउटपुट) के जरिये नवीन रूप ग्रहण करते है। प्रशासनिक प्रणालियों का सामाजिक पर्यावरण कए बहुपक्षीय स्वरूप लिए हुए होता है तथा प्रशासनिक तंत्र के साथ गतिशील परस्पर-क्रिया करता है।

विकास प्रशासन की पारिस्थितिकी से सम्बद्ध साहित्य में पर्यावरण के राजनीतिक आयामों पर प्रधान रूप से बल दिया गया है, जब कि आर्थिक संदर्भ की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

3.7.1 राजनीतिक संदर्भ

क्योंकि संतुलित एवं असंतुलित राजनीति पर पूर्व में विचार-विमर्श किया जा चुका है, अत: यहां मुख्यतया प्रशासन के लिए प्राविधिक सहायता से सम्बद्ध राजनीतिक एव प्रशासनिक प्रश्नों पर विचार किया जायेगा।

संतुलित राजतंत्र के लक्ष्य का समर्थन करते हुए "संतुलित सामाजिक वर्धन" सिद्धान्त के समर्थक विकासमान राष्ट्रों में प्रशासन तंत्रों को दी जाने वाली प्राविधिक सहायता का समर्थन उस सीमा तक ही करते है जिस सीमा तक कि यह सहायता प्रशासन-तंत्र और राजनीतिक प्रणाली के मध्य संतुलन स्थापित करने और उसे बनाये रखने में सहायक हो। संतुलित सामाजिक वर्धन अभिगम के एक प्रमुख सिद्धान्तकार रिग्ज ने इस प्रकार की स्थिति के पीछे अपने दार्शनिक आधार वाक्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रतिसंतुलित करने वाली शक्तियों के अनुशासन में रहने वाले किसी समुदाय की आत्म-नियन्त्रण की शक्ति में उनका विश्वास अधिक हैं।

इस विचारधारा की अनेक प्रतिच्छायाएं ल्यूशियन पाई, सेमुएल आइसेनस्टाड्ट और जोजेफ लापालोम्बारा की आरम्भिक कृतियों में प्राप्त होती हैं। ये विद्वान् सामान्य रूप से इस विचार-बिन्दु पर सहमत हैं कि राजनीतिक प्रणाली को नियन्त्रित करने वाला प्रशासनतंत्र सम्मवत: वैकासिक उद्देश्यों के लिए प्रशासन की प्रभावशीलता बढ़ाने की अपेक्षा अपनी शक्ति बढ़ाने में अधिक रूचि रखता है। स्पष्टतया, इस प्रकार का संतुलनोन्मुख अभिगम विकासमान समाजों में गतिशील परिवर्तन की आवश्यकताओं के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील प्रतीत नहीं होता।

संतुलित सामाजिक वर्धन के पक्ष में दिये गये तर्क सामान्यतया इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं कि प्रशासनतंत्र को सामाजिक व्यवस्था के अन्य सांस्थानिक क्षेत्रों में वर्धन करने हेतु दी जाने वाली सहायता का लाभ, सम्भावित असंतुलन के खतरे की अपेक्षा अधिक है क्योंकि प्रशासनतंत्र आधुनिकीकरण के मानकों एवं प्रविधि विस्तार के उत्प्रेरक के रूप में भी कार्य कर सकता है। दूसरे शब्दों में, प्रशासनिक विकास को चाहिए कि वह समाज में अन्य प्रकार के विकास को प्रोत्साहित करे। कई विकासमान देशों में सम्भव है प्रशासनतंत्र ही केवल एकमात्र ऐसा सामाजिक संगठन हो जो त्वरित सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने में समर्थ हो। इसी प्रकार यह कहना कि राजनीतिक प्रणाली को नियन्त्रित करने वाला प्रशासनतंत्र विकास प्रशासन की प्रक्रिया की अपेक्षा राजनीति में अधिक रूचि रखेगा, इस सम्भावना की उपेक्षा करना है कि अपने स्थिरीकरण के साथ-साथ एक अधिकारीतंत्रीय राज्य प्राय: अपने विशिष्ट राजनीतिक और

प्रशासनिक कक्ष विकसित कर लेता है, इस प्रकार का विवर्तन प्राय: नये प्रकार के नियन्त्रण और संतुलन स्थापित कर लेता है। साथ ही जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है, एक अधिकारीतंत्रीय राजतंत्र अनिवार्य रूप से अकुशलत नहीं होता। विकासमान राष्ट्रों में समस्त प्रशासनतंत्रों को एक ही दृष्टिकोण से देखने का अर्थ संकर-राष्ट्रीय (क्रॉस-नेशनल) संदर्भ में कार्यरत विविध पारिस्थितिकीय घटकों के अधिकारीतंत्रीय राजतंत्र पर सूक्ष्म प्रभाव की उपेक्षा करना ही होगा।

विकासमान राष्ट्रों के लिए प्राविधिक सहायता का आधार निश्चित करने हेतु संतुलित सामाजिक वर्धन अभिगम की उपयुक्तता में विश्वास न करने वाले एक विद्वान् फैरल हैडी है जो "प्रामाणिक प्राविधिक सहायता" अथवा "प्रशासनिक तंत्र अभिगम" के समर्थक हैं। इस श्रेणी के अन्य विद्वानों में मरले फेन्सोड, सॉल काट्ज, जे.बी. वेस्टकॉट और ए.एच. हेन्सन उल्लेखनीय है। ये विद्वान सामान्यतया अपने विचारों को इस पूर्वानुमान पर आधारित करते हैं कि प्रशासनिक सुधार अथवा अधिकारी तंत्र का दृढ़ीकरण और प्रोन्नयन अपने आप में वांछनीय है और प्रशासनतंत्र की कुशलता को, सम्बद्ध राजनीतिक प्रणाली की प्रकृति का विचार किये बिना, बढ़ाया जाना चाहिए। अत: एक सीमा तक ये विद्वान् "संतुलित वर्धन" अभिगम के समर्थक विद्वानों के समान ही दोषी हैं, क्योंकि ये भी विकास सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए एक ही सार्वभौम उत्तर देने का प्रयत्न करते हैं।

राल्फ ब्रेबान्ती और मिल्टन एसमैन ने "असंतुलित सामाजिक वर्धन कार्यनीति" पर बल देकर अपेक्षाकृत एक अतिवादी स्थिति अपनाई है। एसमैन ने अधिकारीतंत्र को "सार्वजनिक सेवा" के एक शक्तिशाली, अपरिहार्य और सामान्यतया लाभप्रद अभिकरण-विशेषरूप से त्वरित परिवर्तन की उन परिस्थितियों में जब कि सामाजिक और आर्थिक प्रगति बड़ी मात्रा तक सरकारी निष्पत्ति पर निर्भर होती है-के रूप में देखा है। इसलिए, उसने ऐसी कार्यनीति का समर्थन किया है जो अधिकारीतंत्र के दुरूपयोग को नियन्त्रित करने की अपेक्षा, उसकी क्षमताओं को उच्चतर प्राथमिकता प्रदान करे। ब्रेबान्ती ने भी वृहत्तर राजनीतिक प्रणाली की प्रक्रिया की प्रकृति की उपेक्षा कर, प्रशासनिक सुधारों को एक स्वायत्त प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त किये जाने पर बल दिया है।

जोजेफ लापालोम्बारा और एडवर्ड वाइडनर ने इस संदर्भ में अपेक्षाकृत कम सुनिश्चित धारणाएं प्रस्तुत की हैं। लापालोम्बारा का तर्क है कि विभिन्न राष्ट्रों को प्राविधिक सहायता वहाँ के विशिष्ट राजनीतिक पर्यावरण को जिसमें विकास के लक्ष्य उपलब्ध करते हैं, ध्यान में रखकर दी जानी चाहिए। उसने यह भी युक्ति दी है कि सभी राष्ट्रों को वैधता (लेजिटिमेसी), निजत्व (आइडैन्टिटी), एकीकरण (इन्टिग्रेशन), बेधन (पैनिट्रेशन), सहभागिता (पार्टिसिपेशन) एवं वितरण जैसे "संकटों" का सामना करना पड़ता है, किन्तु ये संकट सभी देशों के समक्ष समान क्रम में अथवा समान गहनता और समान दबाव लिये नहीं आते। लापालोम्बारा ने सुझाव दिया है कि इन संकटों का समाधान करने के लिए विकासमान राष्ट्रों में नागरिक और सैनिक अधिकारी तंत्रों को प्रभावशाली भूमिका निभानी चाहिए तथा इस प्रकार त्वरित सामाजिक परिवर्तन की अवस्था में प्रशासनिक विकास को महत्वपूर्ण प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए।

इसी प्रकार, एडवर्ड वाइडनर ने-जो संतुलित सामाजिक वर्धन अभिगम का स्पष्ट आलोचक नहीं है-बल देकर कहा है कि प्राविधिक सहायता कार्यक्रमों के लिए उत्तरदायी पक्ष, सहायता देने के पूर्व राजनीतिक प्रणाली की पीरपक़ता की प्रतीक्षा नहीं कर सकता।

उस स्थिति में भी जब कि सहायता देने वाले राष्ट्र सहायता प्राप्त करने वाले राष्ट्रों के राजनीतिक विकास को बढ़ाना चाहते है, यह समझना कठिन है कि इस उद्देश्य की पूर्ति किन साधनों से कर सकते हैं। यद्यपि रिग्ज ने "राजनीतिक विकास के लिए विवेकशील रूप से विचारित कार्यक्रम चलाने की" सलाह दी है, उसने इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए कोई स्पष्ट सुझाव नहीं दिया है। वास्तव में, राल्फ ब्रेबान्ती ने सफलतापूर्वक तर्क दिया है कि "प्रत्यक्ष रूप से एवं विचारर्पूवक राजनीतिक प्रक्रिया को गति प्रदान करना, सहायता देने वाले राष्ट्र की क्षमता के बाहर है। "ब्रेबान्ती तथा अन्य विद्वानों के इस सम्बन्ध में दृष्टिकोण को फैरल हैडी ने स्पष्ट करते हुए मन्तव्य प्रकट किया है कि व्यवहार्य नीति का निर्णय करते हुए कुछ मूल विचार ध्यान में रखने चाहिए, ये विचार है-(1) राजनीतिक विकास के निर्देशन के सम्बन्ध में निर्णय लेना प्रधान रूप से विकासमान राष्ट्रों में आन्तरिक राजनीतिक निर्णयकर्ताओं का कार्य है, (2) सहायता प्रदान करने वाले बाहरी देशों का उस निर्णय में भाग लेना गौण, पारिधिक और सीमित मात्रा में ही हो सकता है, (3) इसलिए प्रभावशाली राजनीतिक शक्ति के धारकों दारा सहायता कार्यक्रम के लक्ष्यों की स्वीकृति ही इस प्रकार के कार्यक्रमों की सफलता के लिए पहली आवश्यकता है। हैडी की टिप्पणी बहुत से विद्वानो द्वारा स्वीकार्य इस धारणा को बताती है कि राजनीतिक और प्रशासनिक विकास परस्पराश्रित होते हुए भी, हो सकता है साथ-साथ न चलें। इसके अतिरिक्त एक त्वरित रूप से परिवर्तनशील सामाजिक तंत्र में इन दोनों प्रक्रियाओं के बीच संतुलन अनिवार्यतया आदर्श नहीं हो सकता। ये विचार विभिन्न पारिस्थितिकीय विन्यासों में विकास प्रशासन को सुदृढ़ करने के लिए तैयार किए गए कार्यक्रमों के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं।

3.7.2 आर्थिक संदर्भ

यह स्वीकार किया जा चुका है कि विकासमान राष्ट्रों के आर्थिक विकास में लोक प्रशासन एक महत्वपूर्ण आयाम है। रिग्ज की "विकास" शब्द की परिभाषा-एक सामाजिक प्रणाली के अपने पर्यावरण में संशोधन करने की क्षमता में वृद्धि के अर्थ में स्वीकार करते हुए यह परिकल्पना की जा सकती है कि आर्थिक विकास सामान्य रूप से प्रशासनिक विकास का सहगामी है। वॉरने इल्वमैन और रवीन्द्र भार्गव ने भी आर्थिक विकास के किसी प्रतिमान में प्रशासनिक क्षमताओं को महत्वपूर्ण परिवर्तियों के रूप में विचार करने की आवश्यकता पर बल दिया है। वीकासमान राष्ट्रों में आर्थिक विकास और प्रशासनिक सुधार के मध्य सम्बन्ध विकसित (मुख्यतया पाश्चात्य) राष्ट्रों में इस क्षेत्र में हुए ऐतिहासिक अनुभव के समानान्तर नहीं है। समकालीन आधुनिकीकृत राज्यों में आर्थिक प्रशासनिक सुधारों के पूर्व हुआ है जबकि अधिकांश विकासमान राष्ट्रों में इसके विपरित अवस्था रही है।

दूत आर्थिक विकास के लिए आर्थिक परियोजनाएं अधिकांश विकासमान राष्ट्रों में स्वीकृत उपकरण बन चुकी हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इन देशों में विकास प्रशासन सामान्य रूप से परियोजना-प्रशासन के इर्द-गिर्द घूमता है। जॉन मॉण्टगोमरी ने यह मत व्यक्त किया है कि विकास प्रशासन का अभिप्राय अर्थव्यवस्था (कृषि, उद्योग अथवा पूँजी अवस्थापना) में और राज्य की सामाजिक सेवाओं (विशेष रूप से शिक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य) में योजनाबद्ध परिवर्तन करने से है।

सामान्य रूप से विकासमान देश में राज्य एक प्रधान परिवर्तन-अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है और इसलिए आर्थिक विकास कार्यक्रमों को निष्पादित करने की उसकी क्षमता उत्पादकता के स्तर को निश्चित करने में महत्वपूर्ण होती है। प्रशासनिक तंत्र विकास लक्ष्यों की उपलब्धि हेतु अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए प्राय: मूल्यों का नया विन्यास ग्रहण कर लेता है। राजतंत्र के कार्यक्रमात्मक मूल्यों को प्रशासनिक मूल्यों में रूपान्तरित करना और उन्हें एक सांस्थानिक रूप प्रदान करना आवश्यक हो जाता है। विकासोन्मुख सांरचनिक और व्यावहारिक पद्धतियों की कमी ही अधिकांश विकासमान राष्ट्रों में योजनाओं की सफलता की मन्द गति का कारण होती है। उदाहरण के लिए जैसा कि फ्रैंक शेरबुड ने उल्लेख किया है, कई देशों में सार्वजनिक उद्योग आर्थिक उन्नति के दृष्टिकोण से प्राय: परजीवी प्रमाणित हुए हैं। उसने यह तथ्य रेखांकित किया है कि यद्यपि उदीयमान राष्ट्रों में आर्थिक उन्नति को प्रोत्साहित करने में समर्थ लोक प्रशासन के उपकरण के रूप में सार्वजनिक उद्योग उपयुक्त हैं, किन्तु वास्तव में जितना वे अर्जित करते हैं उससे अधिक व्यय करते हैं, तथा इस प्रकार वे सरकारी कोष से प्राप्त सहायता पर जीवित रहते है। तथापि "विकासमान" राष्ट्रों में इस प्रकार के आर्थिक-प्रशासनिक संगठनों के महत्व को देखते हुए तुलनात्मक लोक प्रशासन में उनके अध्ययन पर उचित रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

एक देश के सीमित आर्थिक संसाधन भी विकास लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए उसकी प्रशासनिक प्रणाली की क्षमता में बाधा उत्पन्न करते हैं। एक विकासमान देश, सम्भव है अपने यहां सार्वजनिक अधिकारियों के लिए उपयुक्त वेतन प्रणाली स्थापित करने में समर्थ न हो, क्योंकि आकर्षक वेतन प्रणाली की स्थापना मुख्य रूप से सुदृढ़ अर्थव्यवस्था पर निर्भर करती हैं। कुछ विद्वानों ने तो साम्यवादी राष्ट्रों के सार्वजनिक अधिकारियों के लिए "बाजार" सिद्धान्तों पर आधारित आर्थिक प्रोत्साहनों की आवश्यकता पर बल दिया है। यह तुलनात्मक प्रशासन के सिद्धान्तकारो के विचारों की नयी धारणा को प्रतिबिम्बित करता है। तथापि तुलनात्मक लोक प्रशासन के साहित्य में साम्यवादी राष्ट्रों की लोक प्रशासन प्रणालियों की अपेक्षाकृत उपेक्षा की गई है। इस प्रकार के देशों में सार्वजनिक उद्योगों का अध्ययन कतिपय ऐसी परिकल्पनाएं प्रदान कर सकता है जिनका विकासमान राष्ट्रों में परीक्षण किया जा सके।

अधिकाधिक रूप से यह स्वीकार किया गया है कि विकासमान राष्ट्रों में सार्वजनिक अधिकार सामान्यत: अपने न्यून वेतनों से असंतुष्ट होते हैं और यह असंतोष सार्वजनिक अधिकारियों में भ्रष्टाचार का मुख्य कारण बन जाता है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि राजनीतिक-प्रशासनिक विकास के संदर्भ में अधिकारियों के भ्रष्टाचार के विषय का प्रचुर महत्व होने पर भी इस क्षेत्र में अधिक शोध नहीं किया गया है। तथापि यह परिकल्पना की जा सकती है कि विभिन्न पारिस्थितिकीय विन्यासों पर निर्भर रहते हुए प्रशासनिक भ्रष्टाचार विकास प्रशासन हेतु दुष्प्रभावात्मक प्रमाणित हो भी सकता है और नहीं भी। इसी प्रकार, रीतिवाद भी कतिपय परिस्थितियों में सकारात्मक परिणाम दे सकता है।

आर्थिक विकास का नीचा स्तर भी मानवीय संसाधनों की किस्म को प्रभावित करता है। विकासमान देशों के प्रशासनिक संगठनों में प्राविधिक और प्रबन्धकीय कुशलता बहुत कम मात्रा में पाई जाती है तथा इन बाधाओं के उन्मूलन के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव है। फलत: मन्दतर प्रशासनिक कुशलता सामान्यतया आर्थिक जीवन में लक्ष्योपलब्धि के निम्न स्तर का एक अतिरिक्त कारण बनती है। इस विषय का पर्याप्त महत्व होते हुए भी विकास प्रशासन के

विद्यार्थियों ने प्रशासनिक विकास और आर्थिक विकास के पारस्परिक सम्बन्धों का विस्तृत अध्ययन अभी तक नहीं किया है।

3.7.3 सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

रिग्ज ने परिकल्पना की है कि केवल अधिक उन्नत देशों में औपचारिक और जटिल संगठन (समाजशास्त्रीय साहित्य में प्रयुक्त अर्थ में) निर्मित किये जाते हैं। उसकी अवधारणा है कि सामाजिक प्रणाली जितनी अविकसित होगी उसके लिए संगठनों का निर्माण उतना ही कठिन होगा। उसी प्रकार समाज में जितने कम संगठन होंगे उस समाज के लिए विकसित होना उतना ही अधिक कठिन होगा। रिग्ज ने अन्य सामाजिक संरचनाओं के साथ प्रशासनिक प्रणाली की परस्पर-क्रिया पर अपने लेखन में विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जटिल प्रशासनिक संगठनों की और "संगठनेत्तर" इकाइयों की, क्षमताओं के मध्य भेद स्पष्ट नहीं किया है। यद्यपि यह माना गया है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का उद्देश्य संकर-सांस्कृतिक विन्यासों में प्रशासनिक प्रणालियों की क्रिया-प्रणाली की व्याख्या करना है, फिर भी अभी तक एक विकासोन्मुख प्रशासनिक प्रणाली और उसके सांस्कृतिक विन्यास के मध्य परस्पर क्रिया का अध्ययन प्रचुर मात्रा में नहीं किया गया है।

रिग्ज ने यह मन्तव्य प्रकट किया है कि प्रत्येक संस्कृति में विकास को समर्थन देने वाले एवं उसका प्रतिरोध करने वाले घटक पाये जाते हैं। डेविड एप्टर ने विकास के समर्थक मूल्यों को "औपकरणिक" (इन्स्ट्रूमेंटल) और बाधक मूल्यो का "पूर्णताकारक" (कन्ज्युमेट्री) के रूप में वर्णन किया है। इस प्रकार उसने यह सुझाव दिया है कि समाज में आधुनिकीकरण के लिए पूर्णताकारक मूल्यों की अपेक्षा औपकरणिक मूल्य अधिक सहायक़ होते हैं। तथापि, उसने यह परिकल्पना प्रस्तुत नहीं की है कि पाश्चात्य समाजों में आवश्यक रूप से औपकरणिक मूल्य पाये जाते हैं अथवा पाश्चात्येतर समाजों में पूर्णताकारक मूल्य ही देखने को मिलते हैं। एक सिद्धान्तकार ने तो यहां तक कहा है कि किसी विशिष्ट क्षेत्र में विकास के लिए वास्तविक सांस्कृतिक बाधाएं बहुत अधिक नहीं होती हैं।

प्रशासनिक प्रणाली पर सामाजिक मूल्यों का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव की मात्रा एक प्रशासनिक संरचना द्वारा विकसित अपने विशिष्ट मूल्यों एवं समाज के मूल्यों की आपेक्षिक शक्ति पर निर्भर करती है। इस प्रकार प्रशासनिक संस्कृति, समाज की मूल्य संरचना द्वारा प्रभावित होती है। तथापि वे लोक-कर्मचारी जो युवावस्था में ही सरकारी सेवाओं में भर्ती कर लिये जाते हैं और एक सीमा तक समाज से पृथक् रहकर प्रशिक्षित किये जाते हैं, वृहत्तर समाज से भिन्न अपनी स्वयं की मूल्य-प्रणाली विकसित कर लेते हैं। प्रशासनिक प्रणाली की इस प्रकार की अर्धस्वायत्त मूल्य संरचना सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों में वैकासिक लक्ष्यों की उपलब्धि में सहायक हो सकती है और नहीं भी हो सकती। सम्भवत: यह प्रशासनिक प्रणाली में "औपकरणिक-उन्मुखता" की मात्रा पर निर्भर करेगा।

विकास प्रशासन के सांस्कृतिक संदर्भ के क्षेत्र में, धार्मिक मूल्यों, भाषाओं तथा अन्य सांस्कृतिक घटकों को विकास प्रशासन के साथ जोड़ने का कोई महत्वपूर्ण प्रयत्न नहीं किया गया है। यह स्थिति विकास प्रशासन की पारिस्थितिकी के अध्ययन की आरम्भिक अवस्था की द्योतक है।

3.8 सारांश

यद्यपि विकास प्रशासन का विचार समस्त लोक प्रशासन सम्बन्धी साहित्य में अधिकाधिक लोकप्रिय होता जा रहा है, किन्तु निकट भविष्य में इसके प्रधानतया द्रुतगामी सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए कार्यरत शासकीय तंत्रों (अथवा संगठनों) के अध्ययन तक सीमित रहने की संभावना है। इस प्रत्यय का उपयोग करने वाले विद्वानों की मुख्य चिन्ता सम्भवत: "उदीयमान" राष्ट्रों के प्रति ही रहने की सम्भावना है जो सामाजिक-प्रशासनिक परिवर्तन की चुनौती का सामना कर रहे हैं। विकास प्रशासन का क्षेत्र सम्पूर्ण तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र और नये (अमेरिकी) लोक प्रशासन के लिए भी मिलन-बिन्दु बनने की अन्तःशक्ति रखता है। इसी प्रकार विकास प्रशासन के अध्ययन में आदर्शक और अनुभवमूलक केन्द्रण का संयोजन सम्भवत: "नीति-विज्ञान उन्मुखता" को सामान्य रूप से सुदृढ़ करता है।

तथापि, विकास प्रशासन के कतिपय पक्षों का अभी तक केवल आंशिक रूप से ही विश्लेषण किया गया है। विकास प्रशासन के पारिस्थितिकीय संदर्भ के विषय में, साहित्य में मुख्य बल राजनीतिक आयामों पर रहा है। इस क्षेत्र में भी मुख्य ध्यान संतुलित और असंतुलित राजतंत्रों के निर्माण के प्रश्न पर ही केन्द्रित रहा है। इस विषय पर विचार-विमर्श में विशिष्ट समाजों की सामाजिक-प्रशासनिक स्थितियों के अध्ययन की आवश्यकता पर कम बल दिया गया है। संतुलित और असंतुलित राजतंत्रों की "निष्पत्ति" के सम्बन्ध में भी अधिक विचार-विमर्श नहीं किया गया है और इसी प्रकार न तो प्रशासनिक प्रण्हलियों पर आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रणालियों के पड़ने वाले प्रभाव पर अधिक शोध कार्य किया गया है और न ही सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण में पीरतर्वन लाने में एक प्रशासन-तंत्र की सामर्थ्य की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। विकास प्रशासन के इन महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय पक्षों पर अधिक बल देने के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्यार्थियों को अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मानव विज्ञान जैसे अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ अन्तर-विषयास्थ्य सहयोग विकसित करना चाहिए।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. "विकास प्रशासन की विचारधारा" विषय पर एक लेख लिखिए।
2. विकास का संप्रत्यय क्या है? स्पष्ट कीजिए।
3. विकास प्रशासन के अध्ययन का क्या महत्व है? चर्चा कीजिए।
4. विकास प्रशासन एवं प्रशासनिक विकास में अन्तर प्रतिपादित कीजिए।
5. विकास प्रशासन के आदर्श एवं अनुभवमूलक घटक क्या है? वे कैसे चरेतार्थ होते है? विवेचना कीजिए।
6. "विकास प्रशासन की पारिस्थितिकी" विषय पर एक लेख लिखिए।

3.10 संदर्भ ग्रन्ध सूची

1. निमोद रफैली रीडिंग्स इन कम्पैरेटिव एडमिनिस्ट्रेशन, एलिन एण्ड बैकन, बोस्टन, 1967
2. डी. वाल्डो टैम्पोरल डाइमैन्शन्स ऑफ डवलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, डरहम, 1970

3. इरविंग स्वैडलो (सं.) डवलपमेन्ट एडीमनिस्ट्रेशन-कॉन्सेप्ट्स एण्ड प्रोब्लम्स, सिराक्यू यूनिवर्सिटी प्रेस, सिराक्यूज (न्यूयॉर्क), 1963
4. सैमुअल पी. हटिगटन पोलिटिकल ऑर्डर इन चेंजिंग सोसाइटीज, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हेवन, 1968

इकाई-4

लोक प्रशासन में सिद्धान्त निर्माण के लिए तुलनात्मक शोध एक पद्धति के रूप में

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सिद्धान्त निर्माण का अर्थ

4.3 सिद्धान्त निर्माण की आवश्यकता

4.4 सिद्धान्त निर्माण के लक्षण

4.5 सिद्धान्त निर्माण के आधार

4.6 तुलनात्मक शोध पद्धति

4.6.1 तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के उद्देश्य

4.6.2 तुलनात्मक अध्ययन पद्धति की स्थितियाँ समस्याएं एवं समाधान

4.7 सारांश

4.8 समस्याए एवं समाधान

4.9 शब्दावली

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन उपरांत आप समझ सकेंगे -

- लोक प्रशासन की सिद्धान्त निर्माण की क्षमता की स्थिति, समस्याएं एवं समाधान;
- लोक प्रशासन में पद्धति की सीमाएं;
- तुलनात्मक शोध पद्धति का लोक प्रशासन की क्षमता वृद्धि में योगदान; एवं
- सिद्धान्त निर्माण की भविष्य में सम्भावनाएं।

4.1 प्रस्तावना

किसी भी विषय को विज्ञान बनाने के लिए आवश्यक है कि उस विषय के स्वतन्त्र व्यक्तित्व हेतु मौलिक सिद्धान्तों की खोज एवं विकास किया जाये। यह मौलिक सिद्धान्त ऐसे होने चाहिए जो कि विषय के आधारभूत तत्वों को न केवल सहारा दे सके बल्कि विषय के विकास में योगदान कर सकें। मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर ही विज्ञानों की दुनिया में विषय की मान्यता एवं स्थिति निर्भर करती है। समाज विज्ञान प्राचीनतम होते हुए भी विज्ञानों की दुनियां में मान्यता देर से तथा स्थिति निम्नतर प्राप्त कर सका। इसका मुख्य कारण समाज विज्ञान में मौलिक सिद्धान्तों की कमी अथवा उनकी सत्यापन प्रक्रिया का विकसित नही होना माना गया है। प्रकृति विज्ञान मौलिक सिद्धान्तों की भरपूर उपलब्धि एवं सत्यापन की सरल प्रक्रिया से विज्ञानों की दुनियां में प्रथम स्थान पर पहुंच गया है। हमारा यहां यह अर्थ नहीं है कि हम प्रकृति विज्ञानों से

इतर अन्य विज्ञानों को उच्च स्तर प्रदान करने से हिचकिचाए। वास्तव में, हम यहां यह कहना चाहते हैं कि सिद्धान्तों के आधार पर किसी विषय को मान्यता एवं स्थिति प्राप्त होती है। सिद्धान्तों की खोज के लिए आवश्यक है कि हमारे पास परिशोधित एवं परिभाषित सिद्धान्त सत्यापन प्रक्रिया हो। समाज विज्ञान के लिए यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात रही है कि इसके पास सिद्धान्त तो बहुत हैं परन्तु उनके सत्यापन के लिए मौलिक, निश्चित, परिशोधित एवं परिभाषित प्रणाली एवं पद्धति नहीं है। परिणामत: यह विज्ञानों के विभिन्न क्षेत्रों में वह स्थान प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका जो कि उसे अन्य विज्ञानों से पूर्व हो जाना था।

जब हम समाज विज्ञान के क्षेत्र में लोक प्रशासन विषय पर दृष्टि डालते हैं तो स्थिति अत्यन्त कमजोर, असन्तोषजनक एवं असफल भविष्य से परिपूर्ण दिखाई देने लगती है क्योंकि लोक प्रशासन को अभी तक राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र एवं प्रबन्ध विषयों से अलग नहीं समझा जाता है। राजनीति विज्ञान को "मास्टर साइन्स" माना जाता है अत: लोक प्रशासन उसी का ही एक भाग बनकर रह गया है। यह एक विवादास्पद विषय है कि लोक प्रशासन को किन आधारों पर राजनीति विज्ञान से अलग किया जाये। लोक प्रशासन को स्वतन्त्र विषय बनाने का एकमात्र साधन मौलिक सिद्धान्तों की खोज एवं उन्हें विकसित करने की पद्धति का विकास करना है। लोक प्रशासन के समक्ष मुख्य परेशानी यह है कि वह जिस सिद्धान्त को अपना घोषित करना चाहता है वही सिद्धान्त किसी न किसी रूप में समाज विज्ञानों के किसी विषय से जुड़ा हुआ दिखाई देने लगता है। स्थिति यह हो गई है कि लोक प्रशासन के क्षेत्र विद्वानों ने इसे क्रिया-विज्ञान घोषित करके अपना पीछा छुड़ाना आरम्भ कर दिया है। यदि इसे हम क्रिया विज्ञान भी मान ले तो नीति-विज्ञान के सन्दर्भ से अपने आप अनचाहे जुड़ जाते हैं और स्थिति फिर वही आ जाती है कि हम इसे स्वतन्त्र विषय बनाने में असमर्थ हो जाते है। अत: लोक प्रशासन को मान्यता प्राप्त स्वतन्त्र विषय बनाने से पूर्व हम इस विषय में सिद्धान्त निर्माण में आने वाली समस्याओं की और दृष्टि ड़ाले तथा यह ज्ञात करने का प्रयास करें कि लोक प्रशासन में क्या अभी तक ऐसे लक्षण नहीं है जो कि इसको स्वतन्त्र विज्ञान का जामा पहिना सकें। इन बातों को जानने के लिए हमें उन आधारभूत बातों को जानना होगा जो कि सिद्धान्त निर्माण के लिए आवश्यक है तथा लक्षणों की ओर इंगित करती है।

कल्पना या सिद्धान्त शब्द का प्रयोग यहां उस अर्थ मे नहीं किया जा रहा है जिस अर्थ में सिद्धान्त या मूल तत्व का होता है। कल्पना या सिद्धान्त प्रकार के सिद्धान्त कल्पना पर आधारित भी हो सकते हैं जबकि वितीय प्रकार के सिद्धान्त किसी विषय के मूल तत्व या मूलाधार होते हैं। किसी एक मूलतत्व या मूलाधार के सम्बन्ध में कई कल्पनाएं या सिद्धान्त हो सकती हैं। किसी एक सिद्धान्त को हम किसी विषय का मूलतत्व या मूलाधार नहीं कह सकते है। अत: इस मूल अन्तर को ध्यान में रखते हुए हम यहां सिद्धान्त शब्द का प्रयोग करेंगे।

4.2 सिद्धान्त निर्माण का अर्थ

सामान्यत: सिद्धान्त का अर्थ एक ऐसी सामान्यकरण से लिया जा सकता है जो किसी व्यवस्था के आनुभविक अध्ययन या परीक्षण पर आधारित हो। सिद्धान्त का जन्म या आधार सामान्यत: व्यवहार होता है। सिद्धान्त का उद्देश्य घटना के बारे में सामान्यीकृत विचार स्वीकृत करना कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त को हम ऐसी कल्पना भी कह सकते हैं जो

कि आनुभविक अध्ययन या परीक्षण से पूर्व बना ली जाती हैं। परन्तु ऐसी कल्पनाओं को सिद्धान्त कह देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है क्योंकि ऐसी कल्पनाएं परीक्षित नहीं होती हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी कल्पनाओं में पूर्ण सूचनाओं का अभाव भी रहता है। सिद्धान्त का अर्थ वैज्ञानिक आधार पर ऐसे कथ्य या कथनों का एक तैयार किया गया सैट कहा जा सकता है, जो कि विधि या उपसर्ग कहे जाते हैं, वे एक दूसरे से सम्बन्धित होते है और व्यवस्था या घटना के विभिन्न चरों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रकट करते है। इस परिभाषा के अनुसार सिद्धान्त के निम्न अर्थ प्रकट होते है: (1) कथन (2) विधि एवं (3) उपसर्ग जो कि विभिन्न चरों या तत्वों के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट कर सकें तथा किसी व्यवस्था या घटना का कारण सामान्यकृत कर सकें। अर्थात् कोई भी सिद्धान्त घटना या व्यवस्था के कारण का परिणाम भी हो सकता है। किसी भी सिद्धान्त की सत्यता इस बात पर निर्भर करती है कि उसको बनाने से पूर्व व्यवस्था के कारणों का किस गहराई तक अध्ययन या परीक्षण किया गया है। यद्यपि सिद्धान्त की सीमा यह होती है कि उसमें एक निश्चित चरों या तत्वों का ही आकलन किया जाता हैं तथापि ऐसे सिद्धान्तों को अपने आप में पूर्ण मान लिया जाता है क्योंकि दे गणितीय आधार पर अपनी सत्यता प्रमाणित करते हैं। इसके अतिरिक्त सिद्धान्तों का सत्यापन आगम व निर्गम पद्धति दारा भी किया जा सकता है। सिद्धान्त की शुद्धता उसकी स्वच्छता से जांची जाती है। सिद्धान्त की स्वच्छता उसमें प्रयुक्त तार्किकता बताती है । संक्षेप में, सिद्धान्त का अर्थ उसकी तार्किक स्पष्टता, कारणों पर आधारित तथ्यों के विश्लेषण पर कहे गये कथनों से लिया जा सकता है।

4.3 सिद्धान्त निर्माण की आवश्यकता

सिद्धान्त की आवश्यकता किसी भी विषय के लिए दो प्रकार से उपयोगी होती है: प्रथम, विषय के औचित्य को सिद्ध करने के लिए एवं द्यातीय विषय का क्षेत्र निर्धारण करने हेतु। किसी भी विषय का औचित्य उसमें निर्मित सिद्धान्तों के आधार पर सिद्ध होता है। सिद्धान्त विषय की क्षमता को बढ़ाते है तथा विषय को स्वतन्त्र रूप से विकसित होने के लिए प्रेरित करते है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि सिद्धान्त निर्माण विषय के मूल्यों से प्रभावित रहते है। अतः सिद्धान्त किसी भी विषय को एक व्यक्तित्व प्रदान करने में सहायक होते है। मूल्य विहीन या मूल्य तटस्थ सिद्धान्त विषय के विकास में अपेक्षित योगदान नही कर पाते है क्योंकि वे विषय के मूल तत्वों से कम तथा बाहरी तत्वों से अधिक प्रभावित हो सकते है। सिद्धान्त विषय की वास्तविकता को दर्शाता है। विषय की वास्तविकता विषय के सम्बन्ध में अध्ययन हेतु प्रेरणा का स्त्रोत बनती है। इसी के साथ-साथ सिद्धान्त विषय को उद्देश्यपूर्ण बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। विषय की उद्देश्यपूर्ण अध्ययनकर्ता को अपनी समस्या निर्माण में सहायता करती है । अन्त में, सिद्धान्त विषय की संरचना को एक प्रतिमान के रूप में दर्शाने में सहायक सिद्ध होते हैं। सिद्धान्त विषय को संरचना को ठोस आधार प्रदान करते है तथा वास्तविक ढांचे के निर्माण में सहायक होते हैं। अत: सिद्धान्त किसी भी विषय की प्रमुख आवश्यकता माने जा सकते है जो कि विषय को व्यक्तित्व, पहचान, उद्देश्यपूर्णता, ठोस आधार प्रदान करते है। लोक प्रशासन विषय में सिद्धान्त निर्माण की आवश्यकता इसलिए महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि इसे अपनी स्वतन्त्र पहचान के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। लोक प्रशासन को अभी तक राजनीतिक विज्ञान की उपस्थिति में ही मान्यता दी जाती रही है। लोक प्रशासन यद्यपि एक विषय के रूप में उभर चुका है तथापि सिद्धान्त की

कमी अथवा अभाव में यह समाज विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में स्वतन्त्र सम्बन्ध स्थापित करने में सफल नहीं हो सका है। लोक प्रशासन समाज विज्ञान के क्षेत्र में राजनीति विज्ञान का एक अटूट भाग माना गया है। यदि इसे स्वतन्त्र विषय के रूप में समाज विज्ञान के क्षेत्र में ही विकसित करना है तो इसमें सिद्धान्त निर्माण लोक प्रशासन के विद्यार्थियों के लिए एक चुनौती है और इसे समाज विज्ञान से अलग करके नीति विज्ञान या क्रियान्वित विज्ञान बनाता है तो सिद्धान्त निर्माण इसके विद्यार्थियों के लिए चुनौती तो नहीं परन्तु एक कठिन कार्य बन जायेगा क्योंकि नीति अथवा क्रियान्वयन के लिए इसे तथ्यों पर अधिक व तर्को एवं मूल्यों पर कम आश्रित होना पडेगा। ऐसी स्थिति में हमें विज्ञान शब्द को एक भिन्न रूप में परिभाषित करना पड़ेगा। जिसमें तथ्यों पर जोर अधिक व तर्को एवं मूल्यों पर जोर कम दिया जायेगा।

4.4 सिद्धान्त निर्माण के लक्षण

लोक प्रशासन विकसित देशों में, संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर, कभी भी आकर्षक विषय नही रहा हैं। विकसित देशों में लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान का एक भाग माना गया तथा उसी सन्दर्भ में ही उसका सैद्धान्तिकरण किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी लोक प्रशासन प्रबन्धकीय अथवा अर्थशास्त्र के एक भाग के रूप में विकसित हुआ। लोक प्रशासन का अधिक उत्पादन एवं कम लागत के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन एवं परीक्षण किया गया। परन्तु विकासशील देशों, जो कि 1950 के बाद से स्वतन्त्र होने आरम्भ हुए, में लोक प्रशासन राजनीति का भाग कम समझा गया, बल्कि लोक प्रशासन में यह अपेक्षा की गई कि वह राष्ट्र निर्माण का प्रमुख साधन होना। विकासशील देशों में लोक सेवा का उद्देश्य कम लागत पर अधिक उत्पादन नहीं होकर समाज सेवा माना गया। अत: लोक प्रशासन इन दोनों में साधन एवं साध्य दोनों ही बन गया। ऐसी स्थिति में लोक प्रशासन समाज विज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन का रूचिकर विषय बन गया है। इन विकासशील या तृतीय विश्व के देशों में लोक प्रशासन उन विशेषताओं या तत्वों में मौजूद है जो कि उन्हें उपनिवेश के रूप में यूरोपीय देशों से विरासत में मिली हैं। ऐसे उपनिवेशों को दो भागों में देखा जा सकता है: प्रथम, ऐरने उपनिवेश जिनकी विरासतीय तत्व राष्ट्रीय हैं जैसे कि लैटिन अमेरिकन देश, द्वितीय, ऐसे देश, जिनकी विरासत सीधे तौर पर यूरोपीय देशों से है तथा अब भी वे उन्ही देशों के प्रतिमान एवं विरासत का उपभोग अभी भी कर रहे है जैसे कि भारत। दोनों ही प्रकार के राष्ट्रों में उपनिवेशवादी प्रशासनिक विशेषताएं मौजूद है तथा वे अभी भी उन विशेषताओं को संवेदनशील प्रणाली के द्वारा ग्रहण कर रहे हैं। ऐसे राष्ट्रों में लोक प्रशासन की उपनिवेशवादी प्रकृति ही न केवल सिद्धान्त निर्माण में सहायक है बल्कि उसकी कार्य प्रणाली व तरीका सिद्धान्त निर्माण के लिए एक ऐसा लक्षण मौजूद है जिसके कि द्वारा इस विषय के विद्वान सिद्धान्त निर्माण कर सकते है। इसके लिए उनको यूरोपीय राष्ट्रों में लोक प्रशासन पर हुए अध्ययन तथा विकासशील या तृतीय विश्व के राष्ट्रों में हुए अध्ययन सिद्धान्त निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते है। इस क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण के लिए अवधारणाएं, प्रतिमान एवं सिद्धान्तिक संरचनाएं आसानी से उपलब्ध हैं जिनका कि सिद्धान्त निर्माण में उपयोग किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त सिद्धान्त निर्माण लोक प्रशासन के उन क्षेत्रों में किया जा सकता है जिनमें कि इन देशों के दारा प्रशासनिक सुधार किया गया है। प्रशासनिक क्षेत्रों में सुधार एवं

परिवर्तन सामान्यत: तकनीकी एवं पद्धति के रहे है। यह सुधार एवं परिवर्तन भी उन देशों से ग्रहण किये गये है जिनके कि वे उपनिवेश रहे थे। यद्यपि यह सुधार एवं परिवर्तन क्रान्तिकारी नहीं कहे जा सकते तथापि इनका विकासशील देशों में प्रभाव स्पष्टत: देखा जा सकता है। इस अभाव एवं परिवर्तन व सुधारों की सम्भावनाओं के बारे में लोक प्रशासन के विद्वानों द्वारा सिद्धान्तिक विवेचन सम्भव है जो कि लोक प्रशासन में न केवल सिद्धान्त निर्माण करेगा अपितु लोक प्रशासन को विकासशील राष्ट्रों में गतिशील अन्वेषक एवं पहल करने के लिए प्रेरित करेगा।

(अ) लोक प्रशासन की विकास में भूमिका -

जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया कि लोक प्रशासन विकासशील देशों में राजनीति का अंश नहीं होकर विकास को लाने का एक महत्वपूर्ण साधन बन गया है। उसको विकास प्रशासन के सन्दर्भ में एक नई भूमिका मिली है जिसमें कि उसे अपने आपको सफल सिद्ध करना है। विकास शब्द अर्थशास्त्र से राजनीति विज्ञान में तथा फिर लोक प्रशासन में प्रयुक्त हुआ है। लोक प्रशासन में विकास शब्द की परिभाषा अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में अधिक हुई है परन्तु अब राजनीति विज्ञान एवं प्रशासनिक विकास के परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से भी देखी जाने लगी है। हम यहां उसकी परिभाषा के प्रश्न में नहीं उलझकर प्रशासन की विकास के सन्दर्भ में की गई क्रियाएं, मुख्य रूप से सिद्धान्त निर्माण के क्षेत्र में, पर अधिक ध्यान देना चाहेंगे। लोक प्रशासन की विकास के नाम पर विदेशी तकनीक सहायता विकासशील देशों में काफी दी गई है परन्तु उसके अपेक्षित परिणाम नही निकले है। इस विषय पर वियना में 1992 में "अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासनिक विज्ञानों के कांग्रेस" में गहन विचार-विमर्श हुआ था। इस कांग्रेस में यह सिफारिश की गई कि प्रशासन को विज्ञान के रूप में ग्रहण करने के लिए आवश्यक है कि विकासशील राष्ट्रों के भौगोलिक एव सामाजिक परिस्थितियों को लोक प्रशासन के द्वारा प्राप्त अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तथा उन सिद्धान्तों की खोज की जाये जिनके द्वारा इन देशों में विदेशी तकनीकी सहायता को प्रभावी बनाया जा सके। इसके अतिरिक्त विदेशी तकनीकी सहायता के प्रभावों के सन्दर्भ में भी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि है यह उन अनुभवों एवं व्यवहारों पर आधारित नहीं है जो कि विकासशील देशों में दिखाई दे रहे है। तुलनात्मक अध्ययन के सन्दर्भ में तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे सिद्धान्तों की आवश्यकता है जो कि इन देशों की कठिन समस्याओं पर नवीन शब्दावली एव अवधारणाओं का विकास कर सके।

विकास प्रशासन के सन्दर्भ में विकासशील राष्ट्रों में जो प्रशासनिक अनुकरण की प्रवृति दिखाई दे रही है यह सामाजिक मनोवृति को इंगित करती है जिसकी कि व्याख्या लोक प्रशासन के विश्लेषण में आवश्यक है। यह अनुसंधान का यह क्षेत्र हो सकती है जिसके द्वारा उपनिवेशवादी शासनों का प्रतिमान उन सिद्धन्तों के आधार पर खड़ा किया जा सकता है जिनके आधार पर अनुसंधान किया जायेगा। इस सम्बन्ध में टिमसिट16 की यह परिकल्पना सार्थक दिखाई देती है "विकासशील देशों का प्रशासनिक स्थापत्य अपने तरीकों में बैठक दिखाई देता है। "विशेष रूप से, इसका स्थापत्य अमुक्रमित होने के कारण विकासशील राष्ट्रों के विकास को रोक रहा है जिसका परिणाम इन राष्ट्रों में पूर्व-उपनिवेशवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के परम्पराओं को बल मिलता है। इस प्रकार की परिकल्पनाएं लोक प्रशासन के क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण के लिए विद्वानों को अध्ययन एवं परीक्षण के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार की परिकल्पनाएं कुछ राष्ट्रों में परीक्षित की जा चुकी हैं परन्तु कोई सामान्यवादी सिद्धान्त निर्माण उनके आधार पर नही हो पाया है।

आवश्यकता इस बात की है कि विकासशील राष्ट्रों में गहन अध्ययन के द्वारा उनके बारे में सामान्यवादी सिद्धान्त का निर्माण किया जा सके।

(ब) अवधारणाओं की उपस्थिति तथा उनकी विस्तृत व्याख्या उपलब्ध होना-

लोक प्रशासन विषय को अपने विकास में उन प्रारम्भिक कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़ा है जो कि अन्य सामाजिक विज्ञानों के समक्ष भयंकर संकट उपस्थित किये हुए थी। वर्तमान में, इस विषय से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों में अवधारणाएं उपलब्ध हैं तथा यह अवधारणाएं व्याख्यायित भी है उदाहरण के लिए, नौकरशाही की विवेचना वेबर दारा लगभग सभी रूपों में व्याख्यातित हैं। इसी प्रकार, सत्ता, शक्ति, व्यवहार, संस्कृति, विकास, निर्णय लेना, जैसी अवधारणाएं समाज विज्ञान के विभिन्न विषयों दारा उपलब्ध कराई गई है तथा उनकी विस्तृत व्याख्या भी की गई है। लोक प्रशासन के विद्वानों के लिए यह सरल अवसर है कि वे इन व्याख्यायित अवधारणाओं का लोक प्रशासन के क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण में उपयोग कर सकें। इसी के साथ-साथ वे इस विषय के क्षेत्र में इन अवधारणाओं के आधार पर नवीन शब्दावली व नवीन अवधारणाओं का विकास भी कर सकते है जो कि भविष्य में इस क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण में सहायक है। अन्त में, इन अवधारणाओं व उनकी व्याख्याओं के आधार पर समाज विज्ञान के विभिन्न विषयों में पारस्परिक सम्बन्धों को बढ़ाकर एक ऐसे विज्ञान का स्वरूप दे सकते है जोकि समाज विज्ञान व अन्य विज्ञानों को अधिक निकट लाकर स्वीकृत कर सके। इन अवधारणाओं के आधार पर एक ऐसी शोध पद्धति का विकास किया जा सके जो कि सभी विज्ञानों में अनुसंधान को सरलीकृत एवं परिष्कृत किया जा सकें।

(स) उपागम एवं शोध-पद्धति की उपलब्धि-

लोक प्रशासन विषय के समक्ष उपागम एवं विकसित शोध पद्धति की समस्या नहीं है क्योंकि उसे अन्य सामाजिक विषयों के उपागम समस्या अनुसंधान के लिए उपलब्ध है। राजनीति विज्ञान में व्यवहारवाद उपागम पर काफी कार्य किया जा चुका है तथा यह उपागम काफी विकसित अवस्था में है। इसी प्रकार समाजशास्त्र में संरचनात्मक एवं कार्यात्मक उपागम तथा सामान्य व्यवस्था उपागम उपलब्ध है जिनको कि गणितीय आधार पर काफी भविष्यवाणी उन्मुख बनाया जा चुका है। इन उपनामों के आधार पर समाज विज्ञान में ऐसी शोध पद्धति भी विकसित हो चुकी है जिसके द्वारा सांख्यकीय, गणितीय तथा कम्प्यूटर के द्वारा निष्कर्षो की निश्चितया निर्धारित की जा सकती है। यद्यपि लोक प्रशासन तथा विज्ञान के मध्य प्रवृति एवं कार्यो की भिन्नता तथा उनके मध्य सम्बन्धो की दूरी शोध पद्धती की समस्या बनाये रखती है तथापि लोक प्रशासन को इसके लिए शोध पद्धती का इस प्रकार सहारा लेना होगा जिसमें कि शोध पद्धति अपेक्षित परिणाम दे सके। लोक प्रशासन को अपने सिद्धान्त निर्माण के लिए शोध पद्धति में उन पक्षों की ओर ध्यान देना होगा जो कि समाज विज्ञान शोध पद्धति द्वारा अशोधक रह गये है। इस प्रकार से लोक प्रशासन उन वैकल्पिक सिद्धान्तों का निर्माण कर सकेगा जो कि विभिन्नेकृत समाजों के लिए उपयोगी होंगे। इसी के साथ-साथ लोक प्रशासन की समस्या के उन पक्षों पर भी ध्यान देना होगा जो कि समस्या से प्रत्यक्षत: सम्बन्धित नहीं है अथवा समस्या के नहीं होने पर भी बने रहते है। वह बात लोक प्रशासन के लिए नीति विश्लेशण के सन्दर्भ में अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। जिस नीति का विश्लेषण किया जा रहा है उस नीति के बारे में

इस दृष्टि से भी अनुसंधान पद्धति बनाई जाये जिसमें कि नीति के नहीं होने की स्थितियों पर अनुसंधान किया जा सके तथा वैकल्पिक नीति की खोज की जा सके। उदाहरण के लिए, यदि भारत में अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना नहीं की जाती तो भारत में संधीय व्यवस्था में लोक सेवाओं का स्वरूप क्या होता। तथा, उसके लिए किस प्रकार की लोक सेवा सम्बन्धी नीति बनाई जाती। इस प्रकार की शोध पद्धति तथा उपागमों के माध्यम से लोक प्रशासन एक नवीन शोध पद्धति विकसित करने में तथा सिद्धान्त निर्माण करने में सक्षम हो सकेगा।

(द) मूल्य उन्मुखता-

समाज विज्ञान में मूल्य तटस्थता या उन्मुखता के सम्बन्ध में काफी विवाद अनुसंधानकर्ताओं में रहे हैं परन्तु लोक प्रशासन में इस प्रकार के विवाद के लिए अपेक्षित स्थान नही है। विशेषत: विकासशील देशों के सन्दर्भ मे लोक प्रशासन मूल्य उन्मुख रखा गया है तथा इसके लिए उस पर राजनीतिक एवं सामाजिक दबाव रहा है। इसका कारण लोक प्रशासन की विकासशील देशों में भूमिका का महत्वपूर्ण होना है। विकासशील देशों में राजनीतिक उथल-पुथल तथा सामाजिक परिवर्तन मूल्यों का परिणाम माना जा सकता है। राजनीतिक स्थापित्य करने के लिए प्रशासन को मूल्य स्थापना, मूल्यों को बनाये एवं विकसित करने का उत्तरदायित्व प्रदान किया जा रहा है। इस उत्तरदायित्व के अन्तर्गत लोक प्रशासन मूल्यों से अत्यधिक प्रभावित है। जहां मूल्य उन्मुख अनुसंधान किया जाता है वहां निर्माण सरल एवं सफलतापूर्वक किया जा सकता है। मूल्य अनुसंधान की दिशा निर्धारित करते है तथा दिशाएं निर्धारित होने पर, चरो के मध्य सह सम्बन्ध बनाना सरल होता है। इन सम्बन्धों के आधार पर मूल्य आधारित सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सकता है। लोक प्रशासन के प्रमुख मूल्यों को तीन भागों में रखा जा सकता है। (1) विवेक के पार (2) विवेकीय, तथा (3) उपविवेकीय। प्रथम के अन्तर्गत धर्म, अस्तित्ववादिता, वैचारिकता, द्वितीय में मानवीयता, वास्तविकता एवं उपयोगिता तथा तीसरे में तार्किक सापेक्षवादी, मूल्यों को देखा जा सकता है। मूल्यों की यह स्पष्ट विवेचना सिद्धान्त निर्माण के लिए एक सरल पथ मानी जा सकती है।

4.5 सिद्धान्त निर्माण के आधार

(i) अवधारणा निर्माण -

सिद्धान्त की स्थापना करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व अवधारणाओं का विकास करना है। अवधारणा का अर्थ एक ऐसे शब्द या शब्दों से है जो कि कई स्थितियों को संक्षेप में सामान्यीकृत कर देती है। इसका अर्थ यह है कि वास्तविकता वैज्ञानिक की अवधारणा को प्रभावित करती है। अवधारणा वह सारगर्भित शब्द है जो कि कई सम्बन्धों के स्वरूप का निर्धारण कर देते है। ऐसे शब्दों की न्याय-संगतता उनकी वास्तविकता से निर्धारित की जा सकती हैं। समाज विज्ञान के क्षेत्र में अवधारणाओं का निर्माण उतना तीव्र नही रहता है जितना कि प्राकृतिक व भौतिक विज्ञानों में। समाज विज्ञान मुख्यत: अन्य विज्ञानों के अवधारणाओं को ग्रहण करता रहा है। इसका कारण समाज वैज्ञानिकों द्वारा नवीन शब्दावली के प्रयोग के प्रति अरूचि अथवा हिचकिचाहट रही प्रतीत होती है। हमारा तात्पर्य यह है कि किसी भी विषय में सिद्धान्त निर्माण मुख्यत: अवधारणाओं पर निर्भर करता है क्योंकि अवधारणाएं सिद्धान्त निर्माण में मुख्य भूमिका

निभाती है। अवधारणाओं के उदाहरण हम राजनीति विज्ञान में दवाब समूह, राजनैतिक दल, अभिजन, गरीबी इत्यादि तथा लोक प्रशासन में "नौकरशाही", "लोकसेवा", जैसी अवधारणाएं पाते हैं। ऐसी अवधारणाएं अपने आप में पूर्ण व एक व्यवस्था या तन्त्र को इंगित करती है।

(ii) अवधारणा व्याख्या

सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया में यह एक प्रमुख आवश्यकता है कि हम जिन अवधारणाओं का उपयोग करने जा रहे हैं उनकी व्याख्या या सारगर्भितता को समझ लें अन्यथा ऐसा हो सकता है कि सिद्धान्त निर्माण में अनुपयुक्त अवधारणाओं के उपयोग से अर्थ बदल जाये या सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया अधूरी रह जाये। अवधारणाओं की व्याख्या सिद्धान्त को विषयगत बनाती है। यद्यपि यह एक आलोचना का विषय हो सकता है कि अवधारणाओं की व्याख्या में हम उद्देश्यहीन हो जायें तथापि अवधारणाओं की व्याख्या अनुसंधानकर्ता की अधिक सजग एवं सतर्क बनाती है तथा सिद्धान्त के विकास के लिए अधिक अवसर प्रदान करती है। अवधारणाओं की व्याख्या चाहे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष की जाये, वह समस्या सिद्धान्त निर्माता के समक्ष रहती है कि वह अवधारणा की व्याख्या में उनके प्रति मापदण्ड तय करें। मापदण्ड उसकी व्याख्या को अधिक वैध एवं तर्क-संगत बना सकेंगे। इसके लिए उसे मापदण्डों की वैधता भी परखनी होगी।

(iii) चर

चर का अर्थ उन तत्वों से है जो कि किसी एक अवधारणा का निर्माण करते है। चर का महत्व सिद्धान्त निर्माण में तब बढ़ जाता है जब कि सिद्धान्त के लिए प्रयुक्त होने वाली अवधारणाओं में चरों का चयन तर्कसंगतता के आधार पर किया जायें। अवधारणा में जिन चरों का प्रयोग किया जायेगा वे चर सिद्धान्त निर्माण में अनुसंधानकर्ता को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करेंगे। चर कई प्रकार के हो सकते है जैसे स्वतन्त्र, निर्भर, मध्यम या हस्तक्षेपीय। इनके यह प्रकार अवधारणा में भूमिका के आधार पर निर्भर करते है। वास्तव में, प्रयोगकर्ता की उद्देश्यपूर्ण विश्लेषण पर चरों की स्थिति निर्भर होती है। किसी एक स्थिति में एक चर स्वतन्त्र हो सकता है परन्तु दूसरी स्थिति में निर्भर या हस्तक्षेपीय। चरों के उदाहरण में आय, आयु, शिक्षा का स्तर आदि देखे जा सकते है। सामाजिक आर्थिक स्थिति में आय कहीं स्वतन्त्र भूमिका निभाती है परन्तु किन्ही परिस्थितियों में शिक्षा महत्वपूर्ण होने पर निर्भर या हस्तक्षेपीय चर बन जाती है। अत: चरों का उपयोग सतर्कतापूर्वक किया जाना चाहिये।

(iv) परिकल्पनाएं

जब अवधारणाओं का विकास कर लिया जाता है तो सिद्धान्त निर्माण के लिए कुछ परिकल्पनाएं की जाती है जिनके कि आधार पर अध्ययन या परीक्षण किया जा कर सिद्धान्त बनाया जाता है। परिकल्पनाओं का अर्थ एक ऐसी पूर्वानुमानना से लिया जा सकता है जो कि स्थिति की वास्तविकता के निकट हो अथवा किसी स्थिति की सम्भावना को दर्शाता हो। इस प्रकार का सम्भावित सामान्यीकरण किसी सिद्धान्त या प्रतिमान से आगम-निर्गम पद्वति द्वारा ग्रहण किया जाता है। कभी-कभी व्यक्ति अर्न्तदृष्टि या व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर भी परिकल्पनाओं का विकास कर लेता है। ऐसी स्थिति में परिकल्पनाएं स्वत: स्वीकृत एवं सामान्यीकृत हो जाती है तथा कई बार अनपेक्षित अच्छे परिणाम देती है। तर्कसंगतता के आधार पर निर्मित परिकल्पनाएं अच्छे अनुसंधान डिजाइन में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं ऐसी

परिकल्पनाएं जो कि किन्हीं सिद्धान्तों के या प्रतिमानों के आधार पर बनाई जाती है वे अध्ययन एवं परीक्षण में अच्छी अनुसंधान पद्धति बनाने में सहायक होती हैं। वास्तव में, परिकल्पनाएं अनुसंधानकर्ता की उद्देश्य मूलक एवं उन्यूक अनुसंधान के लिए प्रेरित करती हैं। विषयगत होते हुए भी उद्देश्यों से प्रभावित होकर सिद्धान्त का निर्माण करता है तथा अपने अनुसंधान से कुछ नवीन परिकल्पनाओं के लिए जगह छोड़ देता है जो कि अन्य विद्वानों को उस क्षेत्र में गहन शोध के लिए प्रेरित करती है।

(v) प्रतिमान

प्रतिमान सिद्धान्त के सादृश्य होता है तथा किसी एक उद्देश्य का भौतिक या प्रतिनिधित्व होता है। किसी एक प्रतिमान में वे सभी तत्व सम्मिलित होते है जो कि वास्तविक उद्देश्य के निकट होते हैं अथवा जिन्हें अनुसंधानकर्ता अपने सिद्धान्त निर्माण हेतु सम्मिलित करना उचित समझता है। परन्तु यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रतिमान अवधारणाओं से भिन्न होते है। समाज विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिमान कोई ठोस या वास्तविक ढांचा नहीं रखते हैं। क्योंकि समाज के बारे में सामान्यीकृत प्रतिमान का निर्माण एक कठिन कार्य हैं प्रतिमान भविष्यवाणी की शक्ति रखते है क्योंकि वे स्पष्ट रूप से वैध होते हैं। इस प्रकार से प्रतिमान समाज विज्ञान की अनुसंधान प्रक्रिया में भविष्य में निर्मित होने वाले अन्य प्रतिमानों के लिए स्थान छोड़ देते है। प्रतिमान निर्माण की दिशा में गणितज्ञों का अधिक योगदान रहा है जिन्होंने कि प्रत्येक विकास की व्यूह रचना को प्रतिमान के द्वारा इंगित करने का प्रयास किया है।

सिद्धान्त निर्माण के आवश्यक तत्वों के संक्षिप्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि अनुसंधानकर्ता को अभिनति से बचने के लिए अवधारणाओं के निर्माण एवं उनके प्रयोग में लिये जाने वाले चरों के चयन में सतर्कता रखनी चाहिये क्योंकि यह सिद्धान्त के ऐसे आवश्यक तत्व है जो कि सिद्धान्त को मार्ग से विचलित कर सकते हैं। परिकल्पनाएं सिद्धान्त निर्माण की आवश्यक सीढ़ी हैं जिनके द्वारा सिद्धान्तों का निर्माण अधिक उद्देश्यपूर्ण, सारगर्भित एव तथ्य-मूलक किया जा सके।

4.6 तुलनात्मक शोध पद्धति

लोक प्रशासन के साहित्य में तुलनात्मक शोध पद्धति मुख्यत: द्वितीय विश्वयुद्व के पश्चात् से प्रयोग में लाई गई। सन् 1960 के दशक में अनेक विद्वानों ने लोक प्रशासन में तुलनात्मक शोध पद्धति के माध्यम से विभिन्न सिद्धान्तों को स्थापित करने का प्रयास किया जिनमें मुख्य फैरल हैडी (Farel Heady), फ्रेड रिग्ज (Fred Riggs) फ्रेंक शेरवुड (frank Sherwood), जॉन मोन्टोगोमेरी (john Montogomery), रावर्ट डॉल (Robert Dahl), ड्वाइट वाल्डो (Dwight Waldo), एडविन स्टीन (Edwin Stene), इत्यादि हैं। तुलनात्मक शोध की आवश्यकता का प्रतिपादन मुख्यत: विकासशील राष्ट्रों के सन्दर्भ में किया गया जिसमें लोक प्रशासन के पर्यावरण की स्थिति, संस्कृति, व्यवहार एवं विकास के कारणों की समीक्षा करने का प्रयास किया गया। यद्यपि इन विद्वानों ने तथ्यों पर जोर नहीं देकर आनुभविक आधार पर सामान्यीकरण के आधार पर सिद्धान्तों के निर्माण का प्रयास किया। ए.आर.त्यागी का यह कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि तुलनात्मक शोध के माध्यम में व्यावहारिक यन्त्रों का ज्यादा प्रयोग किया जाता है।

तुलनात्मक शोध का महत्व इस बात में निहित है कि यह वास्तविकता या सत्य की गहराई तक पहुँचाने में अधिक सफल होती है। गैर-तुलनात्मक शोध सतही ज्ञान ही उपलब्ध करा पाती है जब कि तुलनात्मक शोध न केवल सत्य के अत्यन्त गहराई तक पहुँचती है बल्कि समस्या के समाधान के विकल्प भी उपलब्ध करवाती है। करलिंगर ने अपनी पुस्तक फाउन्डेशन्स आफ विहेवियरल रिसर्च" में सर्वाधिक जोर इस बात पर दिया है कि शोध का वास्तविक उद्देश्य सत्य को न केवल पहचानना है बल्कि सत्य की सम्पूर्ण गहराई को जाचना भी है।

टी.एन.चतुर्वेदी ने तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के अग्रलिखित लाभ बताये हैं -

(i) तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली के कारण सामाजिक अनुसन्धान का क्षेत्र व्यापक हुआ है। पहले यह संकीर्ण सांस्कृतिक बन्धनों से मर्यादित था।

(ii) तुलनात्मक अध्ययन की क्रान्ति ने सिद्धान्त रचना में अधिक वैज्ञानिकता ला दी है।

(iii) तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली दृष्टि को व्यापक बना देती है जिसके कारण दुनिया को आत्म-केन्द्रित या आत्म-संस्कृति को देखने की संकीर्णता नहीं रह पाती।

(iv) तुलनात्मक लोक प्रशासन से सामाजिक विश्लेषण का क्षेत्र बढ़ाने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलता है।

4.6.1 तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के उद्देश्य -

तुलनात्मक लोक प्रशासन आनुभविक एवं वैज्ञानिक स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करके हमारे आनुभविक व सैद्धान्तिक ज्ञान को एकत्रित, व्यवस्थित व विस्तृत करता है। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :

(i) विशिष्ट प्रशासनिक समस्याओं, प्रणालियों आदि का अध्ययन करके सामान्य नियमों और सिद्धान्तों की स्थापना करना;

(ii) विभिन्न संस्कृतियों, राष्ट्रों एवं व्यवस्थाओं का पारगामी विश्लेषण और व्याख्या करना और इस तरह आधुनिक लोक प्रशासन के क्षेत्र का विस्तार करना;

(iii) विभिन्न प्रशासनिक रूपों और प्रणालियों की तुलनात्मक परिस्थिति को पहचान कर उनकी सफलताओं एवं असफलताओं के कारणों का पता लगाना;

(iv) तुलनात्मक अध्ययनों के संदर्भ में त्रुटियों को प्रकाश में लाकर प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता और अनिर्वायता बतलाना;

(v) विकास और विकास प्रशासन को अपने अनुभवों का लाभ देकर उनकों गति प्रदान करना;

(vi) तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का उद्देश्य सरकारों को नीति-निर्धारण में योगदान देना भी है;

(vii) तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य विश्व की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बारे में ज्ञानवर्द्धन करना;

(viii) लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षितिज को व्यापक, व्यावहारिक और वैज्ञानिक बनाना;

(ix) विकासशील देशों में प्रबन्धकीय विज्ञान तथा प्रशासकीय विज्ञान के क्षेत्र में नयी-नयी प्रविधियों के प्रयोग को बढ़ावा देना;

4.6.2 तुलनात्मक अध्ययन पद्धति की स्थितियां -

रॉबर्ट जैक्सन ने तुलनात्मक अध्ययन पद्धति की स्थितियों का उल्लेख किया है :

1. प्रशासनिक व्यवहार में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनका व्यवस्थित विश्लेषण किया जा सकता है तथा उनसे सिद्धान्तों की रचना की जा सकती है;
2. प्रशासन के क्षेत्रान्तर्गत जो पद्धतियाँ अपनायी गयी हैं, उनका अध्ययन विभिन्न संस्कृतियों और राष्ट्रों के संदर्भ में किया जा सकता है;
3. तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों की परीक्षा की जा सकती है;
4. तुलनात्मक विश्लेषण प्रायोगिकता और सार्वभोमिकता की भिन्न-भिन्न मात्राओं के लिए सामान्यीकरण के विविध स्तरों पर प्रशासनिक प्रतिरूपों से सम्बन्धित परिकल्पनाओं के निर्माण में सहायक सिद्ध होना।

तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के सम्बन्ध में अन्य स्थितियाँ भी हो सकती है जो इस प्रकार है :

1. प्रशासनिक व्यवस्थाओं का आन्तरिक तुलनात्मक अध्ययन।
2. प्रशासनिक व्यवस्थाओं का बाहरी तुलनात्मक अध्ययन।

प्रशासनिक व्यवस्थाओं के आन्तरिक तुलनात्मक अध्ययन के तहत एक ही देश के स्थित विभिन्न स्तरों पर स्थापित प्रशासनिक व्यवस्थाओं और उनको प्रभावित करने वाले विभिन्न व्यवहारों का अध्ययन किया जा सकता है।

इसी प्रकार आन्तरिक तुलनात्मक अध्ययन प्रशासकीय सुधार के नियमों के कार्यान्वयन तथा सत्ता के प्रत्यायोजन के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है, हालाँकि लोक प्रशासन का यह दृष्टिकोण ज्यादा परिपक्व नहीं हो सका है।

प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बाहरी तुलनात्मक अध्ययन के तहत दो प्रकार के दृष्टिकोण सामने आते है। पहले दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासक के तुलनात्मक अध्ययन के एक ही देश में विद्यमान विभिन्न समय में पायी जाने वाली प्रशासनिक व्यवस्थाओं की ऐतिहासिक तुलना की जाती है, जैसे : ब्रिटिश शासन के दौरान कार्मिक प्रशासन तथा स्वतन्त्र भारत के कार्मिक प्रशासन की तुलना, प्रशासनिक व्यवस्था बाहरी तुलनात्मक अध्ययन के दूसरे विचार के अनुसार एक ही समय में विश्व के दूसरे देशों में मौजूद प्रशासनिक व्यवस्थाओं की तुलना की जाती है। जैसे : भारत और ब्रिटेन की कार्मिक व्यवस्था की वर्तमान तुलना इत्यादि। वस्तुत: प्रशासनिक व्यवस्था के आन्तरिक तुलनात्मक अध्ययन की अपेक्षा बाहरी तुलनात्मक अध्ययन ज्यादा तार्किक, उपयोगी और न्यायसंगत है।

4.7 समस्याएं एवं समाधान -

1. लोक प्रशासन एवं समाज विज्ञान के मध्य सम्बन्ध

लोक प्रशासन अपने आप में एक साध्य नहीं है बल्कि समाज का एक ऐसा साधन है जो कि आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को पहचानने, सरकार तक पहुंचाने तथा उनकी पूर्ति का प्रयास करता है। इनकी पूर्ति के प्रयास में यह नीति क्रियान्वयन से सम्बन्धित हो जाता है। लोक प्रशासन नीति क्रियान्वयन में विवेक से जुड़ जाता है जो कि समाज की नीति कियान्वयन शक्ति भी पूर्णत: लोक प्रशासन के हाथ में नहीं रहती है बल्कि सरकार या दूसरे शब्दों में राजनीति के हाथों से संचालित होती है। लोक प्रशासन के विवेक से सम्बन्धित विश्लेषण के लिए राजनीति का

विश्लेषण तथा राजनीति के विवेक का विश्लेषण आर्थिकी के विश्लेषण पर निर्भर करता है जिसे कि हम राजनीतिक आर्थिकी कह सकते हैं। दूसरे शब्दो में, लोक प्रशासन प्रमुख रूप से राजनीतिक व अर्थशास्त्र विज्ञानों से अर्न्तनिहित रूप से सम्बन्धित है। उसमें सिद्धान्त निर्माण राजनीतिक विज्ञान व अर्थशास्त्र के फलस्वरूप एक कठिन कार्य बन जाता है। प्रशासनिक व्यवहार के बारे में मूल रूप से सिद्धान्त निर्माण राजनीति विज्ञान क्षेत्र में हुआ है। यदि हम प्रशासनिक व्यवहार पर हर्बर्ट साइमन के योगदान की चर्चा करें तो हम सिद्धान्त निर्माण के क्षेत्र में अपने आप को संगठन समाजशास्त्र एवं संगठन मनोविज्ञान के क्षेत्र में पायेगें। साइमन एक सापेक्षवादी चिन्तक रहा है। उसका मुख्यत: विश्लेषण विवेक की सीमाओं से रहा है जो कि प्रशासनिक प्रक्रिया को नियन्त्रित करती है क्योंकि विवेक का सम्बन्ध निर्णय लेने से है। साइमन निर्णय लेने के क्षेत्र में अपने विश्लेषण का केन्द्र बिन्दु संगठन को बनाता है। प्रशासन का विवेक सांगठनिक मूल्यों से अधिक प्रभावित होता है तथा उसका व्यवहार रंगमंच के कर्मी की भांति संगठन के वातावरण से प्रभावित होता है। संगठन के मूल्य उत्पादन के मापदण्डों पर आधारित होने के कारण प्रशासक की कार्यकुशलता एवं प्रभावशीलता घटती अथवा बढ़ती है। इस प्रकार साइमन स्वयं लोक प्रशासन के बारे में सिद्धान्तों का निर्माण करने में समाज विज्ञान के अन्य क्षेत्रों पर अवलम्बित हो जाता है तथा अनचाहे वह संगठन समाजशास्त्री या मनोवैज्ञानिक बन जाता है। संगठन का विश्लेषण अपने आप में समाजशास्त्र का विषय है। संगठन का वेयर द्वारा नौकरशाही के एवं बर्नाड द्वारा संगठन का सत्ता के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण प्रशासनिक संगठन का समाजशास्त्रीय एवं राजनीतिक चिन्तन से प्रभावित हैं तथा लोक प्रशासन पुन: अछूता रह जाता है। संगठन के सिद्धान्त पर अधिकांशत: कार्य मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने किया है जिनमें अर्जिरिस, मेक्ग्रेर के नाम उल्लेखनीय हैं। वास्तव में हमारा तात्पर्य इन कार्यो के उल्लेख करने से यह है कि लोक प्रशासन स्वयं अध्ययन का एक विषय नहीं माना गया है। लोक प्रशासन का समाज विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में गहन एवं निर्भरता के संबन्धों ने सिद्धान्त निर्माण के क्षेत्र में एक ऐसी समस्या उत्पन्न कर दी है जिससे कि लोक प्रशासन निपटने में असफल रहा है। इसका कारण यह है कि लोक प्रशासन में ऐसी अवधारणाओं का निर्माण नहीं हो पाया है जो कि लोक प्रशासन की समाज विज्ञान के अन्य क्षेत्रों पर निर्भरता को कम कर सकें। लोक प्रशासन समाज विज्ञान के अन्य क्षेत्रों से अवधारणाएं लेकर सिद्धान्त निर्माण की चेष्टा करता है तो ज्ञात होता है कि वह लोक प्रशासन की जगह समाज विज्ञान के किसी अन्य क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण कर गया हैं अत: यदि लोक प्रशासन को अपने सिद्धान्त विकसित करने है तो उसे समाज विज्ञान के अन्य क्षेत्रों विशेषकर राजनीति विज्ञान एवं अर्थशास्त्र पर निर्भरता को कम करना होगा। यह तभी सम्भव है जबकि लोक प्रशासन में मूल अवधारणाओं का विकास किया जाये।

2. शोध पद्धति की समस्या

किसी भी विषय को विज्ञान बनाने के लिए आवश्यक है कि उस विषय में तर्क एवं दर्शन का विकास किया जाये। यदि हम समाज विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को देखें तो ज्ञात होगा कि लोक प्रशासन को छोड़कर सभी समाज विज्ञान तर्क एवं दर्शन स्वयं का रखते है या कम से कम अपने मूल्य रखते हैं परन्तु लोक प्रशासन में हम तर्क, दर्शन एवं मूल्यों का अभाव पाते है। इसका कारण यह है कि इस विषय का राजनीति विज्ञान से गहन सम्बन्ध रहा है। यह उसी के नियन्त्रण में कार्य भी करता है। अत: राजनीतिक दर्शन तर्क एवं मूल्य इसको वंशानुगत रूप से मिले है जो

कि मौलिक रूप से लोक प्रशासन के नहीं है। राजनीतिक विज्ञान में प्लेटों, अरस्तु से लेकर मार्क्स एवं गांधी दर्शन तक तथा राज्य का सापेक्षवादी तर्क हाब्स, लॉक एवं रूसो द्वारा एवं नकारात्मक तर्क मार्क्स द्वारा तथा राजनीतिक व्यवस्था जिसमें प्रजातन्त्र से लेकर तानाशाही के मूल्य लोक प्रशासन के संरचनात्मक एवं व्यवहारवादी पक्ष को प्रभावित करते हैं इस स्थिति में लोक प्रशासन के समक्ष कोई तर्क, दर्शन एवं मूल्य नही है। इनके अभाव में मूल शोध पद्वति का लोक प्रशासन में विकास सम्भव नहीं है। लोक प्रशासन की शोध मूलत: समाजशास्त्र से संगठन के लिए एवं मनोविज्ञान से व्यक्ति के लिए तथा लोक प्रशासन के कार्यो के लिए राजनीति विज्ञान से ली गई है। जबकि वास्तव में लोक प्रशासन एक नीति विज्ञान या व्यवहारवादी विज्ञान शब्दों में क्रिया विज्ञान है। ऐसी स्थिति में, लोक प्रशासन ऐसी शोध पद्वति विकसित करता है जो कि मूलत: समाज के व्यवहारवादी पक्ष से सम्बन्धित हो। व्यवहारवादी विज्ञानों या नीति विज्ञानों की दुनियां में शोध पद्धति का दबाव व्यवहार या नीति विश्लेषण पर रहता है। ऐसे दबाव में शोध पद्धति केवल एक पक्षीय नहीं होकर बहुपक्षीय होनी चाहिये अर्थात् शोध पद्धति व्यवहार या नीति का विश्लेषण नहीं करें अपितु जिसमें व्यवहार एवं नीति के लिए विश्लेषण किया जाये तथा उसमें व्यवहार एव नीति के विकल्पों को निर्मित किया जा सके। लोक प्रशासन की मूल समस्या इसके पास अपनी अवधारणाओं, उनकी व्याख्या तथा शोध डिजाइन का अभाव है। लोक प्रशासन की अपनी अवधारणाओं के विकास हेतु नीति विज्ञानों या व्यवहारवादी विज्ञानों पर अवलम्बित होना पड़ेगा तभी उसे समाज विज्ञान से विशेषकर राजनीतिक एवं अर्थ विज्ञानों से मुक्ति मिल सकेगी।

वर्तमान में लोक प्रशासन के समक्ष जो शोध पद्धति है वह समाज शास्त्रीय है। जिसमे कि अवधारणाओं एवं परिकल्पनाओं पर अधिक जोर दिया जाता है। लोक प्रशासन विषय मुख्यत: तथ्य उन्मुख है जो कि सामान्यत: नीति के कियान्वयन से सम्बधित होते है। जहां नीतिगत घोषणा एवं तथ्य उपलब्ध होते है वहां अवधारणाओं एवं परिकल्पनाओं के निर्माण पर जोर देना उपयुक्त नही होता है। ऐसी स्थिति में परिकल्पनाओं के स्थान पर तथ्य विश्लेषण नीति के लिए तथा नीति को वृहद परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करना उपयुक्त प्रतीत होता है। परन्तु विषय के विद्वानों के समक्ष समस्या यह है कि प्रशासकों के द्वारा तथ्य सरकारी एवं सुरक्षा के नाम पर स्पष्टत: उपलब्ध नहीं करवाये जाते हैं जिसका कि असर अनुसंधान पद्धति एवं परिणामों पर पड़ता है। अत: सिद्धान्त निर्माण में विद्वानों के द्वारा हिचकिचाहट या अनिच्छुकता हैं। अन्त में, इस विषय में दूरदर्शिता एवं भविष्यवादिता का अभाव भी शोध पद्धति की कमी को दर्शाता है। इस विषय में आवश्यकता ऐसी शोध पद्धति विकसित करने की है जो तथ्यों के आधार पर सिद्धान्त निर्माण में सहायक हो सके।

3. लोक प्रशासन की प्रकृति एवं कार्य

लोक प्रशासन साध्य उन्मुख एक प्रक्रिया है जिसमें कि मानवीय क्रियाओं को इस प्रकार नियन्त्रित एवं समन्वित कर के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपयोग में लिया जाता है जिससे कि सरकार अपनी घोषित विचारधारा की प्राप्ति कर सके। प्रजातन्त्र में सरकार जनता के साथ किये गये वायदों से प्रतिबन्धित हो जाती है तथा लोक प्रशासन को भी उसी प्रकार नियन्त्रित करने का प्रयास करती है। लोक प्रशासन की प्रकृति यान्त्रिक होते हुए भी मानवीय तत्वों, राजनैतिक विचारधारा, उद्देश्य एवं क्रिया उन्मुखता तथा लोक इच्छा पर आधारित हो जाती है। इन सभी तत्वों के समन्वय से लोक प्रशासन के मूल्य, जो कि कार्यकुशलता, प्रभावशीलता तथा बचत

माने जा सकते है, राजनीति एवं जनइच्छा से जुड जाते हैं। ऐसी स्थिति में लोक प्रशासन की प्रकृति अत्यन्त गतिशील एवं अस्थिर हो जाती है जिसके कि फलस्वरूप उसके बारे में सामान्यीकरण कठिन हो जाता है। दूसरे शब्दों में अस्थिर प्रकृति से सिद्धान्त निर्माण कठिन कार्य बन जाता है।

लोक प्रशासन के कार्य भी सिद्धान्त निर्माण के क्षेत्र में एक समस्या उत्पन्न करते है। विकासशील देशों में लोक प्रशासन को विकास कार्य एक नवीन भूमिका प्रदान कर रहे हैं जिससे कि अभी तक विकासशील प्रशासन परिचित नही हो सका है। वास्तव में, विकास से सम्बन्धित लोक प्रशासन के कार्य उसके समक्ष एक दुविधापूर्ण स्थिति स्थापित कर रहे हैं। लोक प्रशासन तृतीय विश्व के देशों में असमंजसपूर्ण व्यवहार कर रहा है जिसका कि सामान्यीकरण या परिकल्पना करना इस क्षेत्र के विद्वानों के लिए कठिन कार्य बन गया है। एक ही स्थिति में लोक प्रशासकों द्वारा भिन्न कार्य व्यवहार अपनाना अवधारणाओं एवं परिकल्पनाओं के निर्माण में कठिनाई उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त लोक प्रशासन का राजनीतिकरण विशेषत: विकास कार्यो के सन्दर्भ में, एक नवीन स्थिति को जन्म दे रहा है। इस सब स्थितियों पर फ्रेड रिग्ज ने अवधारणाओं एवं परिकल्पनाओं का निर्माण करके लोक प्रशासन को सिद्धान्त निर्माण के संकट से उबारा है तथापि फिर भी तृतीय विश्व के समाजों की ऐसी विषय स्थिति है जिसके कि बारे में रिग्ज का सामान्यीकरण पूर्ण नही कहा जा सकता। तृतीय विश्व के प्रत्येक देश के बारे में गहन अध्ययन की आवश्यकता है। तृतीय विश्व के समाजों के बारे में तथा लोक प्रशासन के उससे सम्बन्धों, उसकी प्रकृति तथा कार्यो के बारे में अवधारणाओं का विकास तथा उन समाजों के सन्दर्भ में प्रतिमान विकसित किये जाने चाहिये। तृतीय विश्व के समाजों में विदेशी प्रतिमानों का आयात भी लोक प्रशासन का तृतीय विश्व के सन्दर्भ में मौलिक सिद्धान्त निर्माण कठिन बना रहा है। यद्यपि यह सही है कि तृतीय विश्व के समाज मूलत: कृषक समाज है तथा वहां विकास के लिए जो तकनीक एवं विज्ञान उपयोग में लिया जा रहा है वह उन्नत समाजों से ग्रहण किया जा रहा है अत: आयातित विज्ञान एवं तकनीक का प्रभाव सामान्यत: वैसा ही रहता है जैसा कि उन्नत समाजों में। परन्तु ऐसी स्थिति होते हुए भी विकासशील समाज उन्नत समाजों की तुलना में विशेषत: लोक प्रशासन की प्रकृति एवं कार्यो के सन्दर्भ में एक असमंजस की स्थिति उत्पन्न कर रहे है जिसमें कि किसी प्रकार के सिद्धान्त निर्माण की सम्भावनाएं कमजोर हो जाती है। इसी के साथ-साथ विकासशील समाजों में आ रहा प्रशासनिक परिवर्तन भी विकास की ओर अग्रसर नही होकर आधुनीकरण का पर्याय बनता जा रहा हैं ऐसी स्थिति में प्रशासनिक सरंचना एवं उसके कार्यो के बारे में परिकल्पनाएं बनाना कठिन होता जा रहा है जो कि सिद्धान्त निर्माण के लिए आवश्यक तत्व मानी जाती रही है।

संक्षेप मे, लोक प्रशासन की प्रकृति एवं कार्यो में तीव्र परिवर्तन, राजनीतिक बदलाव एवं विज्ञान एवं तकनीकी तथा प्रशासनिक सरंचनात्मक परिवर्तनों ने लोक प्रशासन के विद्वानों के समक्ष एक सिद्धान्त निर्माण की एक चुनौती खड़ी कर दी है।

1. उपागम सम्बन्धी समस्या

लोक प्रशासन के अध्ययन एवं परीक्षण हेतु मौलिक उपागम का अभाव है अभी तक लोक प्रशासन में समाजशास्त्रीय उपागम तथा सरंचनात्मक एवं कार्यात्मक उपागम तथा मानोविज्ञान से

व्यवहारवाद उपागम का प्रयोग हुआ है जिसका कि परिणाम यह है कि लोक प्रशासन की प्रकृति पूर्णत: निर्धारित नहीं हो सकी है तथा उस पर अनेकानेक मत है। लोक प्रशासन एक ऐसी क्रिया है जिसमें कि सभी प्रकार के कार्यो एवं उत्तरदायित्वों तथा सरंचनाओं का समावेश है। अत: उसका अध्ययन एवं परीक्षण एक उपागम द्वारा करना अपने आप में पूर्ण अध्ययन नहीं कहा जा सकता है। लोक प्रशासन मुख्यत: अपने परिवेश एवं संस्कृति से जुड़ा रहता है। लिज ने अपने अध्ययन में परिवेश व उपागम का प्रयोग किया है। परन्तु उसका यह अध्ययन विहंगम है यथा विकासशील देशों की सांस्कृतिक तत्वों के विश्लेषण से युक्त नहीं है। लिज भी सांस्कृतिक तत्वों का लोक प्रशासन की संरचना, प्रकृति पर गहन दृष्टि डालने की उपेक्षा कर गया क्योंकि सांस्कृतिक तत्वों के समावेश से विकासशील देशों के बारे में उसकी सैद्धान्तिक पृठभूमि सामान्यीकृत नहीं हो पाती। प्रत्येक विकासशील देश की संस्कृति में विभिन्नताएं अधिक होने से सामान्यीकरण में कठिनाई बनती है। सांस्कृतिक विभिन्नता सिद्धान्त निर्माणकर्ताओं के लिए एक चुनौती है। विकासशील देशों के सन्दर्भ में लोक प्रशासन के क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण के लिए विभिन्न उपागमों के स्थान पर एक ऐसे उपागम को आवश्यकता है जो कि लोक प्रशासन को एकीकृत विज्ञान का रूप दे सके तथा इसके लिए एकीकृत वैज्ञानिक उपागम का विकास आवश्यक हैं लोक प्रशासन में सिद्धान्त निर्माण विज्ञानों के सम्मिश्रण से ही सम्भव है। परन्तु क्या विभिन्न विज्ञानों का सम्मिश्रण सम्भव है तथा क्या उनका अध्ययन एकीकृत उपागम द्वारा सम्भव है? लोक प्रशासन के विद्वानों के समक्ष मुख्य समस्या एकीकृत उपागम को खोजने की है जिसके कि द्वारा इस विषय में सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया को गति दी जा सके।

4.8 सारांश

लोक प्रशासन एक क्रियात्मक दर्शन है। अत: यह सामान्यवादिता उन्मुख है यह व्यक्ति का प्रतिमान तथा व्यक्ति की समस्त गतिविधियां इसकी है। व्यक्ति से सम्बन्धित सभी अवधारणाएं एवं परिकल्पनाएं इसकी हैं। इसमें सभी प्रकार की वे विशेषताएं मौजूद है जो कि सिद्धान्त निर्माण के लिए आवश्यक हैं। परन्तु चूंकि व्यक्ति के बारे में अवधारणाएं, परिकल्पनाएं तथा प्रतिमान अभी तक स्पष्ट नहीं हो सके हैं। अत: व्यक्ति अभी तक रहस्य के घेरे में लिपटा हुआ है। व्यक्ति तथा उसके बारे में लोक प्रशासन की अवधारणाएं स्पष्ट होनी आवश्यक हैं। व्यक्ति के बारे में व्यक्तिवाद के माध्यम से ही अवधारणाएं स्पष्ट होनी चाहिये। इसी के साथ-साथ व्यक्ति तथा उसके सामाजिक सम्बन्धो के बारे में भी अवधारणाओं की निर्माण एवं उनकी स्पष्टता आवश्यक है। लोक प्रशासन में निर्माण व्यक्ति तथा उसके परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिये। यह विवाद उतना निरर्थक है कि लोक प्रशासन को समाज विज्ञान पर निर्भरता कम करनी चाहिये या नही। लोक प्रशासन एवं समाज विज्ञान विशेषत: राजनीति विज्ञान से अटूट सम्बन्ध है। लोक प्रशासन को इन्ही के सहयोग से सिद्धान्त निर्माण करना होगा। अत: यह मानना, कि लोक प्रशासन में स्वयं की अवधारणाओं का अभाव है, उचित प्रतीत नहीं होता है। लोक प्रशासन के सक्षम मूल्य हैं जिनके आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सकता है। अत: लोक प्रशासन को इन मूल्यों का सहारा लेना चाहिये। इनके आधार पर लोक प्रशासन में ऐसे दर्शन का विकास होगा जो कि सांस्कृतिक एवं विचारधारा से परे होगा। इसका दर्शन व उसके सिद्धान्त वास्तविक शक्ति तथा मनोमैकेनिकी से जुड़े होगें। लोक प्रशासन को इसके लिए राजनीति

विज्ञान से सहयोग लेना होगा क्योंकि राजनीति विज्ञान "मास्टर साइन्स" है जिसका कि आरम्भ राज्य की स्थापना से हो गया था तथा जिसके पास सभी विषयों पर दर्शन उपलब्ध हैं। लोक प्रशासन को सिद्धान्त निर्माण में आने वाली समस्याओं से निपटने के लिए राजनीति एवं शुद्ध विज्ञान पर निर्भर करना होगा। यह निर्भरता उस समय तक रहेगी जब तक की इसमें दर्शन का विकास नहीं हो जाता तथा प्रशासकों को दार्शनिक दृष्टिकोण प्रदान नहीं करता है।

4.9 शब्दावली

मास्टर साइन्स - जोकि सभी प्रकार के विज्ञानों पर नियंत्रण कर सके।

क्रिया विज्ञान - वो विज्ञान जो कि क्रियान्वित किया जा सके।

सापेक्षवाद - जिसमें सापेक्षवादी तथ्य एवं अवलोकन योग्य घटना ही मान्य होती है।

विशुद्ध विज्ञान - कठोरतम वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित

4.10 अभ्यास प्रश्न

1. लोक प्रशासन में सिद्धान्त निर्माण की प्रमुख समस्याएं बताइये?
2. लोकप्रशासन में सिद्धान्त-निर्माण हेतु तुलनात्मक शोध पद्धति का उपयोग समझाइये।
3. लोकप्रशासन में सिद्धान्त-निर्माण की आवश्यकता पर लेख लिखे।

4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा.एस.एल.वर्मा, राजनीति विज्ञान में अनुसंधान प्रविधि राजस्थान हिन्दी ग्रन्ध अकादमी, जयपुर
2. स्टीफन बैस्वाई, पालिटिकल साइन्स: द डिसीप्लिन एण्ड इट्स डाइमेन्श्न साइन्टिफिक बुक एजेन्सी, कलकत्ता, 1970
3. किस्टोफर होजकिन्सन : टूवबर्स ए फिलासफी आफ एड मिनिस्ट्रेशन वेसिल ब्लैकवेल, आक्सफर्ड
4. साइमन, हर्बर्ट, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर कानियर मैक्मिलन पब्लिशर्स, तृतीय संरकरण, लन्दन 1976
5. बेवर, मैक्स, हैनन्डरसन एवं पारसन्स द थ्योरी आफ सोश्यल एण्ड इकोनोमिक आर्गनाइजेशन, फ्री प्रेस, न्यूयार्क 1947
6. रिग्ज, फ्रेड डब्लू एडमिनिस्ट्रेशन इन डवलपिंग कन्ट्रीज : द थ्योरीज आफ प्रिज्मैटिक सोसायटी, बोस्टन, 1964

इकाई-5

ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 पृष्टमि : ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था

5.3 ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं

5.3.1 उत्तरदायी एवं कल्याणकारी प्रशासन

5.3.2 प्रशासन का राजनीतिक नेतृत्व

5.3.3 प्रशासनिक कुशलता

5.3.4 ब्रिटिश प्रशासन - विकास का परिणाम

5.3.5 ब्रिटिश प्रशासन - एक जीवन्त संगठन

5.3.6 प्रशासन में समन्वय

5.3.7 लोकतान्त्रिक लोक सेवा

5.3.8 ईमानदारी तथा प्रशासनिक पारदर्शिता

5.3.9 एकात्मक प्रशासन

5.3.10 विस्तृत प्रशासनिक ढाँचा (केन्द्रीय)

5.3.11 कुशल कार्मिक प्रशासन

5.3.12 तटस्थता एवं प्रतिबद्वता

5.3.13 समिति व्यवस्था

5.3.14 सामान्यज्ञों एवं विशेषज्ञों का समान महत्व

5.3.15 अविशेषज्ञों (मंत्रियों)तथा विशेषज्ञों (प्रशासकों)एका समन्वय

5.3.16 विधि का शासन

5.3.17 अन्तर्राष्ट्रीयतावाद

5.3.18 शासन में अभिजातवर्गीय बहुमत

5.3.19 प्रशासक वर्ग का पूंजीपति वर्ग से संबंध

5.3.20 प्रभावी स्थानीय स्वशासन

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्न

5.7 सन्दर्भ ग्रन्ध सूची

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप :

- ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन कर सकेंगे,
- ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं को जान सकेंगे,

- तटस्थता एवं प्रतिबद्धता का अर्थ जान सकेंगे,
- विधि के शासन को परिभाषित कर सकेंगे,
- सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञों के मध्य अन्तर कर सकेंगे,
- उत्तरदायी एवं कल्याणकारी प्रशासन का आशय समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन विषय के अन्तर्गत प्रमुख प्रशासनिक व्यवस्थाओं में ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं महत्वपूर्ण है। ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था को दुनियां की प्रशासनिक व्यवस्थाओं की देन के रूप में भी जाना जाता है। यहां कि प्रशासनिक व्यवस्था निरन्तर विकसित होती रही है तथा एक जीवन्त संगठन के रूप में अनवरत संचालित है। यहां का प्रशासन उत्तरदायी एवं कल्याणकारी है तथा राजनीतिक नेतृत्व के अधीन काम करता है। ब्रिटिश प्रशासन कार्यकुशल एवं समन्वित है जो व्यापक केन्द्रीय ढांचे में रहकर कार्य करता है। यहां ईमानदारी, पारदर्शिता, तटस्थता, प्रतिबद्धता, सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञों का समान महत्व जैसी विशेषताएं हैं, पहले सामान्यज्ञ प्रधान प्रशासन था जो अब विशेषज्ञों को भी बराबर महत्व देने लगा है। यहां समिति प्रणालियां पर्याप्त विकसित है। यहां स्थानीय स्वशासन प्रभावपूर्ण भूमिका निभाता है। शासन संचालन में विधि को पर्याप्त महत्व दिया गया है, विधि के शासन के लिए यह दुनियां में प्रसिद्ध है, यहां परम्पराओं, मान्यताओं तथा अभिसमयों को भी पर्याप्त महत्व दिया गया है।

5.2 पृष्ठभूमि : ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था

ग्रेट ब्रिटेन में संसदीय शासन और प्रजातान्त्रिक प्रणाली की परम्पराएं बहुत पुरानी हैं। विश्व में इसे संसदीय शासन का जन्मदाता कहा जाता है। यहां की शासन व्यवस्था की वास्तविक शक्ति मन्त्रिमण्डल के हाथों में रहती है। जो सम्राट के नाम से इसका संचालन करता है। मन्त्रिमण्डल का नेतृत्व प्रधान-मंत्री करता है। विलियम हारकोर्ट ने इसे "तारों के बीच चन्द्रमा बतलाया है।"

यह कॉमन्स सभा में यहुमत दल का नेता होता है और सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाता है। अन्य मन्त्री प्रधान मंत्री के परामर्श से सम्राट दारा नियुक्त किये जाते है। मंत्रि-मण्डल देश के प्रशासन की नीतियां बनाता है तथा संसद की स्वीकृति के याद उन्हें लागू करता है। नीति कार्यान्वित करते समय मन्त्रिमण्डल की सहायता प्रशासनिक तन्त्र द्वारा की जाती है। प्रो० डायसी ने इन दो कार्यपालिकाओं में अन्तर इन शब्दों में बताया है, "शासन का प्रत्येक कार्य क्राउन (शासन सम्राट) के नाम पर किया जाता है, परन्तु वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिमण्डल में निहित है इसे कैबिनेट प्रणाली भी कहते हैं।"

यहां कि लोक सेवाएं तथा लोक प्रशासन उन देशों की श्रेणी में आते है, जहां कुशलता और संवेदनशीलता का ग्राफ अत्यन्त ऊँचा है।

5.3 ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं

ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था की अनेक विशेषताएं हैं जो इस प्रकार से हैं -

5.3.1 उत्तरदायी एवं कल्याणकारी प्रशासन :

ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था को पदसोपानात्मक तथा वैधानिक प्रणालियों से प्रत्येक स्तर पर उत्तरदायी बनाया गया है। संसदीय शासन प्रणाली होने के कारण प्रत्येक प्रशासनिक विभाग को किसी न किसी मंत्री के अधीन रखा गया है। मंत्री को ही प्रशासनिक असफलताओं तथा अकर्मण्यताओं के क्रम में संसद में उत्तर देना पड़ता है, ब्रिटिश जनता की स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, परिवहन, भोजन तथा सुरक्षा सम्बंधी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में राज्य द्वारा संचालित प्रशासनिक संगठनो द्वारा सहायता की जाती है। यद्यपि बीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों में सामाजिक जन कल्याण की मूलभूत जिम्मेदारी अभी भी राज्य के कंधों पर ही है। प्रशासनिक निर्णय भी मूलत: मंत्रिमण्डलीय निर्णयों से प्रभावित होते हैं। इनका न्यायपालिका द्वारा पुन: परीक्षण नहीं किया जा सकता है, फिर भी कानूनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं होता है।

यहां लोक प्रशासन पर जनता का नियंत्रण रहता है। लोक नियन्त्रण औपचारिक रूप से मन्त्रिमण्डल पर होता है। मन्त्रिमण्डल किसी विभाग की घटनाओं के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी रहता है। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व दो प्रकार का होता है - एक सामूहिक उत्तरदायित्व तथा दूसरा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व - सामूहिक उत्तरदायित्व सरकारी नीति के प्रति मन्त्रियों का होता है जबकि व्यक्तिगत उत्तरदायित्व प्रत्येक मंत्री का उसके विभाग के प्रति रहता है। सामूहिक उत्तरदायित्व में एक मंत्री अपने कार्यो के अतिरिक्त अपने साथियों के कार्यो के लिये भी उत्तरदायी रहता है। एक मंत्री की आलोचना एवं प्रशंसा पूरे मन्त्रिमण्डल की आलोचना एवं प्रशंसा समझी जाती है। मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य एक साथ तैरते और एक साथ डूबते हैं। कोई मन्त्री अपनी इच्छा से मनमाना काम करके सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को उसके लिये उत्तरदायी नहीं बना सकता। मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति के बिना किये गये कार्य के लिए कोई मन्त्री सामूहिक उत्तरदायित्व का नाम लेकर अपना बचाव नहीं कर सकता। उस मंत्री को त्याग पत्र देना पड़ता है।

5.3.2 प्रशासन का राजनीतिक नेतृत्व:

ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासन की संरचना पिरामिडनुमा है। इसके शीर्ष पर प्रधान मंत्री होते हैं। प्रधान मंत्री संसद में बहुमत दल का सदस्य होता है। वह प्रशासन पर राजनीतिक नेतृत्व रखने के लिए उत्तरदायी है तथा विभाग में संगठन संबंधी सभी समस्याओं का अन्तिम निर्णायक है। प्रशासन की सफलता-असफलता का उत्तरदायित्व प्रधान मंत्री का होता है। वह अपने अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। वे अपने विभाग में पूरे प्रशासन पर छाये रहते हैं। उनकी प्रभावशीलता उनके व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। हेरॉल्ड निकल्सन ने लिखा है, "एक सशक्त व्यक्तित्व वाला मंत्री अपने विभाग के वातावरण को तुरन्त बदल देता है। घटनाओं के लिखित शब्द की अपेक्षा वातावरण एक महत्वपूर्ण तत्व है।"

प्रशासनिक संरचना में प्रधान मंत्री के बाद कनिष्ठ मंत्री होते हैं। इन्हें संसदीय अवर सचिव, संसदीय सचिव या वित्तीय सचिव आदि नामों से जाना जाता है। ये अपने विभाग के कार्यो का सम्पादन करके प्रधान मंत्री के कार्यभार को हल्का करते हैं। संसदीय सचिव या अवर सचिव दारा विभाग के आन्तरिक प्रशासन का निरीक्षण किया जाता है। विंस्टन चर्चिल के

अनुसार "अवर सचिव के कार्य बदलते रहते हैं किन्तु उसके दायित्व हमेशा सीमित रहते है। उसे मन्त्रालय से निश्चित नीतियों का कार्यान्वित करने में अपने प्रभुत्व की सहायता करनी होती है,जबकि मन्त्रिमण्डल का न तो वह सदस्य है और न वहां तक उसकी पहुंच है। "मन्त्री तथा संसदीय सचिव के आपसी संबंध के विषय में 1949 में प्रधानमंत्री एटली ने कहा था कि कनिष्ठ मंत्री को नागरिक सेवकों का परामर्श अपने मन्त्री तक पहुंचा देना चाहिए क्योंकि वही संसद के प्रति उत्तरदायी होते है। स्वयं कनिष्ठ मंत्री को अपनी ओर से सिविल सेवकों के परामर्श का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। निकल्सन के अनुसार "केवल मंत्री दारा सिविल सेवक के मत की अवहेलना न्यायोचित है। संसदीय सचिव का कार्य नीति निर्धारित करना अथवा उसे बदलना नहीं है यह कार्य मन्त्री का है।"

विभागीय संरचना में मन्त्री और संसदीय सचिव के बाद विभाग का प्रशासनिक मुखिया लोक सेवक (सचिव) होता है। उसके दो महत्वपूर्ण कार्य हैं - (क) वह विभाग का मुख्य प्रबन्धक होता है तथा विभाग के सभी (प्रशासकीय) कार्यो के लिए उत्तरदायी होता है। संगठन संबंधी कार्यो के लिए वह मन्त्री के प्रति उत्तरदायी होता है। (ख) वह विभागीय नीति एवं प्रशासन के प्रत्येक मामले पर मन्त्री का परामर्शदाता है। स्थायी सचिव तथा मंत्री के बीच परस्पर विश्वासपूर्ण सम्बन्ध रहना चाहिए। मन्त्री को यह भरोसा रहे कि उसकी नीतियाँ विभल में सही रूप से क्रियान्वित की जा रही है और स्थायी सचिव से प्राप्त परामर्श औचित्यपूर्ण है। स्थायी सचिव को लोचशील होना चाहिए। मन्त्री और उसके विभागों में परिवर्तन होता रहता है, अत: स्थायी सचिव को विभिन्न स्वभाव तथा राजनीतिक दृष्टिकोण वाले मन्त्रियों के आधीन रहने का अभ्यस्त होना चाहिए।

स्थायी सचिव के बाद विभागीय संगठन अनेक पदाधिकारियों में व्याप्त होता है। स्थायी सचिव की सहायता के लिए एक - दो उप सचिव होते हैं। ये मन्त्रालय की विभिन्न शाखाओं का निरीक्षण करते हैं। उप सचिव के अधीन सहायक सचिव होते हैं। उनके बाद प्रधान तथा सहायक प्रधान होते हैं। विभाग के समस्त अधिकारी स्थायी सचिव के प्रति और उनके माध्यम से मन्त्री के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

5.3.3 प्रशासनिक कुशलता :

यहां संसद में उठने वाले प्रश्नों, वाद-विवाद, लेखा एवं अंकेक्षण प्रणाली तथा संसदीय समितियों के भय के कारण प्रशासनिक कुशलता व्याप्त रहती है। अत्याधुनिक मशीनों, कार्य प्रक्रियाओं तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा प्रशासन को चुस्त-दुरूस्त बनाए रखा जाता है। वस्तुत: ब्रिटिश नागरिक स्वभावत: उत्तरदायी संवेदनशील, राष्ट्रप्रेमी तथा सहयोगी होते हैं। अत: प्रजातान्त्रिक मूल्यों के प्रचार में उनकी स्वाभाविक रूचि होती है जो प्रशासनिक कुशलता का मूलाधार है। इस सन्दर्भ में ब्रिटेन की पुलिस (स्कॉटलैण्ड यार्ड) विश्वभर में अपनी कुशलता के लिए प्रसिद्ध है।

5.3.4 ब्रिटिश प्रशासन-विकास का परिणाम :

ग्रेट ब्रिटेन का संविधान निर्मित न होकर विकसित है, वहां का प्रशासन भी लम्बे विकास का परिणाम है। जे.एस. कॉस के शब्दों में "ब्रिटिश प्रशासन की संरचना तार्किक की अपेक्षा कालक्रम के अनुसार है"। मध्यकालीन राजाओं के समय प्रशासनिक विभागों की स्थिति ऐसी थी मानो वे राजाओं की घरेलू समितियां हो। तत्कालीन सरकारी अधिकारियों की स्थिति आज से भिन्न थी। लॉर्ड चांसलर राज्य का एक मुख्य क्लर्क मात्र होता था। सरकार के सीमित कार्यो को सम्पन्न करने के लिए विभागों का संगठन किया जाता था। ये मात्र राज्य की सुरक्षा, राजनयिक संबंधों का संचालन, राजस्व एकत्रित करना, आन्तरिक शांति व्यवस्था बनाए रखना आदि कार्य करते थे। राज्य के कार्यो में वृद्धि के साथ- साथ प्रशासकीय विभागों की संख्या तथा कार्यो में भी वृद्धि हुई। अनेक नए विभागों का जन्म और पुराने विभागों के संगठन तथा कार्यो में भी परिवर्तन किये गए। पुराने विभागों में मुख्य विभाग राजकोष है। स्टुअर्ट राजाओं के समय तक राजकोष लॉर्ड हाई ट्रेजरार के आधीन था। जेम्स प्रथम ने निर्णय लिया कि इस शक्तिशाली अधिकारी के दायित्वों को अन्य मंत्रियों में बांट दिया जाए। 1612 में इस हेतु एक बोर्ड बनाया गया और उसे राज्य के वित्त विभाग के पर्यवेक्षण का काम सौंपा गया। बोर्ड का मुख्य कार्यकर्ता "चान्सलर ऑफ द एक्सचेकर है।" यह महत्वपूर्ण पदाधिकारी प्रधान मंत्री नागरिक सेवा पर नियंत्रण रखता है। बोर्ड के अन्य सदस्य कॉमन्स सभा के बहुमत दल के सचेतक (Whip) होते हैं। पुराने प्रशासनिक कार्यालयों में राजा की परिषद् मिनी प्रिवी परिषद, लॉर्ड चांसलर, राज्य सचिव का कार्याल य आदि उल्लेखनीय हैं।

5.3.5 ब्रिटिश प्रशासन-एक जीवन्त संगठन:

ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासन में समयानुकूल परिवर्तन होते हैं। वह परिस्थिति और आवश्यकताओं के अनुसार संशोधित हुआ है। ग्रेट ब्रिटेन प्रशासन, समय और स्थान की परिस्थितियों के अनुसार समायोजन के प्रश्न को महत्वपूर्ण मानता है यहां विभागों का संगठन करते समय मंत्रालयों की संख्या एवं उत्तरदायित्व की कोई योजना नहीं बनाई गई थी। जब राज्य के कार्य बढ़े तो उन्हें तत्कालीन मंत्रालयों को सौंप -दिया गया और नए मंत्रालयों की स्थापना कर दी गई। कालान्तर में विभागीय संगठनो में एकरूपता और कार्य कुशलता की समस्या उपस्थित हुई, परिणाम स्वरूप विभागीय पुर्नगठन के प्रयास किये गये। इन प्रयासों द्वारा अनावश्यक विभागों को समाप्त किया गया तथा एक -मन्त्रालय में समान प्रकृति के कार्य रखे गए।

मन्त्रालयों के पुनर्गठन पर विचार के लिए हेल्डन समिति नियुक्त की गई। इस समित का सुझाव था कि ब्रिटिश शासन को दस प्रमुख भागों में संगठित किया जाए - वित्त, राष्ट्रीय सुरक्षा, विदेशी मामले, अनुसंधान और सूचना, उत्पादन, रोजगार, पूर्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं न्याय। समिति की राय थी कि यदि कोई विषय बड़ा है तो एक से अधिक विभाग भी बनाए जा सकते हैं। हेल्डन समिति के प्रतिवेदन को लोकप्रियता प्राप्त हुई,किन्तु सरकार ने कदम नहीं उठाए और प्राक्कलन समिति के आग्रह पर सरकारी संगठन समिति की स्थापना की गई। प्रधानमंत्री एटली ने प्रशासनिक विकास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ब्रिटिश संसद प्रशासकीय संगठन की सुव्यवस्था एवं कार्य कुशलता में पर्याप्त रूचि लेती है। कॉमन्स सभा की प्राक्कलन

एवं जनलेखा समितियां समय-समय पर इस सम्बन्ध में अध्ययन करती हैं तथा उपयुक्त सिफारिशें करती हैं।

5.3.6 प्रशासन में समन्वय :

ब्रिटिश लोक प्रशासन में समन्वय की उपयुक्त व्यवस्था है। प्रत्येक सरकारी विभाग राष्ट्रीय नीति के अलग- अलग पहलुओं को क्रियान्वित करता है। विभागों के कार्य क्षेत्र में पृथकता रहते हुए भी आधारभूत एकरूपता रहती है। वे मूलतः एक ही लक्ष्य के लिए कार्य करते हैं। विभागों के कार्यो में प्रतिद्वन्दिता को रोकने के लिए मानव शक्ति एवं संसाधनों का उचित उपयोग करने के लिए तथा उपलब्ध सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए विभागों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। समन्वय द्वारा प्रशासन में कार्य कुशलता लाई जाती है, अपव्यय की रोकथाम की जाती है, अनावश्यक देरी को रोका जाता है। विभिन्न विभागों में सहयोग पूर्ण संबंधों की स्थापना की जाती है तथा जनता को अधिक से अधिक सेवाएं प्रदान की जाती है। समन्वय की स्थिति ने प्रशासन को जनाकांक्षाएं पूरा करने में सक्षम बनाया है।

ब्रिटिश प्रशासन में समन्वय की स्थापना के लिए विभिन्न संस्थागत प्रबंध किये गये है। मंत्रालय स्तर पर मंत्रिमण्डल द्वारा समन्वय स्थापित किया जाता है। मन्त्रिमण्डल की स्थायी समिति द्वारा यह कार्य सम्पन्न किया जाता है। निम्न अधिकारी स्तर पर ट्रेजरी समन्वय स्थापना करती है। यह विभिन्न सरकारी विभागों के व्यय पर नियंत्रण रखती है और प्रशासकीय सेवाओं में दोहराव तथा अतिराव पर रोक लगाकर उसकी कार्य कुशलता एवं मितव्ययता को बढ़ाती है। प्रत्येक विभाग ट्रेजरी को वार्षिक अनुमान प्रस्तुत करता है। ट्रेजरी सभी विभागों के कार्यो का परीक्षण कर जहां समन्वय न हो वहां समन्वय स्थापित करने का सुझाव भी देती है। समन्वय स्थापना के लिए अनेक अन्तर्विभागीय समितियां होती है। सरकारी विभागों के अधिकारी इन समितियों के सदस्य होते है। प्रत्येक मन्त्रालय भी समन्वय का कार्य करता है।

5.3.7 लोकतान्त्रिक लोक सेवा :

ग्रेट ब्रिटेन में लोक सेवक राज खट का कर्मचारी होता है। इसका पद न तो न्यायिक है और न राजनीतिक। राजमुकूट का सेवक होते हुए व्यावहारिक दृष्टि से लोक सेवक विभागीय मंत्री के अधीन रहते हैं। ये मन्त्रियों को नीति निर्माण में परामर्श देते हैं तथा उनके निर्णयों को कार्यान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। समय-समय पर मन्त्रिगण बदल जाते हैं, किन्तु लोक सेवक स्थायी बने रहते हैं। उनकी योग्यता, भर्ती का तरीका, प्रशिक्षण, सेवा की शर्त, नियन्त्रण, कार्य प्रणाली आदि की व्यवस्था प्रजातान्त्रिक तरीके से सम्पन्न की जाती है।

प्रारम्भ में लोक सेवकों की नियुक्ति शासक वर्ग द्वारा मनमाने तरीके से की जाती थी किन्तु 1910 के परिषद आदेश के बाद प्रतियोगिताएं होने लगी। भर्ती का कार्य लोकसेवा आयोग करता है जिसकी स्थापना 1885 में हुई। भर्ती के बाद लोक सेवकों को समुचित प्रशिक्षण दिया जाता है। यह कार्य विभागों द्वारा संचालित किया जाता है। प्रशासनिक अधिकारियों को एक विभाग और शाखा से दूसरे विभाग और शाखा में स्थानान्तरित करने की व्यवस्था है ताकि वे सभी स्थानों का प्रशासनिक अनुभव प्राप्त कर सके। कर्मचारियों की पदोन्नति की समुचित व्यवस्था है। पदोन्नति कार्य की वार्षिक रिपोर्ट तथा खुली प्रतियोगी परीक्षा; दोनों आधारों पर की

जाती है। प्रत्येक विभाग में पद-वृद्धि आयोग होता है। आयोग की सिफारिश से असन्तुष्ट कर्मचारियों को अपील करने का अधिकार है। लोक सेवकों का कार्य काल सम्राट की इच्छा पर्यन्त है अर्थात् वे अपने पद पर सेवा निवृति की आयु तक बने रहते हैं। लोक सेवकों की सेवा की शर्ते राष्ट्रीय हिटले परिषद द्वारा तय की जाती हैं। परिषद में सरकार तथा कर्मचारी दोनों के प्रतिनिधि होते हैं। लोक सेवाओं का पूरा प्रबन्ध सुनिश्चित नियमों के अनुसार होता है, इसमें स्वेच्छा-चारिता का कोई महत्व नहीं है।

डॉ. हरमन फाइनर ने ब्रिटिश लोक सेवा की निम्न मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया है (1) यह लूट व्यवस्था से प्रभावित नहीं है (2) भर्ती खुली प्रतियोगिता के आधार पर की जाती है (3) भर्ती की व्यवस्था देश की शिक्षा प्रणाली से सम्बन्ध है। (4) रिक्त स्थानों के लिए प्रतिवर्ष परीक्षाएं ली जाती है (5) भर्ती के लिए कम आयु निर्धारित की जाती है (6) एक स्वतन्त्र लोकसेवा आयोग द्वारा योग्यताएं निर्धारित की जाती है तथा परीक्षाएं संचालित की जाती है (7) उच्च शिक्षा प्राप्त प्रत्याशियों को शासक वर्ग में सम्मिलित किया जाता है (8) पदोन्नति, कार्य कुशलता, प्रतिवेदन और अधीनस्थ कर्मचारियों सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने के लिए विभिन्न प्रयास किये जाते हें (9) हिटले परिषद ऐसी संस्थाएं हैं जो सेवा की शर्तो सम्बन्धी विभागीय समस्याओं एवं सामान्य समस्याओं के लिए समाधान ढूंढती है तथा कार्यकुशलता और मोरेल को सुधारने की चेष्टा करती है (10) नागरिक सेवा को राजनीतिक अधिकार दिये गये हैं तथा संसद से उनके सम्बन्धों की समस्या का उपयुक्त समाधान किया गया है (11) सेवाकालीन प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है (12) सामान्यत: लोक सेवा ईमानदार है तथा संसद सम्बन्धित मन्त्रियों की माँगो तथा आवश्यकताओं की प्रति स्वामिभक्त होती हैं (13) राजनीतिक तटस्थता एवं अनामता का पर्याप्त आदर किया जाता है। अपने प्रजातांत्रिक स्वरूप के कारण ही ब्रिटिश लोक सेवा का बड़ा महत्व है। भारतीय लोक सेवा का गठन भी ब्रिटिश लोकसेवा के आधार पर ही किया गया है।

5.3.8 ईमानदारी तथा प्रशासनिक पारदर्शिता :

ब्रिटिश लोक प्रशासन प्राय: भ्रष्टाचार मुक्त रहा है। रिश्वतखोरी एवं भाई भतीजावाद की व्याधियां दशकों पूर्व समाप्त हो चुकी हैं। नागरिक शिकायतों के निवारण हेतु 1967 से संसदीय आयुक्त्त अर्थात ब्रिटिश ओम्बुड्समैन नामक संस्था कार्यरत है। संसदीय आयुक्त लोक सेवकों के विरूद्ध अनियमितताओ, भ्रष्टाचार एवं लापरवाही की जांच करता है। रोचक तथ्य यह है कि संसदीय आयुक्त के पास वर्ष भर में मात्र 400 -500 शिकायतें ही आती हैं और उनमें भी अभी तक कोई भ्रष्टाचार का बड़ा मामला सामने नहीं आया है। प्रशासनिक कार्य कुशलता तथा जवाब देयता में वृद्धि करने के लिए अनेक ठोस कदम मार्गरेट थैचर सरकार द्वारा उठाये गए। इसी प्रकार जॉन मेजर द्वारा जून 1991 में नागरिक अधिकार पत्र (सिटीजन चार्टर) नामक व्यवस्था भी प्रारंभ की गई है। नागरिक अधिकार पत्रों के माध्यम से प्रशासनिक पारदर्शिता सुनिशित हुई है। ब्रिटेन में नागरिक अधिकार पत्र न केवल अंग्रेजी भाषा में बल्कि पंजाबी, गुजराती, बंगाली, हिन्दी, चीनी, वियतनामी इत्यादि भाषाओं में भी उपलब्ध है प्रशासनिक ईमानदारी, कार्य कुशलता तथा पारदर्शिता बनाए रखने के लिए प्रधान मंत्री स्वयं निगरानी रखते हैं तथा संसद में इसकी पृथक से रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं।

5.3.9 एकात्मक प्रशासन:

इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड, वेल्स तथा उत्तरी आयरलैण्ड इत्यादि द्वीपों का क्षेत्रफल कम है तथा जनसंख्या भी सीमित है। अत: ब्रिटेन में एकात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। भारत तथा अमेरिका की तरह ब्रिटेन में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय दो स्तरों पर सरकारें नहीं होती हैं बल्कि एक ही सरकार के अन्तर्गत समस्त ग्रेट ब्रिटेन का प्रशासन संचालित होता है जो "एकात्मक प्रशासन" का पर्याय है। यद्यपि नगरों एवं गांवो में स्थानीय स्वशासन की स्वतंत्र सरकारें होती हैं किन्तु इन सरकारों को प्रधान मंत्री एवं उनके मंत्रिमण्डल द्वारा ही दिशा निर्देश जारी किए जाते हैं लन्दन स्थित प्रशासनिक विभागों, मंत्रालयों तथा उनके कार्यकारी संगठनों की शाखाएं सम्पूर्ण देश (द्वीपो) में फैली हुई हैं। जिनका नियंत्रण निर्देशन सम्बन्धित विभाग का मंत्री ही करता है।

5.3.10 विस्तृत प्रशासनिक ढाँचा (केन्द्रीय) :

ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था में प्रत्येक विभाग का कोई न कोई राजनीतिक मंत्री अवश्य होता है। मंत्री को फस्ट क्लास लॉर्ड, चांसलर ऑफ एक्सचेकर विभागीय मंत्री या बोर्ड अध्यक्ष या सचिव इत्यादि कई नामों से जाना जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि सभी के नाम के साथ कोई मंत्री 'शब्द अनिवार्य रूप से प्रयुक्त्त हो। राजनीतिक मंत्री का कार्य नीति निर्माण तथा नियंत्रण से सम्बन्धित है। शेष सभी प्रशासकीय कार्य लोक सेवक सम्पादित करते हैं। bade विभागों के कैबिनेट मंत्री के आधीन दो या तीन कनिष्ठ मंत्री होते हैं जिन्हें "पार्लियामैन्टरी अन्डर सैक्रेटरी ऑफ स्टेट" कहा जाता है।

राजनीतिक नेतृत्व के आधीन प्रत्येक विभाग का प्रशासनिक प्रमुख "परमानेन्ट सैकेटरी" कहलाता है, जो लोक सेवाओं का वरिह अधिकारी होता है। परमानैन्ट सैक्रेटरी के अधीन कई उप सचिव, अवर सचिव, सहायक सचिव प्रिंसीपल तथा सहायक प्रिंसीपल अधिकारी एवं अन्य कर्मचारी कार्य करते हैं। राजनीतिज्ञों, न्यायाधीशों तथा औद्योगिक कार्मिकों के अलावा अन्य सभी कार्मिक लोक सेवक कहलाते हैं जो ताज के सेवक माने जाते है। प्रशासनिक विभागों के अधिकांश मुख्यालय लन्दन में स्थित हैं जो वेस्ट मिनिस्टर (संसद) भवन के पास में स्थित व्हाईट हाल में स्थापित हैं। ब्रिटिश प्रशासनिक विभागों का भौगोलिक अधिकार क्षेत्र भी एक समान नहीं है। जैसे-

(i) अधिकांश विभाग ऐसे हैं जो सम्पूर्ण यूनाइटेड किंगडम में अधिकार रखते हैं जैसे सीमा एवं उत्पाद शुल्क, वाणिज्य,खनन, रक्षा विभाग, इत्यादि

(ii) कुछ विभाग ऐसे हैं जिनका कार्यक्षेत्र केवल इंग्लैण्ड तक सीमित है, जैसे-स्वास्थ्य विभाग।

(iii) कुछ विभाग ऐसे हैं जिनका कार्यक्षेत्र इंग्लैण्ड, वेल्स तथा स्कॉटलैण्ड तक तो है किन्तु उत्तरी आयरलैण्ड के लिए नहीं है, जैसे- रोजगार विभाग

प्रशासनिक विभागों की संख्या तथा कार्यक्षेत्र मंत्रिमण्डल द्वारा निर्धारित किया जाता है। सन 1951 में तत्कालीन प्रधान मंत्री सर विन्सटन चर्चिल द्वारा 38 विभागों की स्थापना की गई थी जिनकी संख्या 1994 में 61 थी। इन विभागों में 19 कैबिनेट विभाग हैं। प्रशासनिक विभागों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है -

(i) प्रथम श्रेणी में वे विभाग हैं जो बड़े महत्वपूर्ण तथा प्राचीन विभाग है और जिनका राजनीतिक प्रभारी केबिनेट मंत्री होता है। ऐसे 9 विभाग केबिनेट विभागों के नाम से जाने जाते हैं। इनमें राजकोष, गृह, उपनिवेशन, विदेश, वायु सेना, युद्ध, नौ सेना, व्यापार, शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, श्रम डाक, सार्वजनिक निर्माण, उद्योग, समन्वय एवं स्कॉटलैण्ड विभाग सम्मिलित हैं।

(ii) दूसरी श्रेणी के विभाग वे हैं जो कनिष्ठ स्तर के मंत्री के अधीन होते हैं। इन्हें गैर केबिनेट विभाग भी कहा जाता है जैसे - कला एवं पुस्तकालय, विधि विभाग तथा सागर पार विकास प्रशासन इत्यादि।

(iii) गैर केबिनेट विभागों के पश्चात् तीसरी श्रेणी में वे विभाग आते हैं जिनका कोई राजनीतिक मंत्री प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं करता बल्कि कोई अन्य मंत्री ही यदा-कदा निर्देश देता है। इन विभागों को नौकरशाही नेतृत्व विभाग कहा जाता है। इनमें केन्द्रीय सांख्यिकी विभाग, चेरिटी कमीशन तथा वन आयोग इत्यादि सम्मिलित हैं।

(iv) चौथी श्रेणी में गैर विभागीय निकाय सम्मिलित हैं। इन्हें राष्ट्रीयकृत उद्योग (लोक उपक्रम) भी माना जाता है। ब्रिटिश रेलवे, ब्रिटिश स्टील तथा नेशनल कोयला बोर्ड इत्यादि इसी श्रेणी में हैं। इसी श्रेणी में अर्द्ध गैर सरकारी संगठन भी सम्मिलित है जो स्वायत्तता प्राप्त विशिष्ट संगठन हैं।

कार्य प्रकृति के आधार पर ब्रिटिश प्रशासनिक विभागों को 5 ग्रुपों में विभक्त किया गया है। एक ग्रूप में कई विभाग हैं जो लगभग समान कार्य क्षेत्र रखते हैं -

(i) सामान्य विभाग - राजकोष, गृह, स्कॉटलैण्ड विभाग

(ii) आर्थिक विभाग - कृषि, मत्स्य, बाध, वाणिज्य, सीमा एवं उत्पाद शुल्क ऊर्जा एवं ईधन, श्रम, राष्टीय सेवा, आपूर्ति, डाक, सार्वजनिक निर्माण आवागमन, स्थानीय स्वशासन, परिवहन, नागर विमानन इत्यादि

(iii) सामाजिक कल्याण विभाग - शिक्षा,स्वास्थ्य, तकनीकी सहयोग, पेन्शन बीमा, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान इत्यादि

(iv) शाही एवं वैदेशिक विभाग - विदेश, उपनिवेश तथा राष्ट्रमण्डल संबंध विभाग

(v) रक्षा विभाग - नौ सैना (एडमिरलटी) युद्ध, वायुसैना, विमानन तथा प्रतिरक्षा विभाग इत्यादि।

भारत एवं अमेरिका की भांति ब्रिटेन में भी अनेक प्रकार की प्रशासनिक संस्थाएं - बोर्ड, आयोग प्राधिकरण तथा न्यायाधिकरणों के रूप में कार्यरत है। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार अनेक प्रशासकीय संगठन परिवर्तित किये जा रहे हैं, जैसे - सन 1988 में 23 सदस्यीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को परिवर्तित करके विश्वविद्यालय वित्त परिषद के रूप में संचालित किया जा रहा है। प्रशासकीय प्रक्रियाओं में सुधार हेतु प्रत्येक विभाग में ओ एण्ड एम इकाई अवश्य होती है।

5.3.11 कुशल कार्मिक प्रशासन:

ब्रिटिश लोक सेवाएं कुशलता तथा निष्पक्षता की पर्याय हैं। लोक सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा वेतन इत्यादि सेवा शर्तो के सम्बन्ध में समयानुसार सुधार भी हुए हैं। हरमन फाइनर ने ब्रिटिश लोक सेवाओं की निम्नांकित विशेषताएं वर्णित की है -

1. ब्रिटिश लोक सेवाएं अमेरिकी तंत्र की भांति 'लूट प्रणाली' से ग्रस्त नहीं है।
2. भर्ती का आधार योग्यता है, अत: प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से चयन होता है।
3. प्रतियोगी परीक्षाएं मुख्यत: स्कूली तथा विश्वविद्यालय शिक्षा पाठ्याक्रमों से सम्बद्ध होती है।
4. सामान्यत: कम आयु के व्यक्ति ही लोक सेवाओं में प्रवेश पाते हैं। अधिकांश पदों पर आयु प्रवेश सीमा 21-28 वर्ष है।
5. एक स्वतंत्र अभिकरण दारा भर्ती प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है।
6. स्कूली शिक्षा प्राप्त उम्मीदवार लिपिक पद तथा उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति प्रशासनिक सेवाओं में चयनित होते हैं।
7. लोक सेवकों के मूलभूत तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण पर बहुत बल दिया जाता है।
8. अधिकाँश लोक सेवक तटस्थ, ईमानदार तथा कार्य कुशल होते हैं।
9. लोक सेवाओं में अनामता का सिदान्त प्रचलित है।
10. लोक सेवकों को पर्याप्त राजनीतिक अधिकार दिये गए हैं।
11. कार्य कुशलता तथा संतुष्टि बनाए रखने के लिए पदोन्नति एवं अन्य अभिप्रेरणाएं दी जाती है।
12. कार्मिकों की शिकायतों के समाधान हेतु बहुस्तरीय व्हिटले परिषदें कार्यरत है।

इसके अतिरिक्त अन्य विशेषताएं भी उल्लेखनीय हैं -

1. ब्रिटिश लोक सेवाओं में कार्य करने वाले व्यक्तियों को सामाजिक सम्मान एवं प्रीतष्ठा मिलती है।
2. उच्च स्तरीय पदों पर प्राय: उच्च घरानों के व्यक्ति ही प्रवेश पाते हैं जो ओक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज में अध्ययन करते है।
3. लोक सेवाओं में आकर्षक सुविधाएं हैं, अत: एक बार प्रवेश पाने के पश्चात् अधिकांश व्यक्ति सेवानिवृति तक बने रहते हैं।
4. भारत की तरह ब्रिटेन में भी रैंक वर्गीकरण की व्यवस्था प्रचलित है जिसमें लोक सेवकों का वर्गीकरण उनकी व्यक्तिगत सेवा या स्थिति के आधार पर होता है। सामान्यत: प्रशासकीय, सामान्य निश्पादक लिपिक, निम्न स्तरीय औद्योगिक, गैर-औद्योगिक, वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक वर्गो में वर्गीकरण किया गया है।
5. हड़ताल करना कानूनी अपराध नहीं माना गया है बल्कि इसे अनुशासनहीनता की श्रेणी में रखा गया है।

ब्रिटिश लोक सेवाओं में लगभग 8 लाख कार्मिक कार्यरत हैं। सन 1979 से 1999 तक 20 प्रतिशत कार्मिकों के पद समाप्त कर दिये गए हैं। स्वास्थ्य, आवागमन, ऊर्जा तथा

पर्यावरण जैसे विभागों की योजनाएं एवं कार्यक्रम सीमित किये गए हैं। निजीकरण के इस दौर में लोक सेवा विभाग समाप्त कर दिया गया है तथा लोक सेवाओं को सीमित एवं कुशलता के दायरे में लाया जा रहा है।

5.3.12 तटस्थता एवं प्रतिबद्धता:

लोक सेवाओ में तटस्थता का सिद्धान्त ब्रिटेन से प्रतिपादित हुआ है। तटस्थता या निष्पक्षता से तात्पर्य लोक सेवकों का राजनीतिक रूप से तटस्थ रहना है। ब्रिटेन में चाहे कोई भी दल सत्ता में हो, मंत्री किसी भी राजनीतिक विचारधारा का हो तथा नीतियाँ किसी भी रूप में परिवर्तित की जाएं लोक सेवकों का कार्य निष्पक्ष भाव से उन्हें स्वीकारना है। प्रतिबद्धता (कमिटमैंट) का आशय आस्था एवं पूर्ण सहयोग से है। यद्यपि तटस्थता एवं प्रतिबद्धता दो, विपरीत विचारधाराएं है फिर भी ब्रिटेन में लोक सेवक तटस्थ होते हुए राष्ट्र, कानून लोकतंत्र तथा जन कल्याण के उच्च आदर्शो के प्रति प्रतिबद्धता प्रकट करते हैं।

5.3.13 समिति व्यवस्था:

किसी बड़े उद्देश्य कार्य या संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कुछ छोटे समूह या विशेषज्ञ इकाईयां कार्यों के अनुसार गठित कर दी जाती हैं, यही समिति व्यवस्था है। विश्व के सभी देशों में समिति व्यवस्था प्रवर्तित है किन्तु ब्रिटेन तथा भारत में इसका प्रसार कुछ अधिक प्रतीत होता है। ब्रिटेन में संसद मंत्रिमण्डल, मंत्रालयों, विभागों, स्थानीय निकायों तथा शिक्षा तंत्र में असंख्य समितियां कार्यरत होती हैं। समिति व्यवस्था के जहां अनेक लाभ हैं, वहीं हानियाँ भी हैं ब्रिटेन की समिति व्यवस्था से दुःखी होकर सर विंस्टन चर्चिल ने कहा था- "मेरी समझ में ये समितियां समाप्त हो जानी चाहिए क्योंकि इन्होंने हमें इस तरह नियंत्रित कर लिया है जैसे कि आस्ट्रेलियावासी खरगोशों से नियंत्रित हैं (ज्ञात रहे एक समय खरगोशों की अधिक संख्या आस्ट्रेलिया की भीषण समस्या बन गई थी)।"

5.3.14 सामान्यज्ञों एवं विशेषज्ञों का समान महत्व:

भारत में सामान्यज्ञों अर्थात् प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारियों का वर्चस्व है जबकि अमेरिका में विशेषज्ञों अर्थात तकनीकी सेवाओं के अधिकारियों का वर्चस्व है। ब्रिटेन की लोक सेवाओं में अधिकांश समय सामान्यज्ञों का ही प्रभुत्व रहा है किन्तु विगत एक-दो दशक से स्थिति में परिवर्तन आया है तथा फ्रांस की तरह ब्रिटेन में भी अब सामान्यज्ञों एवं विशेषज्ञों का समान महत्व हो गया है। वस्तुतः निजीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण के इस युग में तकनीकी ज्ञान की उत्पादकता सामान्यज्ञों की तुलना में अधिक आँकी जा रही है जबकि सामान्यज्ञों का वर्चस्व परम्परागत नौकरशाही की विरासत को ढोना है।

5.3.15 अविशेषज्ञों (मंत्रियो) तथा विशेषज्ञों (प्रशासकों) का समन्वय:

ब्रिटिश शासन सूत्र का संचालन मन्त्रिगण एवं लोक सेवक करते हैं। मन्त्रियो में प्रशासनिक अनभिज्ञता होती है। मंत्री अपने-अपने विभाग के अध्यक्ष होते हैं, किन्तु उन्हें वास्तविक अनुभवों और प्रशासनिक बारीकियों का ज्ञान नहीं होता है। राजनीतिक आधार पर नियुक्त मंत्री का कार्यकाल अनिशित होता है। वह प्रपंचो में इतना फंसा रहता है कि प्रशासन के

वास्तविक संचालन का ज्ञान उसे नहीं हो पाता। वह नौसिखिया अथवा गैर विशेषज्ञ होता है। ऐसे अवसर कदाचित ही आते हैं जबकि अर्थशास्त्री को 'चांसलर ऑफ एक्सचेकर' डॉक्टर को स्वास्थ्य मन्त्री तथा अध्यापक को शिक्षा मंत्री नियुक्त किया जाए। किसी नौसिखिये सांसद को मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। लोक सेवक प्रशासन के क्षेत्र में विशेषज्ञ होते हैं (वे मन्त्रियों को नीति निर्धारण व नीतियों को कार्यान्वित करने में सहायता देते हैं। लोक सेवकों का प्रशिक्षण और अनुभव उनको विशेषज्ञ बना देता है। राजनीतिक प्रपंचों से दूर रहकर वे अपने विभाग की भीतरी नीति, तथ्यों का अच्छा ज्ञान रखते हैं। वे मन्त्रियों को उचित परामर्श तथा अपने पद की परिधियों में रहकर ही नीतियों को कार्य रूप देने में सहायता करते हैं। ब्रिटिश प्रशासन में इनके द्वारा विशेषज्ञ-अविशेषज्ञ के मध्य समन्वय बना रहता है।

5.3.16 विधि का शासन:

ग्रेट ब्रिटेन में विधि का शासन है। वहां कानून की दृष्टि से साधारण नागरिकों एवं प्रशासनिक अधिकारियों में कोई भेद नहीं है। फ्रांस की भांति यहां प्रशासनिक कानून अथवा प्रशासनिक न्याय की व्यवस्था नहीं है। किसी व्यक्ति को स्वेच्छापूर्ण शक्तियां नहीं दी गई है। प्रो० डायसी ने विधि के शासन की तीन मुख्य बातों का उल्लेख किया है -

(i) कानून की सर्वोपरिता- जब तक कोई व्यक्ति कानून के विरूद्ध आचरण न करे और यह देश के सामान्य न्यायालय में सिद्ध न हो जाए, तब तक किसी को दण्ड नहीं दिया जा सकता है और न ही किसी को शारीरिक हानि पहुंचायी जा सकती है।

(ii) कानून की समानता- कोई व्यक्ति कानून के ऊपर नहीं है वरन् प्रत्येक व्यक्ति देश के सामान्य कानून से शासित होता है तथा देश के सामान्य न्यायालयो के क्षेत्राधिकार में रहता है। जो एक व्यक्ति के लिए कानून है वह समस्त नागरिकों के लिए कानून है।

(iii) संवैधानिक सिद्वान्तों का न्यायिक निर्णय की उपज होना- विधान में अस्पष्टता में न्यायालयों के निर्णय ही अन्तिम माने जाते हैं। संसदीय कानूनों का निर्माण विधि के शासन की रक्षा के लिए किया जाता है। विधि के शासन ने ब्रिटिश प्रशासन पर लोक संप्रभुता का वर्चस्व स्थापित किया है। यद्यपि ब्रिटिश शासन में केन्द्रीयकरण की प्रवृति व्याप्त है, जिसके अन्तर्गत शासन की समस्त शक्तियां मंत्रिमण्डल नामक संस्था में समाहित होती जा रही है।

किन्तु "विधि के शासन" के मूलभूत सिद्धान्त ब्रिटेन में प्रवर्तित हैं। इसके अन्तर्गत कानून की सर्वोच्चता, सभी के लिए समानता तथा न्यायिक निर्णयों का आदर सभी को सहजता में स्वीकार्य है। संविधान सहित बहुत से कानून असंहिताबद्ध हैं फिर भी भ्रम या असमंजसता की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है, क्योंकि प्राकृतिक न्याय एवं मानवाधिकारों में सरकार, प्रशासन एवं आम व्यक्ति की समान रूचि रहती है।

5.3.7 अन्तर्राष्ट्रीयतावाद:

वर्तमान अन्तर्राष्टीयतावाद के युग में अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं उतनी महत्वपूर्ण हैं जितनी राष्टीय समस्याएं होती हैं। ब्रिटिश सरकार जब नीति सम्बंधी कोई निर्णय लेती है तब उन निर्णयों

को अन्तर्राष्टीय दायित्वो के अनुरूप ढालने का प्रयास किया जाता है। विदेश सम्बन्धों का संचालन कुछ विभागों का दायित्व नहीं रह गया है वरन् सभी विभाग इससे प्रभावित रहते हैं। जे.ए. क्रॉस के कथनानुसार "यूरोपीय आर्थिक समुदाय जैसे अन्तर्राष्टीय संगठन की सदस्यता ब्रिटिश लोक प्रशासन के अन्तर्राष्ट्रीयकरण को प्रोत्साहन देती है। अन्य देशों की घटनाओं का ब्रिटिश प्रशासन पर भी प्रभाव पड़ता है।

यद्यपि ब्रिटिश शासन में केन्द्रीयकरण की प्रवृति व्याप्त है जिसके अन्तर्गत शासन की समस्त शक्तियां मंत्रिमण्डल नामक संस्था में समाहित होती जा रही हैं, किन्तु "विधि के शासन" के मूलभूत सिद्धान्त ब्रिटेन में प्रवर्तित हैं। इसके अन्तर्गत कानून की सर्वोच्चता, सभी के लिए समानता तथा न्यायिक निर्णयों का आदर सभी को सहजता में स्वीकार्य हैं। संविधान सहित बहुत से कानून हैं फिर भी भ्रम या असमंजसता की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि प्राकृतिक न्याय एवं मानवाधिकारों में सरकार, प्रशासन एवं आम व्यक्ति की समान रूचि रहती है।

5.3.18 प्रशासन में अभिजातवर्गीय बहुमत:

ब्रिटिश प्रशासन की एक विशेषता उसमें अभिजातवर्गीय बहुमत का होना है। एक शताब्दी पूर्व स्थिति यह थी कि उच्च सैनिक और प्रशासनिक अधिकारी अभिजात जमीदारों के वर्ग से नियुक्त किये जाते थे। इस वर्ग के लोग दोनों सदनों के सदस्य थे और उन्हें मन्त्री पद दिये जाते थे। स्थल और नौ सेनाओं के अधिकारी न्यायाधीश, सरकारी विभागों के अध्यक्ष धनिक वर्गो से ही लिए जाएं तथा उनकी सामाजिक शैक्षणिक पृष्ठभूमि अभिजातवर्गीय हो यह आवश्यक था। आज ब्रिटिश जनरल, जज, सैक्रेटरी, राजदूत तथा नौकरशाही अफसर उच्चवर्गीय होते हैं। सैन्य तथा विदेश विभाग की नियुक्तियों में उच्च वर्ग के युवकों को विशेष प्राथमिकता दी जाती है। प्रशासनिक सेवाओं के लिये प्रतियोगिता परीक्षा व्यवस्था है और एक बोर्ड प्रत्याशियों के व्यक्तित्व की परीक्षा करता है। अधिकांश सफल नवयुवक उच्चवर्गीय होते हैं। अन्य वर्गो के मेघावी युवक प्रशासक वर्ग में सम्मिलित होते हैं, वे कुछ ही समय में उच्च वर्गो का दर्शन स्वीकार कर उसी श्रेणी में आ मिलते हैं। अभिजातवर्गीय युवक उत्तरदायित्व के पदों पर आएं और वे ही देश के प्रशासनिक तथा राजनीतिक नेतृत्व में आगे बढे, इसी विचार ने बल पकड़ रखा था। 1948 से पूर्व तक ऑक्सफोर्ड एवं कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों को विशेष प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार था, उन्होंने सदैव अनुदार दल के प्रतिनिधियों अथवा स्वतन्त्र सदस्यो को ही चुना। 1994 में मजदूर दल की सरकार ने विशेष मताधिकार व्यवस्था को समाप्त कर दिया परन्तु आज ब्रिटिश उच्च पदाधिकारी प्रच्छन्न रूप से अनुदार दल के समर्थक हैं। अनुमानत: प्रत्येक चुनाव में उच्च प्रशासकों का मतदान अनुदार दल के पक्ष में ही होता है।

5.8.19 प्रशासक वर्ग का पूंजीपति वर्ग से संबंध:

ब्रिटिश प्रशासक वर्ग की एक विशेषता पूंजीपति वर्ग से उसका प्रभावी सम्बन्ध है। ये सम्बन्ध युद्वोतर काल में और दृढ़ हो गए। इसका कारण यह है कि प्रशासन का दीर्ध अनुभव प्राप्त कर उच्चाधिकारी उच्च ओद्योगिक क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाते हैं। सेना के अवकाश प्राप्त

जनरल उच्च औद्योगिक क्षेत्र में पद संभाल लेते हैं। अनेक व्यक्ति राजनीतिज्ञों के रूप में मन्त्री बन जाते हैं।

लन्दन सिटी में उच्च प्रशासकों, मन्त्रियों और धन कुबेरों के सामाजिक क्लब बने हुए हैं जिनमें मनोरंजन के साथ राजनीतिक, उद्योग और प्रशासन के महत्वपूर्ण निर्णय किये जाते हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रशासनिक औद्योगिक तथा सैनिक निर्णय 'व्हाइट हाल' में 'कम वेस्टैण्ड क्लबों' में अधिक होते हैं और व्हाहट हाल की औपचारिक कार्यवाही इन्हीं क्लबों के पूर्व निश्चय की तुष्टि मात्र होती है राजकीय बोर्डो, विभिन्न कमीशनों सलाहकार समितियों आदि में उच्च व्यवसायी वर्ग के सदस्य और प्रतिनिधि राजशक्ति का निरन्तर उपभोग करते हैं।

5.3.20 प्रभावी स्थानीय स्वशासन:

यद्यपि ब्रिटेन में एकात्मक शासन पद्धति है तथापि नगरीय एवं ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की स्वतंत्र इकाईयां भी संगठित की गई है। सन् 1888 के कानून के माध्यम से प्राचीन लन्दन शहर में महानगरीय स्वशासन पद्धति है जबकि लन्दन के आसपास बसी कॉलोनियों के लिए महानगरीय काउंटी है। ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन की सबसे प्राचीन संस्था काउंटी है। इन्हें शायर भी कहा जाता है। जैसे हैम्पशायर, यार्कशायर। वस्तुतः काउंटी ब्रिटिश प्रशासन तथा निर्वाचन की मूलभूत इकाई भी है। काउंटी के दो प्रकार हैं- प्रशासनिक काउंटी तथा काउंटी बरो। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की मूल इकाई पेरिश कहलाती है। पेरिश वे संस्थाएं है जहां किसी गांव में स्थानीय चर्च एवं शासन संचालन की परिषद समिति हो। बहुत सारे पेरिश मिलकर जिले का निर्माण करते हैं। स्थानीय स्वशासन की अधिकांश इकाईयों मे जन प्रतिनिधियों से युक्त संचालन समिति होती है जो प्रायः 3 वर्ष के लिए चुनी जाती है। जिस काउंटी में निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं होते हैं, वहां प्रिंसीपल अधिकारी (स्थानीय लेफ्टीनैंट), शेरिफ तथा जस्टिस ऑफ पीस काउंटी प्रशासन को संचालित करते हैं। पेयजल, विद्युत, स्वच्छता, टीकाकरण, शिक्षा तथा समाज कल्याण के कार्य स्थानीय स्वशासन के अधीन हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रेट ब्रिटेन के लोक प्रशासन की अपनी कुछ विशेषताएं व परम्पराएं रही हैं। ब्रिटिश लोक प्रशासन अपनी उच्चता, श्रेष्ठता और सक्षमता के लिए विख्यात है।

5.4 सारांश

ग्रेट ब्रिटेन के लोक प्रशासन की अपनी विशेषताएं, परम्पराऐं तथा मान्यताऐं है। यहां का लोक प्रशासन श्रेस प्रशासन का उदाहरण है। यहां का प्रशासन विकसित एवं निरन्तर प्रगतिशील है। यहां का प्रशासन जनोन्मुखी तथा विकासोन्मुखी है। यहां का प्रशासन उत्तरदायी, कल्याणकारी, कुशल, दक्ष एवं पारदर्शी है। यहां कुशल कार्मिक प्रशासन है। यहां तटस्थता एवं प्रतिबद्धता का कठोरता से पालन किया जाता है। यहां के प्रशासन का नेतृत्व राजनीतिज्ञो (मंत्रियों) के हाथों में है। यहां सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञो में समानता का महत्व बढ़ता जा रहा है। यहां विधि के शासन को कठोरता से अपनाया जाता है। यहां प्रभावी स्थानीय स्वशासन अस्तित्व में है। इस प्रकार ब्रिटिश प्रशासन विश्व के लिए एक आदर्श मॉडल प्रस्तुत करता है। स्टाउट के शब्दो में, "ग्रेट ब्रिटेन के नागरिकों की विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्रशासकीय संगठन द्वारा सेवा की जा रही है। यह

राष्ट्रीय नीति के संचालन का एक प्रभावशाली यन्त्र है। सत्ता की दिशाएं स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष हैं। नागरिक सेवा आज्ञाकारी, सक्षम तथा ईमानदार है, जब जन नीति घोषित कर दी जाती है तब उसकी क्रियान्विति को प्रशासकीय अधिकारियों के विरोध के कारण कदाचित ही तोडा मरोड़ा जाता है। शान्ति और युद्ध में राष्ट्रीय प्रशासन ने भारी उत्तरदायित्वों को निभाने तथा कार्य कुशलता बनाए रखने में अपनी योग्यता का परिचय दिया है। "स्टाउट का उपरोक्त वक्तव्य एवं विचार ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था, उसकी विशेषताओं एवं विश्व में उसकी प्रास्थिति की समग्र तस्वीर प्रस्तुत करता है, जो वर्तमान विश्व सन्दर्भो में भी सत्य प्रतीत होता है और ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था का एक आदर्श तथा व्यावहारिक मूल्यांकन है।

5.5 शब्दावली

संसदीय शासन- जिस शासन व्यवस्था में कार्यपालिका व्यवस्थापिका में से बनाई जाती हो तथा कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी हो एवं नाममात्र की तथा वास्तविक कार्यपालिका के बीच स्पष्ट अंतर हो।

प्रजातान्त्रिक प्रणाली- वह शासन व्यवस्था जो जनता द्वारा चुने गए जनप्रतिनिधियों तारा संचालित हो।

उत्तरदायी प्रशासन- इसमें प्रशासन को मंत्रियों के माध्यम से संसद के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है।

कल्याणकारी प्रशासन- वह प्रशासन जो जनहित के लिए व्यापक स्तर पर काम करे।

सामूहिक उत्तरदायित्व- इसमें एक मंत्री अपने कार्यो के अतिरिक्त अपने साथियों के कार्यो के लिए भी उत्तरदायी होता है।

पारदर्शिता- प्रशासन की गतिविधियों की जानकारी जनता को उपलब्ध कराना अर्थात खुलापन।

जवाबदेही- अपने कार्यो के लिए उच्च संस्था को जवाब देना।

तटस्थता- इसका तात्पर्य लोक सेवकों को राजनीतिक रूप से तटस्थ या निष्पक्ष रहना है।

प्रतिबद्धता- इसका तात्पर्य लोक सेवकों को राष्ट्र, कानून, लोकतंत्र तथा जन कल्याण के उच्च आदर्शो के प्रति प्रतिबद्धता प्रकट करना है।

सामान्यज्ञान- जो सामान्य ज्ञान के आधार पर सरकारी सेवा में भर्ती किए जाते हैं उन्हें सामान्यज्ञ कहते हैं।

विशेषज्ञ- जो विशेष योग्यताओं से सरकारी सेवा में भर्ती होते हैं वे विशेषज्ञ कहलाते हैं।

विधि का शासन- इसका तात्पर्य है शासन संचालन के प्रत्येक क्षेत्र मे विधि ही सर्वोच्च होती है।

स्थानीय स्वशासन- इसमें स्थानीय लोगों द्वारा शासन संचालन किया जाता है। अपने कार्यो के लिये वे ही अंतिम रूप से जिम्मेदार होते हैं।

5.6 अभ्यास प्रश्न

(1) ब्रिटिश प्रशासन उत्तरदायी एवं कल्याणकारी प्रशासन कैसे है? स्पष्ट कीजिये।

(2) ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2007
2. एम. लक्ष्मीकान्त, लोक प्रशासन, टाटा मैकग्राहिल पब्लिशिग कम्पनी लि., नई दिल्ली, 2006
3. बी.एल. फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2007
4. मोहित भट्टाचार्य, लोक प्रशासन के नये आयाम, जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2006
5. अवस्थी एवं माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा 2007

इकाई-6

अमरीका की प्रशासनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 अमरीका का भौगोलिक-ऐतिहासिक-आर्थिक-सामाजिक परिचय

6.3 अमरीका की सामान्य प्रशासन संबंधी विशेषताएं

- 6.3.1 प्रशासन का कानूनी आधार
- 6.3.2 एकरूपता का अभाव
- 6.3.3 प्रशासन में स्वरुपगत भिन्नताएं
- 6.3.4 प्रशासनिक संगठन के विभिन्न रुप
- 6.3.5 विधि का शासन
- 6.3.6 शासन में उत्तरदायित्व की कमी
- 6.3.7 त्रिस्तरीय शासन व्यवस्था
- 6.3.8 केन्द्रीय प्रशासन का सुदृढ़ रूप
- 6.3.9 कार्य की विशिष्ट संस्कृति एवं पर्यावरण
- 6.3.10 शासन में सहयोग एवं समन्वय की कमी
- 6.3.11 राज्य प्रशासन की अत्यधिक स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता
- 6.3.12 अमरीका में न्यायिक पुनरावलोकन

6.4 अमरीका की लोक सेवा संबंधी विशेषताएं

- 6.4.1 लोक सेवकों की संख्या संबंधी विशेषता
- 6.4.2 लोक सेवा का विस्तृत सामाजिक आधार
- 6.4.3 लोक सेवाओं के प्रति कम आकर्षण
- 6.4.4 लोक सेवा जीवन वृत्ति के रूप में नहीं
- 6.4.5 लोक सेवाओं में स्थायित्व की कमी
- 6.4.6 भिन्न-भिन्न सेवाओं के लिए भिन्न-भिन्न परीक्षाओं का आयोजन
- 6.4.7 लोक सेवाओं का वर्गीकरण 'पोजिशन क्लासीफिकेशन' के आधार पर
- 6.4.8 लोक सेवाओं में आंशिक रूप से लूट प्रणाली और आंशिक रूप से योग्यता प्रणाली
- 6.4.9 लोक सेवाओं के सीमित राजनैतिक अधिकार

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 अभ्यास प्रश्न

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप समझ सकेंगे-

- अमरीका की ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक पृष्ठभूमि का वर्णन कर सकेंगे।
- अमरीका की सामान्य प्रशासन संबंधी विशेषताओं की विवेचना कर सकेंगे।
- अमरीका की लोक सेवा संबंधी विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे, तथा
- अमरीका की प्रशासनिक व्यवस्था की अन्य कुछ प्रमुख देशों के साथ तुलना कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में पाठकों को अमरीका की प्रशासनिक विशेषताओं से अवगत कराया गया है। प्रत्येक देश का अपना इतिहास होता है, अपनी अलग भौगोलिक स्थिति होती है, अपनी पृथक संस्कृति और परम्पराएं होती हैं। इसी के साथ प्रत्येक देश की अपनी अलग आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक संस्थाएं, परम्पराएं और कार्यप्रणाली होती है। अमरीका की प्रशासनिक विशेषताओं का वर्णन करने से पूर्व वहाँ की आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि का परिचय कराया गया है। तत्पश्चात् प्रशासनिक विशेषताओं और कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। आइये सबसे पहले अमरीका की आर्थिक-सामाजिक पृष्ठ्भुमि पर एक नजर डालें।

6.2 अमरीका की भौगोलिक-राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि

संयुक्त राज्य अमरीका उत्तरी अमरीकी महाद्वीप के मध्य भाग में स्थित है। 50 छोटे व बड़े राज्यों का यह समूह उत्तरी अमरीका या संयुक्त राज्य अमरीका कहलाता है। इनमें से 49 राज्य मुख्य भूमि और 'हवाई द्वीप' नामक एक राज्य पृथक से स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 92,72,614 वर्ग कि.मी. है। क्षेत्रफल की दृष्टि से अमरीका भारत से चार गुणा बड़ा है। इसकी राजधानी वाशिगंटन डी.सी. है। इसकी जनसंख्या जो सन् 2000 में 28.14 करोड़ थी है जो वर्तमान में लगभग 29 करोड़ है। वहां की भाषा अंग्रेजी और अधिकांश लोगों का धर्म ईसाई है। साक्षरता की दर वहां 96 प्रतिशत हैं। वहां की मुद्रा अमरीकी डॉलर है और प्रति व्यक्ति आय 24,279 डालर है। एक समय था जब भारत सोने की चिड़िया माना जाता था। पैसा कमाने के लालच में दूर-दूर के देशों से लोग भारत आया करते थे। आज अमरीका सबसे अमीर देश माना जाता है। वास्तव में आज वह (अमरीका) सोने की चिड़िया है। आर्थिक दृष्टि से भारत अमरीका के 5० राज्यों में से एक के बराबर ही होगा।

भारत, इंग्लैण्ड और फ्रांस के समान अमरीका का इतिहास सदियों पुराना नहीं है। अमरीका की खोज और इसका नामकरण एक रोचक घटना है। दरअसल हुआ यह कि कोलम्बस नामक पुर्तगाल का एक नाविक भारत की यात्रा पर सन् 1492 में निकला था, जो रास्ता भटक कर भारत के बजाय वह अमरीका पहुंच गया। अब प्रश्न उठता है कि जब अमरीका की खोज कोलम्बस ने की तो अमरीका का नाम कोलम्बस के नाम पर क्यों नहीं पड़ा कोलम्बस भारत के बजाय भटककर सेन सिल्वेडोर, क्यूबा और हिस्पानिया पहुंच गया। इस नए देश के बारे में पता करने के लिए अमेरियो या अमेरिक नाम के व्यक्ति को भेजा गया। उसने यह पता लगाया कि यह एक समूचा महाद्वीप है। सन् 1507 में एक भूगोलज्ञ ने नए महाद्विप का नक्शा बनाया और

इसका नाम अमेरिकस के नाम पर ही रखने का प्रस्ताव रखा। लोगों को उसका यह प्रस्ताव भा गया और इस नए महाद्वीप का नाम अमरीका पड़ गया।

कोलम्बस द्वारा खोज किये जाने के पश्चात् अनेक यूरोपवासी शनैः शनैः उस महाद्वीप में जा बसे। इनमें से इंग्लैण्ड से वहां पहुंचने वाले लोगों का बहुमत था, जिन्होंने आन्तरिक कलह के फलस्वरूप अपना वतन छोड़कर इस नए दीप में बसना पसन्द किया। कालान्तर में अमरीका इंग्लैण्ड के अधीन हो चला। सन् 1776 तक अमेरिका में 13 उपनिवेशों की स्थापना हो चुकी थी। आन्तरिक मामलों में ये समस्त उपनिवेश स्वायत्त व स्वशासित थे लेकिन बाह्य मामलों में इन पर इंग्लैण्ड का आधिपत्य विद्यमान था।

कालान्तर मे अमरीका वासियों का इंग्लैण्ड से भावात्मक जुड़ाव समाप्त हो गया। राजनैतिक और सामाजिक चेतना के फलस्वरूप पूर्ण स्वायत्तता और स्वतंत्रता की इच्छा बलवती होना स्वाभाविक था। लम्बे संघर्ष के फलस्वरूप अमरीकावासियो को सफलता प्राप्त हुई और सन् 1783 में ब्रिटेन और अमरीका के मध्य संधि हुई तथा अमरीका को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई। वर्तमान में अमरीका में शासन व्यवस्था का संचालन वहां के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन की अध्यक्षता में 1787 में निर्मित और 1789 में प्रभावी किये गए संविधान के द्वारा ही किया जाता है। तात्कालिक 13 परिसंघों ने धीरे- धीरे वर्तमान संविधान को मान्यता प्रदान कर दी थी। इस प्रकार विश्व के प्रथम निर्मित और लिखित संविधान का उदय हुआ।

अमरीका की लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था लगभग 220 वर्ष पुरानी है। दुनिया का सबसे मजबूत लोकतंत्र और उनकी शासन व्यवस्था पूर्णतः लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर पूरी तरह से खरी उतरती है। राजनीतिक अस्थिरता की किसी भी प्रकार की चिन्ता वहां के राष्ट्रपति, सरकार तथा नागरिकों को नहीं सताती। वहां के लोकतंत्र की मजबूती का मौलिक कारण यही है कि वहाँ की लोकतांत्रिक व्यवस्था में व्यक्तिवाद को कोई भी स्थान प्राप्त नहीं है। वहाँ भारत की तरह कोई भी व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत राजनीतिक छवि के आधार पर किसी भी पद को अपनी जमींदारी में परिवर्तित नहीं कर सकता।

व्यक्तिगत राजनीति पर राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रीय हितों को प्रधानता दी गई है। संविधान में कुल छह अनुच्छेद हैं, सम्पूर्ण संविधान मुश्किल से बीस पृष्ठों का है, फिर भी इसके प्रावधान एकदम स्पष्टता लिए हुए हैं। कहीं किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं हो सकता। राष्ट्रपति तथा संसद के अधिकारों के बारे में भारतीय संविधान की तरह कहीं किसी संदेहजनक प्रावधान का उल्लेख नहीं है। प्रशासनिक तथा वैधानिक अधिकारों के बीच सुस्पष्ट सीमा रेखा बनाई गई है। सांसदों की बजाय संसद को महत्व दिया गया हैं। सम्पूर्ण प्रशासनिक अधिकारों को राष्ट्रपति में निहित किया गया है। स्वतंत्र प्रशासनिक निर्णय लेने के संदर्भ में राष्ट्रपति को संसद के प्रति जवाबदेह नहीं बनाया गया है। वहीं सरकार से पूर्णतः मुक्त रहकर संसद के दोनों सदनों को किसी भी आदेश, निर्देश तथा कानून बनाने के अधिकार प्राप्त हैं।

वर्तमान में महिलाएं अमरीका की कुल जनसंख्या का 52 प्रतिशत हैं, लेकिन क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि अमरीका में अभी तक कोई महिला राष्ट्रपति नहीं बन पाई है। भारत, बांग्लादेश, श्रीलंका जैसे पिछड़े देशों में शीर्ष पर महिलाएं शासन चला चुकी हैं, लेकिन अमरीका इस मामलें में अभी पीछे है। दर की भूख इतनी अधिक है कि विश्व के अधिकतर देश

अपने निर्यातों के लिए अमरीका पर निर्भर हो चुके हैं। अनेक देश अमरीका से मिल रहे विदेशी निवेश पर भी निर्भर है।

अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में अमरीका की तूती बोलती है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संगठन के निर्माण में अमरीका की महत्वपूर्ण भूमिका थी। अमरीका की विशाल आय के अनुपात में अमरीका को विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में वोटिंग का अधिकार मिल जाता है। ये संस्थाएं भी अमरीका के इशारे पर चलने लगती हैं। इससे जाहिर होता है कि अमरीका की राजनीतिक शक्ति के पीछे उसकी आर्थिक समृद्धि की महत्वपूर्ण भूमिका है।

किसी देश की आय के तीन प्रमुख स्रोत होते हैं। एक स्रोत प्राकृतिक संसाधनों का है। अमरीका में सोना, तेल एवं जंगल भारी मात्रा में पाए जाते हैं। आय का दूसरा स्रोत मनुष्य की मेहनत है। अमरीका के लोग भी बहुत मेहनती है, वहां कोई भी काम हेय की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। वहां के स्त्री-पुरूष पूरे सप्ताह कसकर मेहनत करते हैं और सप्ताह के अन्त में भरपूर एंजोय करने में बिताते हैं। पूरा अमरीका अत्यधिक भोगवादी संस्कृति से ग्रसित है और इसके लिए वे श्रम करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। वहां श्रमिकों को बर्खास्त करने पर किसी तरह की पाबंदी नहीं है। विश्वविद्यालयों में अध्यापकों को वास्तव में काम करना पड़ता है, अन्यथा उन्हें निकाल दिया जाता है। आय का तीसरा स्रोत तकनीक है। अमरीका की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने मेहनत को तकनीकी आविष्कार की विशेष दिशा दी है। पिछले सौ वर्षो में जितने भी प्रमुख आविष्कार हुए हैं, लगभग सभी अमरीका में हुए हैं, जैसे मोटरकार, परमाणु बम, जेट वायुयान, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि। इन आविष्कारों से अमरीका की अर्थशक्ति में भारी वृद्धि हो जाती है।

अमरीका में प्रमुखतः दो ही राजनीतिक दल पाए जाते है-एक रिपब्लिकन और दूसरा डेमोक्रेटिक। दोनों दल आन्तरिक रूप से पूर्णतः प्रजातांत्रिक आधार पर चले हैं। लेकिन वहां की दलीय व्यवस्था काफी ढ़ीली ढ़ाली मानी जाती है। दलीय अनुशासन को वहां बड़ा गुण नहीं माना जाता। अनुशासन की तुलना में स्वतंत्र एवं बेबक मताभिव्यक्ति को राजनीतिज्ञ की गुणवत्ता का मानदण्ड माना जाता है। राजनैतिक दल विचारधारा के व्यापक मंच के रूप में कार्य करते हैं, अतः दल के उच्चाधिकारियों की भी विशेष संगठनात्मक पकड़ नहीं रहती है। दल के भीतर बहुत बहस होती है, असहमतियों का खुला इजहार होता है, इसी बहस में से दल को व्यापक जनाधार प्राप्त होता है। अमरीकी ज्यादा आदर्शवादी एवं अच्छी-अच्छी बातें बोलने वालों को अधिक पसन्द नहीं करते।

अमेरीकी सत्ता पूजीवादी, रंगभेद और अमानवीय मानी जाती है। अमरीका में गरीब, अपाहिज एवं काले लोगों का उत्पीडन होता है, इन्हें मानवाधिकारों से वंचित रखा जाता है। अत्यधिक भोगवाद के फलस्वरूप अमरीका में हिंसा बढ़ती जा रही है। विश्व के सर्वाधिक कैदी अमेरीकी जेलों में हैं जिनमें मानसिक रोगी भी शामिल हैं, ऐसे लगभग दो लाख लोग अमरीकी जेलों में सड़ रहे है। टेक्सास जैसे शहरों में मृत्यु-दर असहनीय रूप से ज्यादा है, जिसके लिए अमरीकी व्यवस्था ही पूरी तरह से जिम्मेदार है। अमेरीका के 90 प्रतिशत धन की मिल्कियत केवल 1 प्रतिशत लोगों के पास है। लगभग 4 करोड़ अमरीकी नागरिक चिकित्सा बीमा से वंचित हैं। नृवंशीय भेदभाव का सबसे बड़ा पाताल अमरीका माना जाता है। जहां मुक्त बाजार की नौकरियां नृवंशीय एवं रंगभेद के आधार पर वितरित होती है। अमरीकी श्रमिकों पर बेरोजगारी की

तलवार निरन्तर लटकी रहती है। अब यहां पाठकों को अमरीका की प्रशासनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं से एक एक करके परिचय कराएंगे।

6.3.1 प्रशासन का कानूनी आधार

जिस किसी देश में लिखित संविधान अपनाया जाता वहां यह अपेक्षा की जाती है कि सरकार के संगठन और उसके कार्यकरण के विषय में संविधान में ही स्पष्ट प्रावधान होना चाहिए। भारत के संविधान में केन्द्रीय स्तर व राज्य स्तर के प्रशासनिक संगठनों, उनके कार्यकरण और उनके आपसी संबंधों का विस्तृत विवरण संविधान में मौजूद है। अमेरिका में प्रशासन संबंधी बहुत ही अल्प प्रावधान संविधान में होने से राष्ट्रीय सरकार के संगठन और कार्य प्रणाली को कानूनी जामा पहनाने के लिए अधिनियमों का सहारा लिया गया है। अमेरीका की कांग्रेस को प्राप्त शक्तियों का उपयोग करते हुए प्रशासनिक अभिकरणों के गठन, उनकी कार्य प्रणाली और साथ ही साथ उनके आपसी संबंधों की व्यवस्था अनेक अधिनियम पारित करके की गई है। विभागो के स्थायी रूप से गठन करने या अस्थाई या तदर्थ अभिकरणों का गठन करके आकस्मिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु अमेरीका के राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर कार्यपालिका आदेश प्रसारित किये जाते रहे हैं। इस प्रकार अमेरिका में प्रशासन को विभिन्न विधानों और राष्ट्रपति के आदेशों दारा कानूनी आधार प्रदान करके संविधान में रह गई कमियों की पूर्ति की जाती है।

6.3.2 प्रशासन में एकरूपता का अभाव

अमेरीका की प्रशासनिक व्यवस्था में एक प्रमुख कमी यह है कि इसमें एकरूपता नहीं पायी जाती है। केन्द्रीय स्तर पर विभागों के गठन और कार्यकरण संबंधी प्रावधान सरकार द्वारा एक समय में योजनाबद्ध तरीके से नहीं करके टुकड़ों-टुकड़ों में किये गये हैं। जब कभी कोई आवश्यकता महसूस हुई तो कांग्रेस उसकी पूर्ति के लिए प्रावधान करके रूक जाती है। भविष्य में फिर कुछ आवश्यकता महसूस होती है तो फिर उसके अनुरूप कांग्रेस के दारा प्रयत्न किये जाते रहे है। इस कारण कांग्रेस के द्वारा सदैव टुकड़ों-टुकड़ों में किये गये प्रयत्नों से सम्पूर्ण प्रशासन में वहां एकरूपता विकसित नहीं हो पाई है। इस स्थिति के लिए दो प्रमुख कारण माने जाते हैं। एक कारण तो यह है कि कांग्रेस ने विभागों को सदैव शक की निगाह से देखा है। दूसरा कारण कांग्रेस के सदस्यों का राजनीति में अत्यधिक व्यस्त रहना है। कांग्रेस के सदस्य दलीय राजनीति में इतने उलझे रहते हैं कि उन्हें प्रशासन पर गम्भीरता से विचार करने का समय ही नहीं मिलता। अमेरिका में लोक सेवक स्वयं भी विभागीय, अन्तर्विभागीय और व्यक्तिगत राजनीति में इतना उलझे रहते हैं कि वे नीति निर्माताओं को समुचित सहायता उपलब्ध नहीं करा पाते हैं।

6.3.3 प्रशासन में स्वरूपगत भिन्नताएं

अमेरिका के प्रशासन में स्वरूपगत अत्यधिक भिन्नताएं देखने को मिलती है। राष्ट्रीय स्तर पर लगभग तेरह विभाग वहां विद्यमान हैं। इनमें से कुछ विभाग तो बहुत पुराने हैं, इतने पुराने जितना स्वयं संयुक्त राज्य अमेरीका है। विभागों की प्रकृति में भी भिन्नता देखने को मिलती है। उनमें कार्यरत लोक सेवकों की संख्या, उनके द्वारा व्यय किये जाने वाले धन, उनके द्वारा निर्वाह किये जाने वाले दायित्व के भार आदि की दृष्टि से विभागों में बहुत असमानताएं देखने को मिलती है। इनमें से कुछ स्वतंत्र अभिकरण का रूप लिये हुए हैं जिन्हें कमीशन, बोर्ड,

कॉउन्सिल, अथॉरिटी, प्रशासन आदि नामों से जाना जाता है। इनमें से कुछ सात-सत्तर वर्ष पुराने हैं तो कुछ का गठन इससे कुछ समय पूर्व किया गया है।

6.3.4 प्रशासनिक संगठन के विभिन्न रूप

अमेरिका में संघीय सरकार में संगठनों के अनेक प्रकार के रूप देखने को मिलते है। इन प्रशासनिक संगठनों के समूहों को मुख्यत: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-एक तो विभागीय संगठन और दूसरा स्वतंत्र संस्थाएं। भारत, अमेरिका और इंग्लैण्ड में विभागीय संगठनों का स्वरूप लगभग एक जैसा ही है। विभागीय संगठन राजनैतिक नेतृत्व में कार्य करते है। इनका प्रभारी कोई मंत्री होता है जो राजनीति में होता है। इनका एक प्रशासनिक अध्यक्ष होता है और वह मंत्री के अधीन रहते हुए अपना कार्य सम्पन्न करता है। उस प्रशासनिक अध्यक्ष के अधीन अन्य अधिकारी और कर्मचारी होते हैं जो एक दूसरे को सहयोग देते हुए अपने-अपने दायित्वों का निर्वाह करते चलते हैं। ये प्रशासनिक विभाग राजनैतिक कार्यपालिका के पूर्णत: प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहते हुए दायित्वों का निर्वाह करते हैं। अमरीका के राज्य विभाग, युद्ध विभाग, ट्रेजरी विभाग, सैन्य विभाग, आदि इस वर्ग में आते हैं।

द्वितीय वर्ग में आयोग और मण्डल प्रकृति के अभिकरण सम्मिलित किये जाते हैं जिनकी स्थापना की आवश्यकता तब पड़ी जब राज्य ने आर्थिक, वाणिज्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आदि प्रकृति के कार्यो को अपने हाथों मे लिया। अमेरीका में इनकी संख्या सन 1945 तक 45 हो चुकी थी। इस प्रकार के प्रशासनिक अभिकरणों के संचालन का दायित्व 3 से 11 व्यक्तियों के हाथों में सौंपा जाता है, जिनकी नियुक्ति सरकार द्वारा प्राय: पांच से लेकर सात वर्ष की अवधि के लिए की जाती है। इनके पास प्रशासनिक दायित्वों के अतिरिक्त बहुत कार्य अर्ध-न्यायिक ओर अर्ध-विधायी प्रकृति का होता है। ये अपने कार्यो को सम्पन्न करने में पूर्णत: स्वतंत्र होने के कारण इन्हें 'स्वतंत्र नियामकयि निकाय', के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अमेरीका अपने यहां ' शक्ति के प्रथक्करण के सिद्धान्त' को अपनाने के लिए मशहूर है, किन्तु इन 'स्वतंत्र नियामकयि निकायों ' पर यह शक्ति के प्रथक्करण का सिद्धान्त लागू नहीं कर रखा है।

जहां तक 'सार्वजनिक निगम' का प्रश्न है। इनकी अमरीका में स्थापना की आवश्यकता तब महसूस की गई जब वहां सरकार ने अपने हाथों में आर्थिक व वाणिज्यिक प्रकृति के दायित्वों को लेने की जरूरत को महसूस किया। 'सार्वजनिक निगम' रूपी संगठन से भारतवासी भली प्रकार से परिचित हैं, क्योंकि भारत में संघीय और राज्य सरकारों द्वारा अनेक ' सार्वजनिक निगमों ' की स्थापना विगत वर्षो में की गई है। प्रत्येक सार्वजनिक निगम की स्थापना हेतु सरकार को अधिनियम पारित करना होता है। अमरीका में सार्वजनिक निगम की स्थापना के उद्देश्य से कांग्रेस द्वारा पृथक-पृथक अधिनियम पारित किये जाते रहे हैं। निगम के प्रशासनिक प्रबंधन के लिए एक संचालक मण्डल होता है। निगम को सरकार द्वारा केवल मोटे तौर पर नीति निर्धारित करके देनी होती है। 'इसके अलावा सरकार इनके प्रशासन में दखलन्दाजी नही करती है। दिन प्रतिदिन के प्रशासनिक प्रबंधन के लिए इन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। स्वायत्तता की दृष्टि से सार्वजनिक निगमों की स्थिति प्रशासकीय सरकारी विभाग और स्वतंत्र नियामकयि आयोग के बीच की होती है। नियामकीय आयोग से थोड़ा कम और सरकारी विभागों की तुलना से कहीं अधिक स्वायत्तता सार्वजनिक निगमों को प्राप्त रहती हे।

6.3.5 विधि का शासन

अमरीका में आज पूर्णत: विधि का शासन पाया जाता है। आज के शब्द का प्रयोग यहां इस कारण किया गया है कि जिस समय अमरीका का संविधान 'मूल रूप में प्रारम्भ किया गया था उस समय इस संबंध में कुछ कमियां विद्यमान थीं। उन कमियों को दूर कर दिया गया और अब भारत और इंग्लैण्ड की भाँति अमरीका में डायसी द्वारा प्रतिपादित विधि के शासन की समस्त विशेषताएं देखने को मिलती है। यथा: (I) अमरीका में कानून की सर्वोच्चता पाई जाती है। जब तक कोई व्यक्ति अमरीका में स्पष्टत: कानून के विरूद्ध आचरण न करे और कानून के विरूद्ध किया गया यह आचरण अमरीका के सामान्य न्यायालय में सिद्ध नही हो जाता, तब तक न तो अमरीका में किसी को दण्ड दिये जा सकता है और न ही किसी को शारीरिक या आर्थिक हानि पहुंचायी जा सकती है। (ii) अमरीका में अब कानून के समक्ष सब समान हैं। कोई भी अमरीका का नागरिक कानून के ऊपर नहीं है। राष्ट्रपति से लेकर वहां का चपरासी या सामान्य नागरिक भी सामान्य कानून से शासित होते हैं। जिस समय मौलिक संविधान लागू हुआ था उस समय लोगों को दास बना कर रखने की अनुमति देता था। एक संवैधानिक संशोधन के पश्चात अब इस प्रकार की प्रथा को समाप्त कर दिया गया है। 1920 तक महिलाओं को समान अधिक तथा मताधिकार तक प्राप्त नहीं थे। वहां पर अब एक ही प्रकार के कानून व एक ही प्रकार के न्यायालय हैं। अब वहां समस्त नागरिक, चाहे वह गोरा हो या काला, चाहे वह अमीर हो या रंक, प्रत्येक लोक सेवक चाहे वह छोटे से छोटे पद पर हो या फिर शिखरस्थ पद पर और चाहे राजनीति के क्षेत्र में अमरीका का राष्ट्रपति हो या सामान्य सदस्य, कानून की दृष्टि में सभी समान हैं। जो एक व्यक्ति के लिए कानून है, वह समस्त नागरिकों के लिए कानून है। अमरीका में संवैधानिक सिद्धान्तों को न्यायिक निर्णयों की उपज माना जाता है। उन समस्त मामलों में जिनमें संविधान और विधान की स्पष्टता नहीं है, अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ही अन्तिम माने जाते है। समस्त संसदीय कानूनों का निर्माण अमरीका में विधि के शासन की रक्षा के लिए किया जाता है और जिन मामलों में न्यायालय द्वारा इसकी अवहेलना पायी जाती है तो न्यायालय द्वारा उन्हें निरस्त करने में तनिक भी विलम्ब नहीं किया जाता है। इन समस्त बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अमरीका में आज विधि का शासन मौजूद है।

6.3.6 शासन में उत्तरदायित्व की कमी

इंग्लैण्ड और भारत में शासन को जनप्रतिनिधियों और मंत्रियों के माध्यम से पूर्णत: उत्तरदायी बनाया गया है। इन दोनों देशों में संसदात्मक शासन व्यवस्था होने के कारण प्रशासन पर कदम-कदम पर अंकुश रहता है। लोक प्रशासन की किसी भी खामी के लिए व्यवस्थापिका में प्रश्न पूछकर, पूरक प्रश्न पूछकर, निन्दा प्रस्ताव द्वारा, अविश्वास प्रस्ताव आदि की सहायता से कार्यपालिका पर अंकुश रखा जाता है। संसदात्मक प्रणाली में कार्यपालिका में स्थायित्व नहीं होता है। मंत्रिमण्डल सामूहिक और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से कार्य करता है। वे एक साथ तैरते और एक साथ डूबते हैं (Swim and Sink together), अमरीका में स्थिति भिन्न है। वहां राष्ट्रपति और उसके सहयोगी मंत्रीगण कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं होते है। उनके विरूद्ध अमरीका में अविश्वास प्रस्ताव पारित करने का प्रावधान नहीं है। राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित है। उसे कार्यकाल के पूर्ण होने से पहले केवल 'महाभियोग' द्वारा ही हटाया जा सकता है और महाभियोग

के पास होने की प्रक्रिया इतनी जटिल है कि आज तक एक भी राष्ट्रपति को इसके दारा अपदस्त नहीं किया गया है। इस प्रकार अमरीका में अध्यक्षात्मक व्यवस्था होने के कारण वहां लोक प्रशासन पर उतना अंकुश नहीं रह पाता है जितना भारत और इंग्लैण्ड में है।

6.3.7 प्रशासन की त्रि-स्तरीय व्यवस्था

भारत और अमरीका में संघात्मक व्यवस्था होने के कारण इन दोनों देशों में प्रशासन के तीन स्तर पाये जाते हैं, यथा संघीय स्तर, राज्य स्तर और स्थानीय स्तर। अमरीका में संघीय शक्तियों का वर्णन किया गया है और शेष समस्त कार्य व शक्तियां राज्य सरकारों की हैं। संविधान द्वारा संघीय और राज्य सरकारों को संप्रभुता प्रदान की गई है। स्थानीय सरकारों का निर्माण राज्य द्वारा पारित अधिनियमों से किये जाने के कारण उन्हें सम्प्रभुता तो नहीं है, लेकिन स्वायत्तता प्राप्त है, इस प्रकार तीनों स्तरों पर हमें प्रशासन का रूप देखने को मिलता है। प्रत्येक राज्य में पृथक-पृथक संविधान होने से उनका स्वरूप थोड़ा भिन्नता लिए हुए अवश्य है।

6.3.8 केन्द्रीय प्रशासन का सुदृढ़ रूप

जिस प्रकार इंग्लैण्ड संसदात्मक शासन प्रणाली का जन्मदाता है, उसी प्रकार अमरीका को संघीय व्यवस्था की देन माना जाता है। प्रारम्भ में 13 राज्यों को मिला के बने संयुक्त राज्य अमरीका में आज 50 राज्य हैं। अत्यधिक विशाल भूभाग, राज्यों में स्वायत्तता व संप्रभुता की प्रबल इच्छा, जनता द्वारा एकात्मक शासन को परतन्त्रता का प्रतिबिम्ब समझना और शक्ति के विकेन्द्रीकरण को स्वतंत्रत्ता का प्रतिरूप समझना, और संघात्मक व्यवस्था से स्थानीय स्वायत्त शासन और नागरिक प्रशिक्षण के लाभ को दृष्टिगत रखते हुए संघीय व्यवस्था को अंगीकार किया। मौलिक संविधान में संघीय सरकार को एक कमजोर केन्द्र के रूप में प्रारम्भ किया गया। कालान्तर में अनेक कारणों, यथा, आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन, केन्द्र में निहित शक्तियों के सिद्धान्त, गृहयुद्ध, न्यायिक निर्णय, वित्तीय दृष्टि से राज्यों की केन्द्रीय अनुदान पर निर्भरता, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, वैज्ञानिक खोजों, संवैधानिक संशोधन और केन्द्र के प्रति जनता के सम्मान में प्राथमिक अभिवृद्धि के फलस्वरूप आज केन्द्रीय सरकार और प्रशासन की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हुई दिखाई देती है।

6.3.9 कार्य की संस्कृति एवं पर्यावरण

प्रबन्धन जगत में सफलता का मंत्र स्वस्थ कार्य संस्कृति है। अमरीका और यूरोपीय देशों में इतनी सफलता एवं प्रगति का रहस्य उनका परफेक्ट वर्क कल्चर ही है। उनके लिए काम ही पूजा है। इन देशों के लोग, चाहे वे लोक सेवा में हों या निजी प्रशासन में या स्वयं का कोई व्यवसाय करते हों निश्चित और निर्धारित समय पर जमकर काम करते है, उसके बाद तबियत से विश्राम करते हैं और आनन्द लेते है। वहा सरकारी कार्यालयों में पांच दिन का सप्ताह होता है। सप्ताह के अन्त में भरपूर एंजोय करते हैं और सोमवार से पुन: काम में मन लगाकर जुट जाते है। ऐसा कहते है कि अमरीका में राष्ट्रपति के चुनाव के समय एक प्रत्याशी एक मिल में एक मजदूर को अपना परिचय देने लगा, तो उस मजदूर ने कहा, क्षमा करें। मेरे पास समय नहीं है, मैं काम कर रहा हूँ। यह सुनकर वह प्रत्याशी उस मिल में फिर किसी से भी नहीं मिला, क्योंकि सभी तो वहा काम करने में व्यस्त थे।

अमरीका में श्रम का बहुत सम्मान किया जाता है। भारत में जो लोग पढ़-लिख जाते हैं वे हाथ-पैर से मेहनत का काम करने में तौहीन समझने लगते हैं। मेहनतकश मजदूर को भारत में हेय दृष्टि से देखा जाता है। अमरीका में ऐसा नहीं है। वहां अनेक व्यक्तियों द्वारा स्वयं का मकान बनाते समय उसमें मजदूर की भांति काम करते देख सकते हैं। कस्बों में तो अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जिन्होंने अपने स्वयं के मकान के निर्माण मे कारीगर-मजदूर की भाँति कुछ या अधिक योगदान दिया है। लकड़ी की अलमारी, तस्वीरों के फ्रेम अथवा मेज-कुर्सी बनाने वाले शौकिया सुथार लगभग हर घर में मिल जाएंगे। 'डू इट योअरसेल्फ' के इस अमरीका के जीवन-दर्शन के ऐतिहासिक कारण रहे हैं। यूरोप छोडकर जो लोग अमरीका में दूर-दूर जाकर बसे थे, वे अकेले-दुकेले थे। वहां कोई बसे-बसाए गांव नहीं थे, जहां अलग धंधे करने वाले दस्तकार हों। प्रारम्भ का अमरीका खुद ही काश्तकार, लौहार, चमड़ा गांठने वाला, बढ़ई, लकड़हारा, नाई, अध्यापक और डॉक्टर था। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अपना काम स्वयं करने की और श्रम का सम्मान करने की खास अमरीका की मानसिकता विकसित हुई।

अमरीकावासियों में अधुनातन तकनीक का प्रयोग करते हुए हर क्षेत्र में काम करने की प्रवत्ति मिलती हैं। स्वचालित उपकरणों-यंत्रों का अधिकाधिक उपयोग करते हुए कार्य को गति के साथ श्रेष्ठता प्रदान करने की वहां प्रवृत्ति विद्यमान है। अमरीकी समाज की एक विशेषता है कि वह नवीनीकरण और अच्छी चीजों को शीघ्र अपना लेता है, जिससे उनका समाज लाभान्वित होता है। अमरीका में अनुसंधान और विकास पर समुचित व्यय किया जाता है। यही कारण है कि अमरीका आज हर क्षेत्र में नेतृत्व करता है। उनके उत्पाद दुनिया की तकनीक में शीर्ष पर रहते हैं।

अमरीका में लगभग सभी कर्मचारी समय के पाबंद होते हैं और नौ से पांच बजे तक मन लगाकर निष्ठापूर्वक काम करते पाए जाते है। किसी को भी यह सुनिश्चित करने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है कि कर्मचारी समय पर कार्यालय पहुंचें। समय की पाबंदी अमरीकावासियो में कूट-कूट कर भरी है। कार्यालय इतने साफ सुथरे और अधुनातन सुविधाओं से लैस है कि पूरा पर्यावरण सुकून प्रदान करता हैं। प्राय: दफ्तर किसी पांच सितारा होटल से कम नहीं लगते हैं।[22] "दफ्तरों में फाइलों और किसी प्रकार की गंदगी का काम ही नहीं है। सम्पूर्ण कार्यालय नोट माइक्रो फिल्म में होते है। वहां कार्यालयों में अधिकारियों, कर्मचारियों और सहायक स्टाफ की भीड़-भाड़ नजर नहीं आती। उच्चाधिकारियों प्रबन्धकों और व्यवस्थापकों के पास गिने चुने अधीनस्थ पाए जाते है। एक सहायक व्यक्ति चार अधिकारियों का कार्य संभालता है और समान रूप से फोन पर उनसे जुड़ा रहता है। आज से लगभग 10 वर्ष पूर्व सहायक कर्मचारी भी वहां 35 से 40 हजार डॉलर सालाना कमाता था। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि अधिकांश सहायक कर्मचारी यूरोप की यात्रा कर चुके हैं। अगर हम भारत के संदर्भ में देखें तो एक प्रशासनिक अधिकारी भी अपने स्वयं के वेतन के दम पर यूरोप की यात्रा की कल्पना भी नहीं कर सकता। सुविधाओं की दृष्टि से देखा जाए, तो अमरीका का ऑफिस असिस्टेंट भारत के प्रशासनिक अधिकारी से ज्यादा सुखी हैं वहां के निवासियों में खूब खर्च करने की प्रवृत्ति भी है। वहां व्यवस्थापक बहुत अच्छी किस्म की कारों का प्रयोग करते हैं। उपभोगवादी और खूब खर्च करने की आदत ने वहां की अर्थव्यवस्था को गति प्रदान की है। सभी प्रकार के वाहनों का उपयोग या बिक्री भारत की तुलना में कहीं अधिक है।

6.3.10 शासन में सहयोग एवं समन्वय की कमी

अमरीका में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के मध्य शक्ति-प्रथक्करण के सिद्धान्त को अपनाया गया है। सम्पूर्ण कार्यपालिका संबंधी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं और व्यवस्थापिका अर्थात कांग्रेस द्वारा नीति का निर्माण किया जाता है। न्याय संबंधी शक्तियां सर्वोच्च न्यायालय को दी गई हैं। राज्य स्तर और स्थानीय स्तर पर भी इस शक्ति के प्रथक्करण के सिद्धान्त को अपनाने से उस समय सहयोग और समन्वय की समस्या प्रमुखतः सम्मुख आती है जब राष्ट्रपति एक दल का होता है और व्यवस्थापिका में दूसरे दल का बहुमत होता है। भारत और इंग्लैण्ड में संसदीय व्यवस्था होने से व्यवस्थापिका के बहुमत दल के लोग ही कार्यपालिका में होते हैं, इसलिए सहयोग और समन्वय की समस्या वहां नहीं आती है। कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में अमरीका में एक ही दल का बहुमत होने पर भी शासन में अनेक अवसरों पर एकता नहीं रहती तथा प्रत्येक कार्य में विलम्ब होना स्वाभाविक है। दोनों में अलग-अलग दलों का अधिकार होने पर तो स्थिति बहुत विकट उत्पन्न होना स्वाभाविक है। ऐसा होने पर कार्यपालिका व्यवस्थापिका को और व्यवस्थापिका कार्यपालिका को नीचा दिखाने और असफल सिद्ध करने में जुट जाती है और प्रशासन ठप्प हो जाता है। ऐसे में शासन के दोनों अंगो में संघर्ष होना स्वभाविक है। यह स्थिति केवल काल्पनिक नहीं है। अमरीका के इतिहास में ऐसे अवसर आए भी है जब शासन के सम्मुख गतिरोध उत्पन्न हो गया था। इस प्रकार की समस्याओं का सामना अमरीका में अनेक अवसरों पर करना पड़ा है। समस्या का कभी कम तो कभी गम्भीर रूप विगत वर्षो में सामने आया है।

अमरीका में सन 1943 में कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति रूजवेल्ट के नेतृत्व के विरूद्ध विद्रोह उपस्थित किया गया और राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदित अनेक प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिये। अमरीका में नवम्बर 1995 में अत्यन्त विकट स्थिति उत्पन्न हो गई जब एक सप्ताह तक सरकार नाम की कोई चीज ही नहीं थी। नवम्बर 12-13, 1995 की रात से अधिकांश केन्द्रीय कर्मचारी घर बैठ गये। इनकी संख्या लगभग आठ लाख थी। सरकार के पास पैसा नहीं था। वह कर्मचारियों को वेतन देने में असमर्थ थी। राष्ट्रपति भवन के आधे से अधिक कर्मचारी काम पर नहीं आए। पासपोर्ट कार्यालय बंद रहा। विदेश स्थित अमरीकी दूतावास वीजा देने में असमर्थ थे। राष्ट्रपति क्लिटंन को अपनी जापान यात्रा रद्द करनी पड़ी। वह प्रशांत सागर के तटीय देशों के आर्थिक शिखर सम्मेलन में भी भाग नहीं ले सके। कुछ सरकारी विभाग जो काम कर रहे थे, वे थे जेल, डाक, गोश्त की जांच करने वाले और हवाई यातायात नियंत्रक। आखिर सरकार के ठप्प पड़ जाने का कारण क्या था उत्तर है सरकार की कंगाली! अमरीका में वित्तीय वर्ष पहली अक्टूबर से प्रारम्भ होता है। स्पष्ट है कि संसद को इस तारीख से पहले बजट पास कर देना चाहिए, लेकिन संसद ने ऐसा नहीं किया। लिहाजा काम बंद। यह स्थिति अमरीकी संविधान की देन है। वहां राष्ट्रपति प्रशासन के लिए जिम्मेदार है। उनका चुनाव सीधे जनता करती है। तात्कालीन राष्ट्रपति क्लिंटन डेमोक्रेटिक पार्टी के थे। संसद में बहुमत विरोधी रिपब्लिकन पार्टी का था। बजट को मंजूरी देना संसद का कार्य है।

रिपब्लिकन पार्टी 1994 में लगभग चार दशकों के बाद संसद में बहुमत में आई। इस दल का चुनावी वादा था कि वह सात वर्षो में अर्थात 2002 तक राष्ट्रीय बजट के घाटे को बराबर

कर देगी। यह घाटा लगभग 200 अरब डॉलर प्रतिवर्ष था जिसके चलते अमरीका पर कर्ज का बोझ बढ़ रहा था। रिपब्लिकन पार्टी का कहना था कि वह चाहती है कि आने वाली पीढ़ी कर्ज में पैदा न हो। यदि यह कर्ज बेलगाम रहा तो अमरीका का भविष्य अरक्षित हो जाएगा।

डेमोक्रेटिक प्रशासन और रिपब्लिकन बहुमत वाली संसद में बजट को लेकर टकराव की स्थिति पैदा हो गई। मतभेदों के कारण संसद ने पहले 6 सप्ताह के लिए कामचलाऊ बजट पास किया जो 12-13 नवम्बर 1995 की रात को समाप्त हो गया। उसके बाद काम-काज बंद। संसद जिद पकड़े हुए थी कि सरकार वर्षो में अपने बजट का घाटा समाप्त करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसके सुझाव पर किये जाने वाले व्यय में कटौती की जाए।

क्लिंटन प्रशासन बजट घाटे को तो सन्तप्त करने का पक्षधर था पर वह रिपब्लिकन पार्टी की तरह सामाजिक भलाई के कार्यक्रमों में कटौती के पक्ष में कतई नहीं था। इसीलिए उसका कहना था कि बजट बराबर करने की समय अवधि 10 वर्ष रखी जाए ताकि कमजोर वर्गो पर उसका प्रभाव न पड़े। प्रशासन को रिपब्लिकन पार्टी का बड़े लोगों को करों में रियायत देने का प्रस्ताव भी नामंजूर था। राष्ट्रपति ने संसद द्वारा पारित बजट को वीटो कर दिया। वीटो समाप्त करने के लिए संसद में दो-तिहाई बहुमत चाहिए, वह रिपब्लिकन पार्टी के पास था नहीं।

इस मतभेद के फलस्वरूप प्रशासन ठप्प पड़ गया। लेकिन क्लिटंन को इस स्थिति से लाभ हुआ। इस दौरान हुए जनमत संग्रह में उनकी लोकप्रियता बढ़ गई। रिपब्लिकन पार्टी का कार्यक्रम दूरगामी राष्ट्रीय हितों की तो जरूर सुरक्षा करता है लेकिन उसका फौरी प्रभाव बुरा पड़ा। वृद्ध, विद्यार्थी तथा कम आय वाले लोग इस टकराव में राष्ट्रपति के साथ हो गए। राष्ट्रपति क्लिंटन के बारें में मशहूर है कि वे जल्दी राय बदलते हैं। लेकिन इस बार वे ऐंठ गए। स्पष्ट है इसका कारण जनसर्मथन था। अगले वर्ष उन्हें दुबारा राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ना था। आगामी चुनाव उनका अन्तिम चुनाव होने वाला भी था। अमरीका संविधान के अनुसार कोई व्यक्ति दो बार से अधिक समय राष्ट्रपति नहीं रह सकता है। 1994 में रिपब्लिकन पार्टी जिस कार्यक्रम को लेकर जनता के सामने आई थी, उसका दूरगामी राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए जनता ने दिल खोलकर स्वागत किया, लेकिन 1995 में जब उसका क्रियान्वयन हो रहा था तो जनता परेशान हो उठी। इस जनता की परेशानी का लाभ सीधे क्लिंटन को मिला।

इस टकराव के चलते अमरीका में खासा तनाव रहा। लेकिन 19 नवम्बर 1995 की शाम समझौता हो गया और अगले दिन अर्थात् 20 नवम्बर को समस्त लोक सेवक काम पर लौट आए। उन्हें पिछले दिनों का वेतन भी मिल गया। सरकार और प्रशासन ठप्प रहने के दौरान जिन्हें वेतन नहीं मिला, उनमें स्वयं राष्ट्रपति क्लिंटन भी थे। वहां वेतन प्रति सप्ताह प्रदान किया जाता है। सांसदों को तनख्याह बराबर मिलती रही।

समझौते के अनुसार सरकार ने रिपब्लिकन पार्टी की सात वर्ष में बजट घाटे को पूरा करने की मांग मान ली। इसके साथ ही रिपब्लिकन पार्टी ने क्लिंटन प्रशासन की इस मांग को स्वीकार कर लिया कि सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण की सुरक्षा में खर्चो को कम नहीं किया जाएगा। ऐसा माना जाता है कि कुछ-कुछ घबराहट में दोनो पक्षों ने एक दूसरे की मांग को स्वीकार कर लिया था।

एक बात अवश्य है कि भारत की भांति अमरीका में सरकार जन-जीवन पर हावी नहीं है। भारत में ढेरों मंत्रालय हैं जबकि अमरीका में मुश्किल से एक दर्जन मंत्रालय विद्यमान हैं। उनमें

से भी अमरीका में कुछ को बंद करने की महा यदा कदा उठती रहती है। अमरीका में निजी क्षेत्र का अत्यधिक बोलबाला है। अस्पताल, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन सब निजी क्षेत्र में हैं। इसलिए सरकार के ठप्प पड़ने का जनता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। अनेक लोगों को तो शायद इस बात का पता ही नहीं चला कि सरकार काम नहीं कर रही। वहां कोटा-परमिट राज नहीं है। इसलिए सरकारी अफसरों का दबदबा भी नहीं है। भारत की भांति वहां सरकारी कर्मचारियों को कोठियां या बंगले और कारें करदाताओं के पैसे से प्राप्त नहीं होती। वहां सिर्फ उन्हें वेतन दिया जाता है। उससे चाहे घर लें या कार खरीदें। सांसदों और मंत्रियों को भी अमरीका में सरकारी आवास की सुविधा मुहैया नहीं है। सरकार के ठप्प पड़ जाने से वहां पर्यटकों को अवश्य असुविधा का सामना करना पड़ा क्योंकि राष्ट्रीय पार्क और दर्शनीय स्थलों पर काम करने वाले कर्मचारी उपस्थित नहीं हुए थे। कहा जाता है कि इस दौरान सरकार को लगभग 15 करोड़ डॉलर प्रतिदिन की हानि हुई।

6.3.11 राज्य प्रशासन की अत्यधिक स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता

भारत और अमरीका दोनों देशो में संघात्मक व्यवस्था है, लेकिन जितनी स्वायत्तता और स्वतंत्रता अमरीका में राज्यों को प्रदान की गई है उतनी भारत में नहीं। जहां अमरीका में अलग-अलग राज्यों में मिलकर संघ का निर्माण किया है। वहीं भारत में एक प्रकार से एकात्मक व्यवस्था से संघात्मक में परिवर्तित किया है। राज्यों की समुचित स्वायत्तता, संप्रभुता और स्वतंत्रता की शर्त पर ही अमरीका में संघ का निर्माण हो सका था। अमरीका के संक्षिप्त संविधान में अनुच्छेद 1(8) में संघीय सरकार के कार्यो का वर्णन करते हुए शेष विषय राज्यों के माने गए है। संघीय संविधान में राज्यों की सरकारों के संगठन और कार्य प्रणाली के प्रावधान नहीं होने के कारण सभी राज्यों ने अपना-अपना पृथक संविधान निर्मित करके लागू किया है। राज्यों की कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के संगठन, कार्य और उनके आपसी संबंधों के विषय में प्रत्येक राज्य के संविधान में प्रावधान किये गए है। आपात स्थिति के अतिरिक्त संघ द्वारा राज्य प्रशासन में दखल नहीं किया जाता है। इसमें दो राय नहीं कि कतिपय कारणों से केन्द्र की स्थिति दिन प्रतिदिन सुदृढ़ होती जा रही है लेकिन भारतीय प्रशासन की तुलना में आज भी अमरीका में राज्य बहुत अधिक स्वायत्त व स्वतंत्र हैं।

भारत में राज्यों में भी संसदात्मक व्यवस्था है और राज्यपालों की नियुक्ति और पदमुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति में निहित है। अमरीका में राज्यपाल, राज्य सचिव, महान्यायवादी, शिक्षा अधीक्षक राज्य कोषाधिकारी और राज्य अंकेक्षक सभी का निर्वाचन सम्बन्धित राज्य की जनता करती है और राज्य-स्तर की कार्यपालिका संबंधी शक्तियां इन्हीं पदाधिकारियों को सौंपी गई हैं, नेब्रास्का को छोड़ सभी राज्यों में द्विसदनीय विधायिका है। वहां नागरिकों को दोहरी नागरिकता उपलब्ध है। एक तो संयुक्त राज्य अमरीका की और दूसरे किसी अमरीकी राज्य की। अमरीका में दोहरी न्यायपालिका है। संघीय स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय है जो कि संविधान की व्याख्या करने, संघ व राज्यों के मध्य विवाद सुलझाने तथा राज्य एवं नागरिकों के मध्य विवादों की सुनवाई करता है। राज्यों की न्यायपालिका और राज्यों के कानून पृथक-पृथक हैं। ग्रामीण और नगरीय प्रशासन के लिए राज्यों ने अलग-अलग अधिनियम बनाकर काउंटी, सिटी, टाउन तथा गांव का गठन किया गया हैं।

6.3.12 अमरीका में न्यायिक पुनरावलोकन

संविधान की व्याख्या करना और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना संघीय व्यवस्था में न्यायालय के प्रमुख दायित्व हैं। व्यवस्थापिका द्वारा पारित कोई कानून और कार्यपालिका द्वारा प्रसारित कोई भी आदेश गैर संवैधानिक होनें की स्थिति में न्यायालय को उन्हे असंवैधानिक घोषित कर उनके क्रियान्वित होने पर रोक लगाने को न्यायिक पुनरावलोकन कहा जाता है। अमरीका में न्यायालय को पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। वहां यदि कार्यपालिका का कोई आदेश या नियम उसके संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करता है तो उसे भी न्यायपालिका असंवैधानिक धोषित कर सकती है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति ने ही अमरीका की न्यायपालिका को संसार की सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायपालिका बना दिया है। इस शक्ति के आधार पर न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में कार्यपालिका द्वारा किये वे कार्य भी आ जाते है जो उसने ऐसे कानूनों के आधार पर किये गये हैं जो न्यायालय की दृष्टि में असंवैधानिक हैं।

कार्विन के अनुसार, न्यायिक पुनरावलोकन न्यायलयों की वह शक्ति है जो उन्हे अपने सामान्य क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले विधायी कार्यो की संवैधानिकता पर निर्णय देने की शक्ति प्रदान करती है और यदि वे उन्हे असंवैधानिक पाती है तो उन्हे लागू करने से इनकार कर सकती है।

किसी न्यायालय की शक्ति, स्थिति और महत्व इस बात पर निर्भर करती हैं कि उसे न्यायिक पुरावलोकन की शक्ति प्राप्त है या नहीं और यदि है तो उसकी सीमा क्या है। न्यायालय इस शक्ति के आधार पर संविधान की सर्वोच्चता की रक्षा कर सकती है, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका पर नियन्त्रण रख सकती है, संवैधानिक निषेधाज्ञाओं को लागू कर सकती है और कार्यपालिका की निरंकुशता और विधायी अत्याचार से नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा कर सकती है।

न्यायिक पुनरावलोकन का संवैधानिक आधार- अमरीका में न्यायिक पुनरावलोकन की संवैधानिकता के सम्बन्ध में दो विचारधाराएं हैं। एक विचारधारा, जिसके प्रबल समर्थक भूतपूर्व राष्ट्रपति जैक्सन हैं, के अनुसार न्यायालयों की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के मध्य पृथक्करण के सिद्धान्त की व्यवस्था करता है। न्यायिक पुनरावलोकन का प्रचलन संविधान निर्माताओं की इच्छाओं का, जैक्सन के अनुसार, निरादर है। कार्विन, बीयर्ड, मिल्टन चार्ल्स आदि संविधान निर्माताओं और विचारकों का वर्ग इस मत का है कि प्रचलित न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति अमरीका की संवैधानिक धाराओं में अन्तर्निहित है। इस संबंध में डायसी का कहना है कि "वस्तुत: अमरीका में प्रत्येक न्यायाधीश का यह अधिकार ही नहीं बल्कि कर्त्तव्य भी है कि उस विधि या नियम को अवैध समझे जो संविधान की धाराओं के विपरीत है।"

अगर अमेरिका के संविधान का गहराई से अध्ययन किया जाए तो यह विदित हो जाता है कि संविधान स्पष्टतया न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्रदान नहीं करता। फिर भी आज न्यायालय की यह शक्ति संविधान का अभिन्न अंग बन गई है। संविधान के अनुच्छेद III, खण्ड 1 और 2 तथा अनुच्छेद IV, खण्ड 2 विभिन्न मामलों में अप्रत्यक्ष रूप से न्यायालय को पुनरावलोकन की शक्ति प्रदान करता है। यह उल्लेखनीय है कि संविधान की इन्हीं धाराओं ने

अमरीका में न्यायालयों को संविधान का संरक्षक, अभिभावक और अन्तिम व्याख्याकर्त्ता बना दिया है।

अमरीका में सन् 1801 न्यायिक पुनरावलोकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण वर्ष था। उस वर्ष में मारबरी बनाम मेडीसन के मुकदमे का फैसला सुनाते हुए न्यायमूर्ति मार्शल द्वारा न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धान्त का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया। उसके पश्चात् अनेक मुकदमों में न्यायपालिका ने पुनरावलोकन के सिद्धान्त को मद्देनजर रखते हुए अनेक फैसले दिए हैं।

न्यायिक पुनरावलोकन के सन्दर्भ में पाठकों को दो बातों से अवगत कराना समीचीनी होगा, यथा (i) सर्वोच्च न्यायालय अपनी ही पहल पर कभी कानून की वैधानिकता और अवैधानिकता पर विचार नहीं कर सकता। यह कार्य सर्वोच्च न्यायालय तभी कर सकेगा जब व्यक्ति या व्यक्ति समूह किसी मुकदमे की सहायता से उस कानून की संवैधानिकता को चुनौती दे। (ii) इस अधिकार का प्रयोग केवल सर्वोच्च न्यायालय ही नहीं वरन् निम्न संघीय न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालय भी करते हैं। यह अवश्य है कि उनके फैसलों के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है और इस विषय में अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय का माना जाता है।

6.4 अमरीका की लोक सेवा संबंधी विशेषताएं

इस खण्ड में पाठकों को अमरीका की लोक सेवा संबंधी विशेषताओं का एक-एक कर परिचय कराया जाएगा।

6.4.1 लोक सेवकों की संख्या संबंधी विशेषता

अमरीका में 1789 में संविधान लागू करते समय मात्र पांच प्रमुख अधिकारी, यथा राज्य सचिव, कोषागार सचिव, युद्ध सचिव, अटोर्नी जनरल और पोस्ट मास्टर जनरल कार्यरत थे। इन्हें सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से कुछ और लोक सेवकों की नियुक्ति की गई थी। एक अनुमान के अनुसार 1979 में अमरीका में लोक सेवकों की संख्या लगभग 300 थी। आगे चलकर कुछ नए विभागों की स्थापना की गई और निगम एवं स्वतंत्र नियामकीय आयोग गठित किये गए। समय-समय पर विभागों का और आयोगों का पुनर्गठन और विस्तार किया गया। जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक सामाजिक सरंचना में परिवर्तन और इनमें जटिलताओं में वृद्धि के कारण लोक सेवकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही है। कल्याणकारी कार्यो में वृद्धि से भी लोक सेवकों की संख्या में वृद्धि हुई है। अमरीका का संसार में 'सुपर पावर' के रूप में उभरने के कारण भी अमरीका सरकार के कार्य और दायित्वों में वृद्धि हुई है और इसके कारण भी इसे अधिक लोक सेवकों की नितान्त आवश्यकता महसूस होने लगी। आतंकवाद ने अलग से प्रशासन के सम्मुख नई-नई चुनौतियां प्रस्तुत की हैं। 11 सितम्बर 2001 को वर्ल्ड ट्रेड सैंटर के गिराए जाने से पूरा अमरीका दहल गया और इसने भी वहां लोक सेवकों की संख्या मे वृद्धि की है। जहां 1789 में 300 लोक सेवक थे वो बढ़कर 1881 में 8000, 1946 में 21,28,000 और 1961 में 24,84,000 हो गए। एक अनुमान के अनुसार 1988 में कुल श्रम योग्य जनसंख्या का 14 प्रतिशत लोक सेवाओं में संलग्र था। 1992 में 31,05,764 लोक सेवक थे। 1996 में लोक सेवकों की संख्या लगभग 32 लाख थी। इस समय भी लगभग बत्तीस लाख के आस पास लोक सेवक संघीय सरकार के अधीन कार्यरत

हैं। कम्प्यूटर आदि के प्रयोग से लोक सेवकों की संख्या पर लगाम लगी है। सभी राज्यों के लोक सेवकों को भी यदि सम्मिलित किया जाए तो आज लगभग दो करोड़ सरकारी कर्मचारी अमरीका में कार्य कर रहे हैं।

6.4.2 लोक सेवा का विस्तृत सामाजिक आधार

भारत, इंग्लैण्ड और फ्रांस में लोक सेवाओं में अभिजात वर्ग का आधिपत्य है। भारत में भर्ती के क्षेत्र में अनेक सुधारों के फलस्वरूप पहले की तुलना में लोक सेवाओं के सामाजिक आधार में वृद्धि अवश्य हुई है लेकिन आज भी आरक्षित एवं अनारक्षित वर्गों में से विशेषकर सर्वसम्पन्न जातियां ही अपना स्थान बनाने में सफल हुई हैं। उन जातियों और वर्गों में से भी लोक सेवाओं में प्रवेश पर कुछ परिवारों का एकाधिकार की सी स्थिति देखने में आती है। अमरीका में ऐसा नहीं है। वहां समाज के सभी वर्गों के लोगों को लोक सेवाओं में अवसर प्राप्त हो जाता है। अमरीका में शिक्षा की समुचित व्यवस्था है। उच्च शिक्षा अवश्य महंगी है लेकिन उसके अलावा शिक्षा सस्ती है। अमरीका में 16 वर्ष की आयु तक प्रत्येक बालक-बालिका का स्कूल जाना अनिवार्य है। शिक्षा की दर 96 प्रतिशत है। शिक्षा की सुविधा उपलब्ध होने के कारण समाज के सभी वर्गों के लोग लोक सेवा में प्रवेश में सफल हो जाते है। लोक सेवाओं के प्रति समाज में कम आकर्षण के कारण भी सभी वर्गों के लोगों को परिक्षाओं में सफलता मिल जाती है।

तालिका 2:1

केन्द्रीय प्रशासनिक विभागों में वरिष्ठ कार्यपालकों की सामाजिक पृष्ठभूमि (प्रतिशत में)

सामाजिक वर्ग	जर्मनी	फ्रांस	अमरीका
उच्च वर्ग	61.7	51	41
माध्यम वर्ग	29.7	32	30
कार्यकारी वर्ग	4.7	14.4	29
अन्य, ज्ञात नहीं	3.8	2.2	-
योग	100	100	100

स्त्रोत: लुरूरोबन, दी फ्रेच सर्विस, 2007

जैसा कि तालिका 2:1 से स्पष्ट हो जाता है कि अमरीका में उच्च, मध्यम और निम्न वर्गों से वरिष्ठ कार्यपालकों में प्रतिनिधित्व प्राप्त है। यही स्थिति प्रशासन के अन्य स्तरों पर भी पायी जाती है। समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधित्व में रात-दिन का अन्तर नहीं है जबकि जर्मनी और फ्रांस में उच्च और निम्न वर्गों के वरिष्ठ कार्यपालकों के प्रतिनिधित्व में जमीन और आसमान का अन्तर स्पष्ट नजर आता है। जर्मनी में उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व 61.7 प्रतिशत, मध्यम वर्ग का 29.7 प्रतिशत और निम्न वर्ग का मात्र 4.7 प्रतिशत है। फ़ांस में उच्च वर्ग का 51 प्रतिशत, मध्यम वर्ग का 32 प्रतिशत और निम्न वर्ग का 14.4 प्रतिशत प्रतिनिधित्व पाया गया।

6.4.3 लोक सेवाओं के प्रति कम आकर्षण

भारत, इंग्लैण्ड और फ़ांस में लोक सेवकों की प्रतिष्ठ और सम्मान अधिक रहा है। अमरीका में थोड़ा भी योग्य व्यक्ति होता है वह लोक सेवाओं में जाना पसन्द नहीं करके निजी प्रशासन में रहना अधिक पसन्द करता है। निजी क्षेत्र में आज अमरीका में प्रतियोगिता भी अधिक है तो वेतन और सेवा दशाएं भी कहीं अधिक आकर्षक हैं। योग्य व्यक्ति यदि कैरियर के प्रारम्भिक दौर में लोक सेवा में आ जाते हैं तो वे निरन्तर निजी क्षेत्र में अपना भाग्य अजमाते रहते हैं और लोक सेवकों को अमरीका में प्राय: हेय दृष्टि से देखा जाता है। अयोग्य या कम योग्य व्यक्ति ही लोक सेवाओं को जीवनवृऐ के रूप में अंगीकृत करते हैं।

6.4.4 लोक सेवा जीवन वृत्ति के रूप में नहीं है

भारत, इंग्लेण्ड व फ़्रास में नवयुवक जल्दी से जल्दी लोक सेवा में प्रवेश पाने की इच्छा रखता है और एक बार इस सेवा में आने के बाद उसे जीवन वृत्ति के रूप में अपना लेता है। जब तक सेवा निवृत्ति आयु तक नहीं पहुंच जाए वह लोक सेवा छोड़ता नहीं है। एक तो इन तीनों देशों में लोक सेवा में एक आयु पार करने के पश्चात प्रवेश वर्जित है, दूसरे लोक सेवाओं की प्रतिष्ठा और अवकाश प्राप्ति लाभ भी उसे आकर्षित करते है। अमरीका में ऐसा कुछ नहीं है। अमरीका में एक तो अधिक आयु तक लोक सेवा मे प्रवेश प्राप्त किया जा सकता हैं, दूसरे वहां सेवाओं का इतना सम्मान भी नहीं है। अमरीका में अधिकांश व्यक्ति, विशेषकर जिनमें क्षमता और योग्यता होती है, लोक सेवा को जीवन वृत्ति के रूप में स्वीकार कतई नहीं करते। कैरियर के प्रारम्भिक दौर में किन्हीं कारणों से वे लोक सेवा में आ जाते हैं तो प्रथम अवसर मिलते ही उसे छोड़कर निजी क्षेत्र में जाना बेहतर समझते हैं। अधिक वेतन और अच्छी सेवा दशाओं के कारण भारत, इंग्लैण्ड व फ्रांस में भी लोक सेवा के प्रति नवयुवकों के रूझान में कमी आने लगी है।

6.4.5 लोक सेवाओं में स्थायित्व की कमी

अमरीका में भारत, ब्रिटेन और फ्रांस की तुलना में लोक सेवा में प्रवेश के लिए अधिकतम आयु सीमा अधिक है। लोक सेवाओं में 'लूट प्रणाली', समाज में कम सम्मान, निजी सेवाओं की तुलना में वेतन और सेवा देशाओं के कम आकर्षक होने से अमरीका में लोक सेवाओं में आना जाना लगा रहता है। अमरीकावासी किसी कम्पनी या सेवा से अधिक जुड़ाव भी नहीं रखते। जहां चार पैसे अधिक मिले लोग छोड़ देते हैं और नई जगह जोइन करने में कोई प्रकार का संकोच ही नहीं करते। आजकल भारत में निजी क्षेत्र में यह मनोवृत्ति बहुत ज्यादा देखने में आ रही है। अमरीका के समाज में भी आये दिन कम्पनी या सेवा छोड़कर अन्यत्र जाने को बुरा नहीं माना जाता है, जबकि जापान में आए दिन सेवाओं और कम्पनियों को बदलने वाले व्यक्ति को हेय दृष्टि से देखा जाता है।

6.4.6 भिन्न-भिन्न सेवाओं के लिए भिन्न-भिन्न परीक्षाएं

भारत में एक ही परीक्षा के माध्यम से दस से लेकर तैंतीस सेवाओं के लिए एक साथ भाग्य अजमाया जा सकता है। यह तभी संभव हो पाता है जब सेवाओं की प्रकृति 'सामान्यज्ञ' की हो। अमरीका में सेवाओं में विशेषीकरण होने के कारण अलग-अलग सेवा के लिए योग्यताएं भी

भिन्न-भिन्न निर्धारित होती है और साथ ही साथ अलग-अलग सेवाओं के लिए पृथक-पृथक परीक्षाओं से गुजरना होता है। नवयुवक अपने पास अर्हताओं को ध्यान में रखते हुए किसी सेवा विशेष के लिए ही प्रयत्न करेगा। अमरीका में लम्बे काल से सेवाओं में विशिष्टिकरण को अंगीकृत किया हुआ है। ऐसी स्थिति में अनेक सेवाओं के लिए एक ही परीक्षा आयोजित कथ्य संभव है और न ही उचित।

6.4.7 सेवाओं का वर्गीकरण 'पोजीशन क्लासीफिकेशन' के आधार पर

अमरीका की सेवाएं पोजीशन क्लासिफिकेशन के आधार पर गठित की जाती हैं। यह इंग्लैण्ड, भारत और फ्रांस की पद्धति से भिन्न है। अमरीका में काम का बंटवारा व्यावसायिक वर्गो में किया जाता है। अनुमान लगाया जाता है कि विभाग में किस वर्ग का काम किस मात्रा में है, उसी के अनुरूप विभिन्न श्रेणी के कर्मचारियों की व्यवस्था की जाती है। इस पद्धति में लोक सेवक की निज की कोई स्थिति नहीं रहती है। उसका वेतन और स्थिति इस बात पर निर्भर करते हैं कि उसे कौन से काम पर लगाया गया है। भारत और इंग्लैण्ड में रैंक के आधार पर वर्गीकरण में उसकी निज की स्थिति होती है, वह लोक सेवक किसी भी पद या कार्यालय में लगाया जाऐ उसके वेतन, स्थिति और सेवा देशाओ पर और उसकी पदोन्नति के अवसरों पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।

6.4.8 लोक सेवाओं में आंशिक रूप से 'लूट प्रणाली' और आंशिक रूप से 'योग्यता प्रणाली'

भारत में भर्ती का आधार कभी 'जाति' हुआ करता था। फ्रांस में एक समय था जब सरकारी पद पैसे से खरीदा जा सकता था। वहां पदों की निलामी की भी प्रथा थी। इंग्लैण्ड और क्रास में राजाओं द्वारा सरकारी पदों को उपहार में दिये जाने का प्रचलन था। 17वीं व 18वी शताब्दी के दौरान इंग्लैण्ड और फ्रास में सरकारी पदों के सम्बन्ध में संरक्षण प्रणाली का प्रचलन था। राजकीय पद एक प्रकार से शाही परिवार वालों या उनके मिलने-जुलने वालों या फिर समाज के बहुत ही सम्पन्न वर्गो के लिए आरक्षित माने जाते थे।

अमरीका में लोक सेवाओं की भर्ती में योग्यता प्रणाली प्रारम्भ करने से पहले 'लूट प्रणाली' का प्रचलन था। 'लूट प्रणाली' से अभिप्राय है कि राष्ट्रपति पद को जीतने वाला राजनैतिक दल समस्त सरकारी पदों पर पहले से कार्यरत लोगों को हटाकर अपने चहेतों को नियुक्त कर सकता था। सभी सरकारी पदों को 'लूट का माल' समझा जाता था और उस माल पर अधिकार चुनाव जीतने वाले दल का होता था। अमरीका में लूट प्रणाली राजनैतिक विकास से सम्बद्ध है। लूट प्रणाली इस विश्वास के कारण अधिक प्रचलित हो चली थी कि दलीय राजनीति का संचालन सर्वोत्तम तरीके से उन्हीं लोगों द्वारा किया जा सकता है जो कि राजनैतिक दलों के सिद्धान्तों तथा उनकी विचारधाराओं में पूर्ण विश्वास रखते है। इसके फलस्वरूप लोक सेवाओं में अपने दल के सदस्यों को भी नियुक्त करने की प्रथा चल पड़ी। लूट प्रणाली की शुरूआत संघीय स्तर पर 1829 में राष्ट्रपति जैक्सन द्वारा की गई थी। प्रारम्भ में यह पतली धारा के समान थी जिसने आगे चलकर वेगवति नदी का रूप धारण कर लिया। इसने अत्यधिक राजनैतिक लोक कार्मिक व्यवस्था और प्रतिबद्ध नौकरशाही को जन्म दिया जो कि दीर्धकाल में लोक सेवा की कुशलता और

निष्पक्षता के लिए घातक सिद्ध हुआ। उस समय यह समझा जाता था कि दल के व्यक्ति के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त करना ही लोक सेवक बनने के लिए पर्याप्त योग्यता है।

लूट प्रणाली के दोषों से समाज के सभी वर्ग पूर्णत: परिचित थे। सम्पूर्ण प्रशासन इसके कारण भ्रष्टाचारी और अकुशल हो जाता है और राजनैतिक जीवन पूरी तरह गंदा हो जाता है। इसके तहत राजनैतिक दल के भ्रष्ट और अयोग्य कार्यकर्ताओं को विभिन्न प्रशासकीय पदों पर नियुक्त कर दिया जाता है। लूट प्रणाली अपने दोषों के कारण राजनीति और प्रशासन के प्रति सार्वजनिक घृणा उत्पन्न करती है। सन् 1881 में तात्कालीन राष्ट्रपति गारफील्ड की एक असंतुष्ट लोक सेवा के जिज्ञासु द्वारा हत्या कर दिये जाने के परिणामस्वरूप लूट प्रणाली के 'विषैले चक्र' को थामने के संबंध में समाज के समस्त वर्गो ने गंभीरता से विचार किया। 1883 में पेंडलटन अधिनियम द्वारा लूट प्रणाली के स्थान पर भर्ती के क्षेत्र में योग्यता प्रणाली को अपनाने की पहल की गई। आरोप यह लगाया जाता है कि अमरीका में आज भी कुछ प्रतिशत तक लूट प्रणाली का बोलबाला है। ओ. ग्लीन स्थल का कहना है कि "आधुनिक उदार राज्यों में अमरीका ही एक मात्र ऐसा देश है जिसमें आंशिक रूप से लूट प्रणाली और आंशिक रूप से योग्यता प्रणाली स्वीकार की जाती है। अमरीका में अनेक क्षेत्रों में अभी भी 'वजीफेदारों का अल्पतंत्र' (Oligarchy of Stipendiaries) कायम किये हुए है..... जो कि यूरोप की अत्यधिक प्रतियोगी परिस्थितियों में शायद ही सहन किया जाता है।"

संसार के समस्त देशों में यह अच्छी तरह से अनुभव किया जा चुका है कि भर्ती में किये गए पक्षपात की कीमत लोक सेवा में अकुशलता के रूप में चुकानी पड़ती है। इंग्लैण्ड में भाई भतीजावाद के स्थान पर 1855 से योग्यता को तरजीह दी जाने लगी। फ्रांस ने पदों की निलामी के बजाय परीक्षा द्वारा योग्यता के आधार पर भर्ती का तरीका अपनाया। भारत में अंग्रेजी सरकार ने 1854 में भर्ती के लिए योग्यता के सिद्धान्त की शुरूआत की। अमेरीका में पेंडलटन अधिनियम के तहत संघीय स्तर पर लोक सेवा आयोग का गठन करके भर्ती में योग्यता को अपनाया। कालान्तर में इस आयोग को समाप्त कर दिया गया है लेकिन योग्यता के सिद्धान्त को नहीं छोड़ा है। यह अवश्य है कि लगभग 15 प्रतिशत पदों पर आज भी लूट प्रणाली लागू है।

6.4.9 अमरीका में लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकार

भारत में समस्त लोक सेवकों को एक ही वर्ग में मानते हुए निर्वाचन के समय मताधिकार का इस्तेमाल करने के अतिरिक्त और कोई राजनैतिक अधिकार प्रदत्त नहीं हैं। जापान और फ्रांस में लोक सेवकों को इतने अधिक राजनैतिक अधिकार दे रखे है कि वहां बहुत से लोक सेवक आगे चलकर राजनैतिक क्षेत्र में चले जाते है। इंग्लैण्ड में लोक सेवकों को तीन वर्गो में विभाजित करके एक वर्ग पर अधिकारों के मामले में बहुत से प्रतिबंध हैं, दूसरे वर्ग पर कुछ कम प्रतिबंध है और तीसरे वर्ग को अत्यधिक राजनैतिक अधिकार प्रदान कर रखे थे। अमेरिका में 'हैच अधिनियम, 1939' द्वारा सभी लोक सेवकों को एक ही वर्ग में रखते हुए बहुत अधिक प्रतिबंध लगा रखे थे। अमरीका मे इस क्षेत्र में आगे चलकर परिवर्तन आया। 'संघीय कर्मचारी राजनैतिक गतिविधि अधिनियम, 1993 'पारित करके इसे तीन फरवरी, 1994 को प्रभावी बनाया गया है।

यह अधिनियम लोक सेवकों को राजनैतिक अधिकारों के मामले में वर्तमान में दो वर्गो में विभाजित करता है-एक वर्ग वह जो राजनैतिक रूप से वर्तमान में स्वतंत्र है जिसे अंगेजी में पॉलिटिकल फ्री ग्रुप के नाम से सम्बोधित किया जाता है और दूसरा वर्ग वह जो राजनैतिक रूप से प्रतिबंधित हैं जिसे अंग्रेजी में पॉलिटिक्ली रेस्ट्रिक्टेड ग्रुप कहा जाता है। देश में नीति निर्माण, नीति निष्पादन तथा सुरक्षा व आसूचना अधिकरण से संबंधित, कार्यपालिका सेवा के कर्मचारी, संघीय निर्वाचन आयोग के कर्मचारी राजनैतिक रूप से प्रतिबंधित हैं। वरिष्ठ कार्यपालिका सेवा के कर्मचारी, संघीय निर्वाचन अयोग के कर्मचारी, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद, राष्ट्रीय सुरक्षा अभिकरण, रक्षा आसूचना अभिकरण, योग्यता व्यवस्था सुरक्षा मण्डल, विशिष्ट परामर्शी कार्यालय, आधिकारी सेवा में फौजदारी खोज कार्यालय, न्याय विभाग का फौजदारी संभाग आदि कार्यालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों पर अत्यधिक प्रतिबंध लगाते हुए उन्हें बहुत कम राजनैतिक अधिकार दे रखे है। शेष लोक सेवकों को फरवरी, 1994 से बहुत राजनैतिक स्वतंत्रता प्रदान कर रखी है।

राजनैतिक रूप से प्रतिबंधित वर्ग के कर्मचारी न तो किसी राजनैतिक दल या क्लब के सदस्य बन सकते हैं और नहीं इनके किसी पद को धारण कर सकते हैं। साथ ही साथ वे राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय और स्थानीय स्तर की संस्थाओं के चुनाव में खड़े नहीं हो सकते है। राजनैतिक रूप से स्वतंत्र वर्ग से सबंधित लोक सेवक राजनैतिक दल या क्लब का सदस्य बन सकते हैं और वे इनके पद को भी धारण कर सकते हैं। स्वतंत्र वर्ग को राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय और स्थानीय स्तर की संस्थाओं में निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में चुनाव में खड़ा होने का अधिकार प्राप्त है।

दलीय आधार पर होने वाले चुनावों में चुनाव अभियान संबंधी साहित्य का वितरण करने, चुनाव में दखल की दृष्टि से अपने पद या सत्ता के प्रभाव का प्रयोग करने, जन सामान्य से राजनैतिक चंदा या योगदान के लिए अनुरोध करने, दलगत चुनावों में सार्वजनिक पद के लिए प्रत्याशी बनने और राजकीय कर्तव्य का पालन करते समय पोशाक पहने हुए या सरकारी वाहन चलाते हुए किसी राजनैतिक गतिविधि में सम्मिलित होने पर अमर्राका में सम्पूर्ण लोक सेवा पर पूर्ण रूप से प्रतिबन्ध लागू है। यूरोपीय संघ के लिए प्रत्याशी बनने पर भी सभी पर प्रतिबंध है।

राजनैतिक संगठन तथा किसी भी दलीय प्रत्याशी को स्वेच्छा से धन देने पर किसी भी वर्ग पर प्रतिबंध नहीं है। राजनैतिक कोष वृद्धि के अभियान में भाग लेने का स्वतंत्र वर्ग को छूट है, प्रतिबंधित वर्ग को यह अधिकार नहीं है। राजनैतिक रूप से स्वतंत्र वर्ग को राजनैतिक रैली और बैठकों में सम्मिलित होने और उनमें सक्रिय भागीदारी करने तथा जनमत संग्रह के प्रश्न, संविधान के पक्ष या विपक्ष के अभियान में भाग लेने का अधिकार है। ये अधिकार प्रतिबंधित वर्ग को नहीं दिये हैं।

6.5 सारांश

अमेरीका सैन्य और आर्थिक दृष्टि से संसार का सबसे सम्पन्न देश है। वहां अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था विद्यमान है। संसार को अध्यक्षात्मक और संघात्मक व्यवस्था की देन उसी की मानी जाती है। कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य शक्ति का पृथक्करण है। वहां के लोग बहुत मेहनती और सम्पन्न है वहां की प्रशासनिक विशेषताओं को दो भागों, यथा सामान्य प्रशासन और लोक सेवा संबंधी विशेषताओं में विभक्त किया जा सकता है -

(अ) सामान्य प्रशासनिक विशेषताएं -

इसमें निम्नलिखित विशेषताएं सम्मिलित की जाती हैं -

(1) प्रशासन का संवैधानिक और कानूनी रूप, (2) त्रिस्तरीय शासन व्यवस्था, (3) एकरूपता का अभाव, (4) प्रशासन में स्वरूपगत भिन्नताएं (5) प्रशासनिक संगठन के विभिन्न रूप, (6) न्यायिक पुनरावलोकन, (7) केन्द्रीय प्रशासन का सुदृढ़ रूप, (8) विधि का शासन, (9) शासन में उत्तरदायित्व की कमी, (10) कार्य की संस्कृति एवं पर्यावरण, (11) शासन में सहयोग एवं समन्वय की कमी, (12) राज्य प्रशासन की अत्यधिक स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता।

(ब) लोक सेवा संबंधी विशेषताएं

इसमें निम्नलिखित विशेषताएं सम्मिलित की जाती हैं-

(1) लोक सेवकों की संख्यात्मक विशेषता, (2) विस्तृत सामाजिक आधार, (3) लोक सेवा के प्रति कम आकर्षण, (4) लोक सेवा जीवन-वृत्ति के रूप में नहीं, (5) स्थायित्व की कमी, (6) भिन्न- भिन्न सेवाओं के लिए भिन्न परीक्षाएं, (7) वर्गीकरण का भिन्न आधार, (8) आंशिक रूप में लूट प्रणाली और आंशिक रूप से योग्यता और (9) सीमित राजनैतिक अधिकार।

6.6 शब्दावली

1. **न्यायिक पुनरावलोकन:** व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के निर्णयों के औचित्य की जांच करके अनुचित और गैर कानूनी होने पर उन पर रोक लगाना।
2. **जीवन वृत्ति:** जीवन भर के लिए किसी आय के स्रोत को व्यवसाय के रूप में स्वीकार करना।
3. **लूट प्रणाली:** भर्ती की दूषित प्रणाली जिसके अन्तर्गत विजित राष्ट्रपति पहले से कार्यरत लोक सेवकों को सेवा से हटा कर उनके स्थान पर अपने राजनैतिक दल और अपने चहेतों की भर्ती की जाती हो।
4. **अभिजात वर्ग:** समाज का सम्पन्न और प्रभावशाली वर्ग।
5. **सोने की चिड़िया:** आर्थिक रूप से अत्यधिक सम्पन्न।
6. **शक्ति का पृथक्करण:** कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के मध्य सुस्पष्ट शक्तियों का वितरण के साथ पूर्णत: पृथक-पृथक कार्यक्षेत्र है। व्यवस्थापिका पूर्णत: नीति का निर्माण करें कार्यपालिका नीति के निर्माण से मुक्त्त रहते हुए नीति को क्रियान्वित करे और न्यायपालिका यह देखभाल करे कि सब कुछ नियम और कानून से चल रहा है।
7. **जमींनदारी:** भूमि का मालिकाना हक प्राप्त होना।
8. **विधि का शासन:** ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें सभी नागरिक कानून की नजर में एक समान हों जिसमें सभी के लिए एक से कानून और एक ही प्रकार के न्यायालय हों और न्यायालय द्वारा दोषी करार दिये बिना किसी को सजा न सुनाई जाती हो।
9. **संघात्मक व्यवस्था:** जिसमें दोहरे स्तर पर सरकार विद्यमान हो-एक संघ या केन्द्रीय स्तर पर दूसरा राज्य स्तर पर और इन दोनों स्तर की सरकारों को संविधान द्वारा संप्रभुत्ता दी गई है। सर्वोच्च न्यायायल हो, लिखित संविधान हो, दोहरी नागरिकता हो।

10. **अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था:** एक ही कार्यपालिका हो, कार्यपालिका, व्यवस्थापिका के प्रति जवाबदेह न हो, कार्यपालिका का निर्वाचन निश्चित अवधि के लिए हो, कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं होते हों।
11. **संसदात्मक शासन व्यवस्था:** जिसमें व्यवस्थापिका में बहुमत दल के नेता को वास्तविक कार्यपालिका शास्तियां दे रखी हों, दोहरी कार्यपालिका हो-एक नामात्र की और दूसरी वास्तविक कार्यपालिका में सामूहिक उत्तरदायित्व हो, वास्तविक कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य हों।

6.7 अभ्यास प्रश्न

1. अमेरीका की प्रशासनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये:
   (i) अमरीका में 'लूट प्रणाली'
   (ii) अमरीका में न्यायिक पुनरावलोकन
   (iii) अमरीका में कार्य संस्कृति
   (iv) अमरीका में शासन में सहयोग और समन्वय की कमी
3. अमरीका की लोक सेवा संबंधी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
4. अमरीका की प्रशासनिक व्यवस्था की सामान्य विशेषताओं पर निबंध लिखिये।

6.8 संदर्भ ग्रंन्थ सूची

1. वी.एम. सिन्हा, कार्मिक प्रशासन, आर.बी.एस.ए.पब्लिशर्स, जयपुर, 1985
2. सुरेन्द्र कटारिया, कार्मिक प्रशासन, आर.बी.एस.ए.पब्लिशर्स, जयपुर, 2006।
3. ओ.ग्लीन स्थाल, पब्लिक पर्सोनल एडमिनिस्ट्रेशन, ऑक्सफोर्ड एण्ड आरईवीएच पब्लिशिग कं. दिल्ली, 1970
4. स्टिवन डबल्यू हाल्यल एण्ड रिचार्ड सी. केनी (सम्पा.), पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन, प्रिन्टिस हॉल, न्यूजर्सी, 1990
5. एस.आर. माहेश्वरी, मेजर सिविल सिस्टम इन द वर्ल्ड 2002

इकाई-7
लोकतंत्रात्मक चीन की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 चीन: ऐतिहासिक सिंहावलोकन

- 7.2.1 चीन का संवैधानिक विकास
- 7.2.2 चीन के संविधान की प्रमुख विशेषताएं
- 7.2.3 चीन की शासन व्यवस्था: एक दृष्टि
- 7.2.4 चीन के प्रशासनिक क्षेत्र एवं प्रशासनिक व्यवस्था
- 7.2.5 चीन की प्रशासनिक व्यवस्था के मुख्य लक्षण
- 7.2.8 पाश्चात्य देशों एवं जनवादी चीन की प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर तुलनात्मक विमर्श

7.3 सारांश

7.4 अभ्यास प्रश्न

7.5 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे -

1. चीन के विकास की ऐतिहासिक यात्रा,
2. शासन व्यवस्था के मूलाधार चीन के संविधान के विकास सोपानों का विवेचना
3. चीन के संविधान की विशिष्टताएं
4. चीन की शासन व्यवस्था का स्वरूप
5. चीन की शासन व्यवस्था के प्रशासनिक क्षेत्रों की पहचान तथा उनकी प्रशासनिक व्यवस्था का सागोपांग चित्रण
6. चीन की प्रशासनिक व्यवस्था के प्रमुख लक्षण
7. पश्चिमी प्रशासनिक व्यवस्था एवं जनवादी चीन की प्रशासनिक व्यवस्था के मध्य असमानताएं।

7.1 प्रस्तावना

21वी सदी में विकसित-समुन्नत लोकतांत्रिक राष्ट्रों के लिए असफल न्यून स्वीकार्य साम्यवादी शासन व्यवस्था चीन के विकास एवं समृद्धि का मूलाधार कैसे बनी हुई है? यह विश्व के सभी अध्येयताओं एवं जनसमुदायों के मध्य कौतुहल का विषय बना हुआ है। वैश्वीकरण के

दौर में विकास की दौड़ में अनुसंधान एवं अध्ययन के मार्ग पर चीन सफलतापूर्वक अपने कदम हर क्षेत्र में मजबूती से जमा रहा है।

चीन एक विशाल साम्यवादी देश है और शासन व्यवस्था की समुचित और सही जानकारी प्राप्त करना अपरिहार्य हैं। साम्यवादी चीन विश्व के महान राष्ट्रों में एक है। चीन ने आर्थिक, औद्योगिक तथा वैज्ञानिक प्रगति के नये आयाम स्थापित किये हैं और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपना विशेष स्थान बना लिया हैं। वह एक बड़ी सैनिक शक्ति से सम्पन्न देश है। अत: ऐसे महत्वपूर्ण देश की प्रशासन व्यवस्था की जानकारी लोक प्रशासन के विद्यार्थी के लिए आवश्यक हैं।

भारत के लिए चीन का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। वह हमारा पड़ौसी, शक्तिशाली, आणविक शक्ति से सम्पन्न प्रतिद्वन्द्वी देश हैं। भारत और चीन दोनों विभिन्न शासन एवं प्रशासन प्रणाली से अपने देश का विकास कर रहे हैं। अत: हमें यह ज्ञात करना आवश्यक है कि चीन किस प्रकार अपने देश का आर्थिक-सामाजिक विकास किस प्रशासनिक व्यवस्था से कर रहा हैं। वैसे अन्य साम्यवादी देश की भांति चीन के प्रशासन का सही और सन्तुलित चित्र प्रस्तुत करना कठिन कर्म है ।

अत: ऐसे वैश्विक मानसिक कौतुहल एवं उथल-पुथल के समय में चीन की अलग-अलग जटिल व अतिविशिष्टकृत लेनिनवादी, मार्क्सवादी, माओवादी दर्शन पर आधारित शासन व्यवस्था अध्ययन की जिज्ञासा जगाती है। सोवियत के जिस साम्यवादी दर्शन का चीन अनुगमनकर्ता बना उसी सोवियत संघ में आज साम्यवादी शासन व्यवस्था का गढ़ ढहा दिया गया।

1975 में जनवादी चीन ने लोकतंत्रात्मक साम्यवाद पर आधारित संविधान को अपनी शासन व्यवस्था का आधार बनाया। चीन का संविधान लिखित एवं लघु तथा सिद्धान्तत: कठोर एवं व्यवहारत: लचीला है। सरकार पर कठोर विधायी नियन्त्रण व्यवस्था है। केन्द्रीयकृत लोकतंत्र के साथ ही प्रभावशाली लोकसत्ता है। शासन व्यवस्था में नागरिकों के भौतिक अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को स्पष्ट रेखांकित किया गया है। एकात्मक शासन प्रणाली, बहुलराष्ट्रीयताओं की उपस्थिति, सामाजिक-आर्थिक न्याय व समानता, एकदलीय शासन व्यवस्था, केन्द्रीय सैन्य आयोग आदि चीन की शासन प्रणाली की प्रमुख चारित्रिकताएं हैं।

विश्व राजनय के मंच पर चीन एक शक्तिशाली राष्ट्र है। विदेश नीति उसके अपने सिद्धान्तों पर आधारित रही है। न्यायपालिका की जनवादी शासन में अधीनता की स्थिति एवं संसदीय प्रणाली एक विचित्र किन्तु विशिष्ट संवैधानिक चारित्रिकताएं लिए हुए है।

चीन को सुविधा व व्यवस्था हेतु चार विशिष्ट प्रशासनिक क्षेत्रों में विभाजित कर उनमें प्रशासनिक व्यवस्था कायम की गई है। वहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था अपने में साम्यवादी प्रभाव, चीन की परम्पराओं की अनुगमनियता, मंत्रालयी व्यवस्था, केन्द्रीकृत प्रशासनिक चरित्र, पर्यवेक्षणीय एवं नियन्त्रणकारी संगठन-लोकसेवाओं में भाई-भतीजावाद आदि विशिष्ट लक्षण समाहित किये हुये है।

चीन की प्रशासनिक व्यवस्था अत्यन्त परिवर्तनशील ही नहीं सुनियोजित आर्थिक विकास की हामी भी है। स्थानीय प्रशासन वहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था का जनवादी चेहरा है। लोकगणतंत्रात्मक चीन की शासन व्यवस्था जमीदारों, धनवानों व उद्योगपतियों पर सर्वहारा वर्ग के आधिपत्य की अनुपम विशाल है। अनुशासित, आत्मसंयमित, समर्पित व संविधान, साम्यवाद

एवं लोकतंत्र के प्रति अगाध आस्थावान चीन का मिशाल जनसमूह चीन की प्रतिष्ठा व ताकत का प्रतीक है।

चीन की इस विशिष्ट पहचान व स्थिति को पाश्चात्य देशों एवं तीसरी दुनिया के भारत जैसे विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं से तुलनात्मक आधारों पर अच्छी तरह समझ पायेंगे।

7.2 चीन: ऐतिहासिक सिंहावलोकन

चीन दुनिया का सर्वाधिक जनआधिक्य वाला देश है। चीन, अति प्राचीनकाल से ही समृद्ध सभ्यता एवं संस्कृति का धनी रहा है। ई.पू. 2200 में यहां हंसिया राजवंश, ई.पू. 1027 में चाऊ राजवंश की स्थापना हुई तथा ई.पू. 221 में शीह हुआंग तीह ने समस्त चीनी राज्यों पर विजय पताका फहराई।

सन् 1908 में मंचू राजवंश की बूढ़ी राजमाता तथा उसके भतीजे सम्राट दोनों के मरने के पश्चात् राजतंत्र विरोधी भावना प्रबल हो गई। फलस्वरूप कुओ-मिन-ताग दल ने सन् 1911 में विश्व प्रसिद्ध चीनी क्रांति की तथा मध्य एवं दक्षिणी चीन गणराज्य घोषित कर दिए गए। प्रथम राजधानी नानकिंग बनी तथा डॉ. सनयात सेन प्रथम राष्ट्रपति बने। सन् 1949 में जनरल माओत्से तुंग तथा चाऊ एन लाई के नेतृत्व में क्यांग काई शेक को हटा चीन में साम्यवादी सरकार बनी तथा व्याप काई शेक फानमूसा (ताइवान) भाग गया। इस प्रकार जनवादी ची-; गणराज्य अस्तित्व में आया। 1 जुलाई, 1997 को ब्रिटेन में हांगकांग तथा 19 दिसम्बर, 1999 को पुर्तगाल से मकाऊ द्वीप प्राप्त कर चीन सुदृढ़ हुआ है।

भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ मिलकर चीन के प्रधानमंत्री द्वारा सन् 1954 में पंचशील सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था जो निम्नांकित थे -

- प्रत्येक देश द्वारा अन्य देशों की प्रभुसत्ता तथा क्षेत्रीय एकता का सम्मान करना,
- एक-दूसरे पर आक्रमण न करना,
- एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नही करना,
- परस्पर समानता एवं सद्भाव बनाए रखना, तथा
- शांतिपूर्ण सह अस्तित्व तथा आर्थिक सहयोग बनाए रखना।

लेकिन सन् 1982 में चीन दारा भारत पर किए गए आक्रमण से इस सिद्धान्त की धज्जियाँ उड़ा दी गई। दूसरी ओर एक सामान्य चीनी भारतीयों (इन्दुरन) को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है क्योंकि बुद्ध (चीनी भाषा में शाक्य मुनि) की भूमि को चीनी समाज पवित्र मानता है। दूसरी ओर 4 जून, 1989 को लोकतांत्रिक अधिकारों की मांग कर रहे हजारों छात्रों पर बीजिंग के थैन अन मन चौक पर गोलियाँ बरसाई गई थीं, फलस्वरूप लगभग एक हजार छात्र मारे गए थे। सैद्धान्तिक रूप से चीनी शासन व्यवस्था संसदीय लोकतंत्र पर आधारित लोकप्रिय प्रणाली दिखाई देती है किन्तु वास्तविकता इसके विपरित है। विशाल भौगोलिक आकार, विपुल जनसंख्या तथा क्रांतिकारी इतिहास सहित साम्यवादी व्यवस्था में चीनी प्रशासन आज भी न्यूनाधिक मात्रा में तानाशाही प्रवृत्तियाँ लिए हुए हैं।

7.2.1 चीन का संवैधानिक विकास

माओत्से तुंग के नेतृत्व में 1 अक्तूबर, 1949 को चीन के जनवादी गणराज्य की स्थापना से लेकर अधतन कई बार संविधान परिवर्तित हो चुके हैं। सर्वप्रथम 4 नवम्बर, 1954 को सोवियत संघ के मॉडल पर जनवादी चीन (People's Republic China) का संविधान निर्मित हुआ जिसका आधार 'जनवादी लोकतांत्रिक अधिनायक' था। इस दौरान चीन में लोकतांत्रिक केन्द्रवाद के अन्तर्गत व्यवस्था संचालित होती रही। सन् 1975 में चीन की संसद द्वारा नया संविधान अपनाया गया। मार्क्सवाद-लेनिनवाद माओवाद के संयुक्त साम्यवादी दर्शन पर आधारित इस संविधान में 4 अध्याय तथा 30 अनुच्छेद थे। संविधान में कहा गया था कि चीन का जनवादी गणराज्य, सर्वहारा वर्ग के अधिनायक का समाजवादी राज्य है। संविधान में साम्यवादी दल को नेतृत्व का केन्द्रबिन्दु वर्णित किया गया था। सन् 1976 में माओत्से तुग की मृत्यु के पश्चात् चीन के नए शासकों ने संविधान लागू किया जिसमें 60 अनुच्छेद थे। शासन की समस्त शक्तियाँ जनता में निहित करते हुए अनुच्छेद-1 में कहा गया था- "जनवादी चीन सर्वहारा वर्ग की तानाशाही वाला एक समाजवादी राज्य है जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग के हाथों में है और श्रमिकों तथा कृषकों के बीच अद्य मैत्री के सम्बन्ध विद्यमान हैं। "अनुच्छेद-2 में शासन के तीनों अंगों तथा जीवन के समस्त क्षेत्रों में साम्यवादी दल का एकाधिकार स्वीकार किया गया। चीन के इस तीसरे संविधान के निर्माण के कुछ समय पश्चात् ही यह अनुभव होने लगा कि परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों तथा सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के अनुरूप चीन के संवैधानिक ढाँचे में संशोधन की आवश्यकता है। अत: सन् 1978 में संविधान पर विचार करने के लिए 'पुनरीक्षण समिति' गठित की गई। इस समिति की अनुशंसा पर 4 दिसम्बर, 1982 को नया संविधान लागू हुआ जो वर्तमान में प्रवर्तित। नए संविधान के अनुसार चीन में शोषक वर्ग समाप्त हो चुका है तथा वर्ग संघर्ष की स्थिति भी नहीं है। यह मान्यता माओत्से तुंग की उस मान्यता के विपरीत है जिसमें कहा गया था कि सतत् क्रांति साम्यवाद की मूल आवश्यकता है। नए संविधान में पुन: राज्याध्यक्ष पद सृजित कर दिया गया है जो बीच में समाप्त कर दिया गया था।

7.2.2 चीन के संविधान की प्रमुख विशेषताएं

सन् 1982 में बना चीन का नया संविधान पूर्व के संविधानों की तुलना में अधिक परिष्कृत तथा समानुकूल संशोधित संविधान है जिसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित है -

(i) सिद्धान्तत: कठोर लेकिन व्यवहारत: लचीला संविधान

चीन का संविधान न तो बहुत कठोर कहा जा सकता है और न ही पूर्णतया लचीला माना जा सकता है, बल्कि मध्यम श्रेणी का है। संविधान के अनुच्छेद-64 के अनुसार, संशोधन का प्रस्ताव राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति द्वारा या जनवादी कांग्रेस के 1/5 सदस्यों द्वारा लाया जा सकता है जो राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के कुल सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से स्वीकृत होना आवश्यक है। यह प्रक्रिया सैद्धान्तिक रूप से कठोर प्रतीत होती है, लेकिन वास्तविकता यह है कि राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस में एकदलीय स्थिति होने के कारण दो तिहाई बहुमत सरलता से प्राप्त हो जाता है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस ही साधारण कानूनों का निर्माण करती है जिनके लिए साधारण बहुमत ही पर्याप्त होता है।

(ii) प्रभावी लोकसत्ता

संविधान के अनुच्छेद-2 के अनुसार चीन के जनवादी गणतंत्र में सम्पूर्ण सत्ता जनता में समाहित है। जनता अपनी सत्ता का प्रयोग राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा स्थानीय स्तर पर गठित विधानमण्डलों के माध्यम से करती है। जनता अपने शासकों का चयन करती है तथा प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाते हुए सत्ता में भागीदारी निभाती है। अनुच्छेद-3 स्थानीय स्तरों पर निर्वाचित जनप्रतिनिधियों से युक्त जन कांग्रेस का प्रावधान करता है। यह व्यवस्था पूर्व के संविधान में नहीं थी।

(iii) नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं कर्त्तव्य

चीन के वर्तमान संविधान के अध्याय-2 अन्तर्गत अनुच्छेद-33-56 में नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद-33 सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समान स्वीकारता है तथा लिंग, सम्पत्ति, वंश, जाति, नस्ल, शिक्षा, धर्म, निवास तथा व्यवसाय इत्यादि के आधार पर असमानता को अस्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को चुनाव लड़ने, भाषण, पत्राचार तथा प्रेस की स्वतन्त्रता, काम करने या रोजगार पाने की गारण्टी, विश्राम तथा अवकाश की सुनिश्चितता, वृद्धावस्था एवं शारीरिक अयोग्यता के समय भरण-पोषण, शिक्षा प्राप्ति, वैज्ञानिक, तकनीकी तथा कलात्मक कार्यो को करने की स्वतन्त्रता के मूल अधिकार प्रदान किए गए है। अनुच्छेद-48 विशेष रूप से महिलाओं को पुरूषों के समान मानने तथा अवसर प्रदान करने का अधिकार देता है। संविधान के द्वारा वैवाहिक जीवन, परिवार, मातृत्व तथा शिशु कल्याण का दायित्व सरकार के कंधों पर डालते हुए स्त्रियों एवं बच्चों के प्रति शोषण, अत्याचार तथा दुर्व्यवहार की मनाही की गई है। विदेशियों को चीन में शरण लेने का अधिकार प्रदान किया गया है जो किन्हीं कारणों से प्रताड़ित हुए हो। मार्च, 2004 में किए गए संविधान संशोधन (चौथा) के पश्चात् चीन में भी निजी सम्पत्ति का अधिकार दे दिया है। इसी संशोधन के द्वारा 'मार्शल लॉ' के स्थान पर 'आपातस्थिति' लगाने का प्रावधान भी कर दिया गया है। मौलिक अधिकारों के साथ-साथ नागरिकों के कर्त्तव्य भी संविधान में वर्णित किए गए हैं। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य बताया गया है कि वह राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को सुनिश्चित रखें, संविधान एवं राष्ट्रीय कानूनों का पालन करे, मातृभूमि की रक्षा करे, प्रतिष्ठा तथा राष्ट्रीय हितों की रक्षा करें, देश पर होने वाले आक्रमणों का प्रतिरोध करे, अवसर आने पर प्रसन्नतापूर्वक सेना में भर्ती हो, नियमानुसार करों का भुगतान करे तथा काम पाने के अपने अधिकार को अपना कर्त्तव्य समझ योगदान करे। संविधान का अनुच्छेद-49 प्रत्येक दम्पत्ति से यह अपेक्षा करता है कि वह परिवार नियोजन अपनाए।

(iv) शासन व्यवस्था का एकदलीय स्वरूप

चीन का संविधान सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान करता है। इसी प्रकार राजनीतिक दलों के गठन तथा उनके संचालन के क्रम में भी पर्याप्त स्वतन्त्रता है, लेकिन संविधान की प्रस्तावना मे साम्यवादी दल की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि साम्यवादी दल तथा चीन की शासन व्यवस्था एक-दूसरे के पर्याय

बन चुके है। जनवादी चीन में लगभग 10 राजनीतिक दल हैं किन्तु विगत कई दशकों से निरन्तर साम्यवादी दल ही शासन कर रहा है। इस दल को सम्पूर्ण चीनी जनता का नेतृत्वकर्ता दल मानते हुए सभी उपलब्धियों का श्रेय प्रदान किया जाता रहा है। अत: अन्य दल विकसित नहीं हो पा रहे हैं। वस्तुत: चीन में साम्यवादी दल का निरंकुश शासन है जिसमें लोकतंत्र का आवरण चढ़ा रखा है।

(v) न्यायपालिका की अधीनस्थता

शासन के तीनों अंगों के मध्य शक्ति संतुलन तथा पृथक्करण के सिद्धान्त को चीन में तिलांजलि दी गई है। चीनी व्यवस्था में न्यायपालिका को प्रशासन का एक अधीनस्थ अंग माना गया है जो संविधान की व्याख्या करने, सरकारी हस्तक्षेप को कम करने, विधायिका के कानूनों की समीक्षा करने तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा करने में असमर्थ। चीन के सर्वोच्च न्यायालय को राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। प्रोक्यूरेटरो की व्यवस्था के माध्यम से समानान्तर नियन्त्रण प्रणाली कार्यरत है जो वास्तव में साम्यवादी दल की ओर झुकाव रखती है। अन्य देशों की भांति न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियाँ प्राप्त नहीं है।

(vi) बहुल राष्ट्रीयतायुक्त राष्ट्र

भारत की भाँति चीन भी सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध राष्ट्र है। चीन में 56 राष्ट्रीयताओं से युक्त नागरिक निवास करते है। सर्वाधिक (93.3%) हान संस्कृति के नागरिक हैं। अन्य राष्ट्रीयताओं के नागरिक अल्पसंख्यक है, अत: उन सभी की भाषा, लिपि, सभ्यता एवं संस्कृति सहित परम्पराओं को सुरक्षित रखने एवं समान व्यवहार करने के लिए संवैधानिक संरक्षण उपलब्ध किए गए हैं।

(vii)केन्द्रिकृत लोकतंत्र

चीनी संविधान तथा शासन व्यवस्था की एक अनूठी विशेषता है जो लोकतंत्र तथा केन्द्रीयकरण की दो विपरित मान्यताओं के मध्य समन्वय स्थापित करती है। संविधान का अनुच्छेद-3 यह उपलब्ध करता है कि, "चीन के सभी शासकीय अंग, लोकतांत्रिक केन्द्रवाद के सिद्धान्त का पालन करें। चूँकि शासक की समस्त शक्तियाँ जनता में निहित हैं, अत: यह लोकतांत्रिक स्वरूप है। लेकिन साथ में शासन का प्रत्येक स्तर तथा अंग अपने उच्च अंग के अधीन है, अत: केन्द्रीकरण भी विद्यमान है। चीनी शासन व्यवस्था मूलत: केन्द्रवादी है जिसमें समस्त शक्तियों एक स्थान पर केन्द्रित हैं। क्षेत्रीय या अधीनस्थ विधानमण्डलों एवं प्रशासनिक इकाइयों को केवल दैनन्दिन कार्यों को सम्पादित करने योग्य शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। साम्यवादी दल ही सत्ता का केन्द्र है।

(viii) विदेश नीति के सिद्धान्त

वर्तमान संविधान में चीन की विदेश नीति को वर्णित करते हुए कहा गया है कि -

- चीन का भविष्य विश्व से सम्बद्धता रखता है,
- चीन 'पंचशील' के सिद्धान्तों का पालन करते हुए देशों की प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान करता है तथा शांतिपूर्ण सह- अस्तित्व में विश्वास करता है,

- चीन, साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का विरोध करता है तथा विकासशील देशों की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का समर्थन करता है।

संवैधानिक रूप से चीन की विदेश नीति 'शांतिपूर्ण सह अस्तित्व' की हामी रही हैं।

(ix) लिखित तथा लघु संविधान

जनवादी चीन के वर्तमान संविधान में 4 अध्याय तथा 138 अनुच्छेद है। संविधान के प्रथम अध्याय में सामान्य सिद्धान्तों, दूसरे अध्याय में नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों, तीसरे अध्याय में राज्य की संरचना तथा चौथे अध्याय में राष्ट्र ध्वज, राज्य चिन्ह एवं राजधानी का वर्णन किया गया है। यद्यपि यह संविधान सन् 1975 तथा सन् 1978 के संविधानों की तुलना में व्यापक है किन्तु विश्व के अन्य देशों की तुलना में इसे संक्षिप्त ही कहा जाएगा। चीन का संविधान 'निर्मित संविधान' है क्योंकि इसकी रचना विशेष रूप से गठित एक समिति द्वारा की गई है।

(x) शासन व्यवस्था का एकात्मक स्वरूप

भौगोलिक तथा जनसांख्यिकीय दृष्टि से चीन एक विशाल राष्ट्र है किन्तु आदिकाल से ही चीन में प्राय: एकात्मक शासन व्यवस्थाएं प्रवर्तित रही हैं। जब किसी शासन व्यवस्था का संचालन एक ही स्तर से होता हो तथा अन्य इकाईयाँ अधीनस्थ के रूप में कार्य करती हो तो वह शासन व्यवस्था एकात्मक प्रकृति की होती है । यद्यपि चीन में अनेक प्रान्त तथा स्वायत्तशासी क्षेत्र है लेकिन शासन प्रणाली भारत, कनाड़ा, आस्ट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड तथा अमेरिका की भाँति संघीय प्रकृति की नहीं हैं। संविधान की प्रस्तावना में चीन को एकात्मक प्रशासन प्रणाली तथा बहुराष्ट्रीयताओं से युक्त राज्य कहा गया है। लोकतांत्रिक केन्द्रवाद की मान्यता तथा एकात्मक शासन पद्धति को अपनाते हुए भी चीन में क्षेत्रीय प्रशासन निम्नानुसार वर्गीकृत है -

प्रान्त, स्वायत्तशासी प्रदेश तथा केन्द्र के अधीन नगर निगम

↓

जिले, स्वायत्तशासी जिले तथा नगर

↓

कम्यून तथा टाउन

चीन में स्वायत्तशासी प्रान्त तथा जनपद उन क्षेत्रों में बनाए गए हैं जहाँ विभिन्न राष्ट्रीयताओं से युक्त अल्पसंख्यकों का निवास है। अनुच्छेद-31 राज्य को नए एवं विशेष प्रशासनिक क्षेत्रों के निर्माण की शक्तियाँ प्रदान करता है।

(xi) सामाजिक आर्थिक समानता

चीन का संविधान सामाजिक- आर्थिक न्याय एवं समानता को सुनिश्चित करने के लिए संसाधनों के समान वितरण एवं शोषण से मुक्ति का प्रावधान करता है। उत्पादन के साधनों के समान वितरण एवं शोषण से मुक्ति का प्रावधान करता है। उत्पादन के साधनों पर सरकार तथा जनता का स्वामित्व है। यह स्वामित्व सम्पूर्ण जनता द्वारा समाजवादी स्वामित्व तथा श्रमजीवी जनता द्वारा समाजवादी स्वामित्व के रूप में है जो मूलत: सामूहिक स्वामित्व को स्वीकारता है। अधिकांश उद्यम एवं कृषि, राज्य द्वारा निर्देशित एवं

नियन्त्रित हैं । कम्यूनों के द्वारा सग्रिहक कृषि होती है तथा बड़े उपक्रम (औद्योगिक) सरकार द्वारा संचालित है। अनुच्छेद-12 के अनुसार समाजवादी अपराध है। साथ ही अनुच्छेद-13 राज्य के माध्यम से नागरिकों को कानून के अनुसार अर्जित व्यक्तिगत आय, बचत, मकान इत्यादि की सुरक्षा प्रदान करता है। सन् 1997 में चीन ने विदेशी कम्पनियों के लिए अपनी अर्थव्यवस्था खोली थी। वर्ष 1992-93 के दौरान किए गए सुधारों के पश्चात् चीन में भी आर्थिक उदारीकरण तथा निजीकरण को बढ़ावा मिलने लगा है।

(xii) संसदात्मक प्रणाली

चीन में सैद्धान्तिक दृष्टि से संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था है क्योंकि नए संविधान में राष्ट्रपति का पद बनाया गया है जिसे नाममात्र की शक्तियाँ दी गई हैं, किन्तु प्रधानमंत्री एवं राज्यपरिषद् (मंत्रिपरिषद) को कार्यपालिका-शक्तियाँ साँपते हुए, इनसे सम्बन्धित अनेक कार्य एवं शक्तियाँ राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति को प्रदान कर विचित्र प्रकृति की शासन व्यवस्था संचालित की जा रही है। राज्य परिषद् को राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है।

(xiii) कठोर विधानमण्डलीय नियन्त्रण

वर्तमान संविधान के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है कि, "जनवादी चीन, जनवादी लोकतांत्रिक तानाशाही वाला एक समाजवादी राज्य है, जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग के हाथों में है और जहाँ श्रमिकों तथा किसानों के बीच अटूट मैत्री के सम्बन्ध विद्यमान है।" यहां जनवादी लोकतांत्रिक तानाशाही से आशय उस व्यवस्था से है? जिसमें शासन के प्रत्येक स्तर पर किसान, श्रमिक तथा निम्न वर्ग के लोग अपने विधानमण्डलों के माध्यम से सरकारी तंत्र पर नियन्त्रण रखते हैं। तानाशाही शब्द केवल आधिपत्य स्थापित करने से सम्बन्धित नहीं है बल्कि यह इस तथ्य को रेखांकित करता है कि चीन में अल्पसंख्यक पूँजीपतियों, जमींदारों एवं धनिकों पर बहुसंख्यक किसान एवं श्रमिक नियन्त्रण रखते है। अत: कहा जाता है कि श्रमिकों की तानाशाही, पूँजीपतियों की तानाशाही की तुलना में अधिक लोकतांत्रिक एवं समाजोपयोगी रहती है।

(xiv) केन्द्रीय सैन्य आयोग की स्थापना

वर्तमान चीनी संविधान में एक केन्द्रीय सैनिक आयोग का प्रावधान है जो पूर्व के संविधानों में वर्णित नहीं था। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी इस संवैधानिक आयोग में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा अन्य सदस्य सम्मिलित होते है। केन्द्रीय सैनिक आयोग को सेना के नियन्त्रण-निर्देशन सम्बन्धित कार्य सौंपे गए हैं।

वस्तुत: चीन की शासन व्यवस्था पूर्णतया उन सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है जैसाकि संविधान में वर्णन किया गया है बल्कि अन्य कई कारकों ने इसके व्यावहारिक स्वरूप को परिवर्तित किया हुआ है।

7.2.3 चीन की शासन व्यवस्था: एक दृष्टि

एकदलीय व्यवस्था- चीन में एकदलीय व्यवस्था हैं। यह चीन के संविधान की एक प्रमुख विशेषता है। चीन के संविधान में साम्यवादी दल की स्थिति का उल्लेख नहीं किया गया हैं। चीन में साम्यवादी दल देश के नेतृत्व का केन्द्र बिन्दु है। वहां शासन और प्रशासन का वास्तविक शासक साम्यवादी दल ही हैं। दल ही के लोग न्यायपालिका और प्रशासन में कार्यरत हैं। इस प्रकार प्रशासन और सरकार में अन्तर करना सम्भव हैं। वहां के प्रशासन की वस्तुस्थिति समझने के लिए इस सत्य को ध्यान में रखना आवश्यक हैं।

सरकार और दल की अन्तरगुंफित संरचना- चीन का साम्यवादी दल कार्मिकों की अन्तरगुंफित पद्धति और उसी के द्वारा राज्य सरकार की संरचना के माध्यम से राजतंत्र को नियन्त्रित और संचालित करता हैं। दलीय नियन्त्रण और सरकारी संगठनों के नेतृत्व का निष्पादन विभिन्न प्रकारों से किया जाता हैं। प्रथम, केन्द्रीय समिति के विभाग और स्वयं दल की सोपानकी के भीतर की समितियाँ एक प्रकार की 'छाया सरकार' का निर्माण करती हैं। प्रत्येक विभाग मुख्य प्रकार्यात्मक क्षेत्रों या सरकारी कार्यों की सामान्य पद्धतियों में से एक के लिए उत्तरदायी होती है। दल उस क्षेत्र के अन्दर कार्यरत समस्त सरकारी इकाइयों को निरन्तर रूप से नीति-निर्देशित करती हैं। दूसरे, पार्टी के सदस्य सभी स्तरों पर सरकारी निकायों में शीर्ष पद पर आसीन होते हैं और उन्हें पार्टी के उच्चाधिकारियों या सरकारी प्राधिकारियों के आदेश प्राप्त होते हैं। पार्टी के आदेशों की प्रमुखता का कारण दल को सार्वजनिक रूप से नीति-निर्माण में सर्वोच्चता प्राप्त होना हैं। प्रत्येक राज्य के अधिकारीतंत्र में केन्द्रीय साम्यवादी दल के प्रमुख सदस्यों का एक कक्ष होता हैं जो राज्य को दिशा-निर्देश देता हैं। इस प्रकार दल ही हमेशा राज्य अधिकारीतंत्र के कार्मिकों का पर्यवेक्षण करके उस पर नियन्त्रण रखती हैं।

चीन की शासन व्यवस्था संसदीय अथवा अध्यक्षीय शासन प्रणाली वाले देशों से मिलती-जुलती नहीं है और न ही संघात्मक या पूर्ण एकात्मक शासन व्यवस्था कही जा सकती' है। चीन की शासन व्यवस्था वस्तुतः पूर्व सोवियत संघ की साम्यवादी व्यवस्था से किंचित् मेल खाती अपने आप में विशिष्टतायुक्त है। शासन का प्रमुख अंग व्यवस्थापिका है जो कानून-निर्माण, योजना स्वीकृति, बजट स्वीकृति का कार्य करती है। चीन की राष्ट्रीय व्यवस्थापिका मात्र एक सदन है जिसे राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस कहा जाता है। सदन में सदस्यों को डिप्टी कहा जाता है। इस सदन में सन् 1982 में संविधान स्वीकृति के समय सदस्यों की संख्या 3,037 थी। इस प्रकार चीन की राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस, विश्व की सबसे बड़ी विधायिका है। चीन में 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके सी एवं पुरूष डिप्टी का चयन करते हैं। अनुच्छेद-59 के अनुसार राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस में निम्नांकित क्षेत्रों से प्रतिनिधि चुनकर आते हैं -

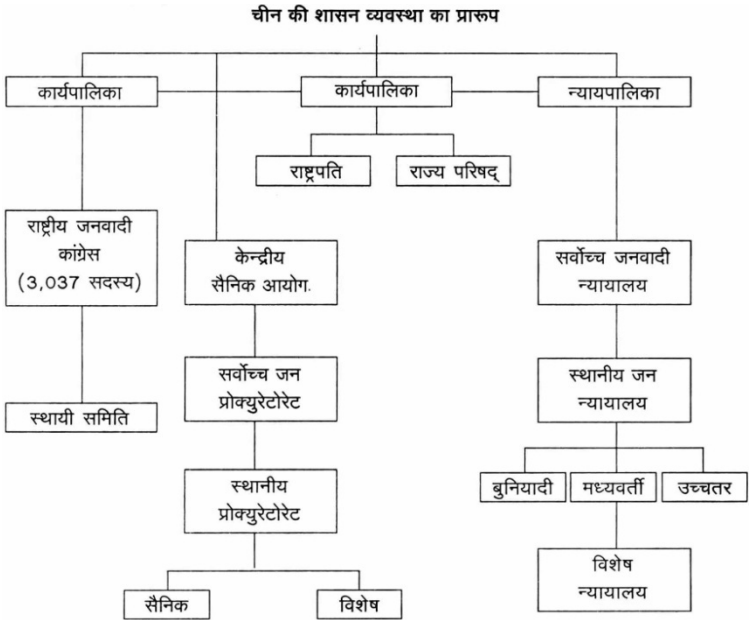

प्रान्तों तथा स्वायत्तशासी क्षेत्रों में (स्थानीय विधायिका (जन कांग्रेस) होती है)

(क) प्रान्तों से निर्वाचित प्रतिनिधि

(ख) स्वशासित क्षेत्रों के प्रतिनिधि

(ग) केन्द्र शासित क्षेत्रों की नगरपालिकाओं के प्रतिनिधि

(घ) जनवादी मुक्ति सेना के प्रतिनिधि

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस का कार्यकाल 5 वर्ष है। इस सदन का वर्ष में एक बार अधिवेशन होता है। चूँकि सदन में सदस्यों की संख्या अत्यधिक है अत: स्थायी समिति को सदन के कार्य सौंपे गए है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस, अपने पहले अधिवेशन में ही कार्यवाही संचालन हेतु ' प्रेसीडियम' का चुनाव करती है। संविधान में संशोधन, कानून-निर्माण, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, स्टेट कौंसिलर, मंत्रियों, महालेखा परीक्षक, केन्द्रीय सैनिक आयोग के अध्यक्ष, सर्वोच्च जनवादी न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटोरेट के प्रोक्यूरेटर जनरल का चयन, बजट को स्वीकृति, स्थायी समिति के निर्णयों का पुनरीक्षण, युद्ध एवं शांति के मामलों का निस्तारण करती है। यह कांग्रेस राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उप प्रधानमंत्री, स्टेट कौंसिलर, महालेखा परीक्षक, राज्य परिषद् के महासचिव, केन्द्रीय सौनेक आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों, सर्वोच्च न्यायाधीश तथा प्रोक्यूरेटर जनरल को उनके पद से हटा भी सकती है।

संविधान के अनुच्छेद-65 के अनुसरण में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की एक स्थायी समिति होती है जिसमें एक अध्यक्ष, कई उपाध्यक्ष, महासचिव तथा अन्य साधारण सदस्य होते है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस, स्थायी समिति का चयन करती है, अत: 'वापिस बुलाने' का अधिकार भी रखती हैं। यह समिति भी 5 वर्ष अथवा नई समिति चुने जाने तक कार्य करती है। स्थायी समिति को संविधान की व्याख्या करने, संविधान के क्रियान्वयन का निरीक्षण करने,

कांग्रेस के सत्रावसान के समय कानून बनाने, योजना एवं बजट को स्वीकृति देने, राज्य परिषद केन्द्रीय सैनिक आयोग, सर्वोच्च जन न्यायालय, सर्वोच्च प्रोक्यूरेटोरेट इत्यादि का निरीक्षण एवं जाँच करने, न्यायाधीशों की नियुक्ति करने, राजदूतों की नियुक्ति करने, क्षमादान करने, मार्शल लॉ लागू करने, संधियों की पुष्टि करने तथा युद्ध की स्थिति में निर्णय लेने के अधिसंख्य महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गए है। चीन में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस नाममात्र की विधायिका है क्योंकि स्थायी समिति ही सर्वोच्च सत्ता बन चुकी है।

चीन का राष्ट्रपति भी नाममात्र की सत्ता है जिसे 5 वर्ष के लिए राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा चुना जाता है। कोई भी चीनी नागरिक जो 45 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका है, अधिकतम दो बार राष्ट्रपति बन सकता है। राष्ट्रपति को कांग्रेस द्वारा चयनित महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति देने एवं हटाने (जैसे-प्रधानमंत्री तथा महालेखा परीक्षक), कानूनों एवं अध्यादेशों को पारित करने, उपाधियाँ वितरित करने, क्षमादान देने तथा सैनिक कानून लागू करने के क्रम में औपचारिक शक्तियाँ दी गई है। राष्ट्रपति की सहायता के लिए उप-राष्ट्रपति भी होता है। कार्यपालिका के वास्तविक कार्य 'राज्य परिषद' करती है। संविधान के अनुच्छेद-85 में प्रावधान है कि, "राज्य परिषद केन्द्रीय जन सरकार है। राज्य परिषद् राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी एवं जवाबदेह है। "राज्य परिषद् में प्रधानमंत्री, उप प्रधानमंत्री, स्टेट कौंसिलर, मंत्रालयों के प्रभारी मंत्रीगण आयोगों के प्रभारी मंत्री, ऑडीटर जनरल तथा महासचिव सम्मिलित होते हैं जिनकी संख्या प्राय: 40-50 होती है। 5 वर्ष के लिए इस राज्य परिषद् का चयन राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा किया जाता है। संविधान में प्रधानमंत्री के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है लेकिन वह सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् अर्थात् राज्य परिषद् का अध्यक्ष होता है तथा महत्वपूर्ण प्रशासनिक निर्णय देता है। राज्य परिषद् को प्रशासनिक कार्यो को सम्पादित करने, विधेयकों का प्रारूप तैयार करने, योजनाओं एवं बजट को क्रियान्वित करने, व्यापार पर नियन्त्रण करने के दायित्व सौंपे गए है। विशेषज्ञों का मानना है कि चीन के प्रधानमंत्रियों जैसी सुदृढ़ स्थिति प्राप्त नहीं है। वह केवल साम्यवादी दल के पार्टी नियन्त्रणकर्ताओ की इच्छानुसार कार्य करता हैं।

चीन में शासन का तीसरा अंग न्यायपालिका, वास्तव में स्वतन्त्र अंग नहीं है बल्कि प्रशासनिक व्यवस्था का ही एक भाग है जो केन्द्रीय सत्ता के अधीन कार्य करता है। साम्यवादी व्यवस्था में कानून को शोषित वर्ग के उत्थान का साधन माना जाता है जिसे शासनाधीश अपने निर्देशानुसार संचालित करते है। यहां शासन एवं जनता को एक ही माना जाता है। शासन के विरूद्ध किया गया कार्य जनता के विरूद्ध क्रांति का पर्याय समझा जाता हैं। न्यायालयों को जन कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी बनाया गया हैं। चीन में सर्वोच्च न्यायालय, स्थानीय जन न्यायालय तथा विशेष जन न्यायालय के रूप में तीन प्रकार के न्यायालय कार्यरत हैं। सामान्यत: न्यायाधीशों को 5 वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है। 'लोकतांत्रिक केन्द्रवाद' का प्रभाव न्यायपालिका पर भी दिखाई देता है।

7.2.4 चीन के प्रशासनिक क्षेत्र एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रशासनिक क्षेत्र और उनका प्रशासन-पहले के सोवियत रूस की भांति चीन में भी संविधान ने अल्पसंख्यकों को अपने भाषाओं, प्रथाओं, परम्पराओं, कला तथा धार्मिक विश्वासों को यथास्थान प्रदान किया हैं, किन्तु साथ ही यह भी प्रतिबन्ध लगाया हैं कि समाजवादी संगठन तथा परिवर्तनों को उन्हें स्वीकार करना होगा। उन्हें राष्ट्रीय जीवन में इस प्रकार मिला दिया गया हैं कि उनका जीवन स्वरूप दृष्टिकोण से राष्ट्रीय तथा सार तत्व के दृष्टिकोण से समाजवादी हो जाय। प्रशासन के क्षेत्र में उन्हें यथासंभव अपनी प्रशासनिक इकाई निर्मित करने का अधिकार दिया गया हैं।

संविधान की धारा 53 में चीनी गणराज्य के तीन प्रकार के स्वायत्तशासी क्षेत्र बतलाये गये हैं -

1. समस्त देश प्रान्तों, स्वायत्तशासी प्रदेशों और केन्द्रशासित नगरपालिकाओं में बँटा हुआ हैं।
2. स्वायत्तशासी चाऊ
3. स्वायत्तशासी काउण्टी

चीनी गणराज्य एकात्मक राज्य हैं लेकिन देश को उपरोक्त वर्णित इकाइयों में बाँटा गया हैं जो केन्द्रीय सरकार द्वारा केवल प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग करते हैं। इन समस्त क्षेत्रों का ढाँचा पूरे देश में एकरूप हैं। प्रत्येक स्तर पर स्थानीय जन-कांग्रेस तथा स्थानीय जन-परिषद् शासन के प्रमुख अंग हैं। जी.एम. काहिन के शब्दों में, "इन सभी क्षेत्रों की सरकारें आश्चर्यजनक रूप से समस्त देश में एकरूप हैं और केन्द्रीय सरकार की लघु प्रतिमूर्ति के समान हैं। प्रत्येक क्षेत्र की एक जन-कांग्रेस तथा एक जन-परिषद् होती हैं।"

संविधान में वर्णित तीन प्रकार के स्वायत्तशासी क्षेत्रों का संचालन केन्द्रीय सरकार करती हैं। प्रदेशों और स्वायत्त क्षेत्रों का उपविभाजन स्वायत्त प्रान्तों व काउण्टियों के उपमण्डल में किया गया हैं। नगरपालिका प्रत्यक्ष रूप से केन्द्र सरकार के अधीन होती हैं। बड़े शहरों, जिलों और काउण्टियों में बँटे हैं। स्वायत्त प्रान्तों को भी काउण्टी, स्वायत्त काउण्टियों और शहरों में बाँटा गया हैं। प्रशासन की समस्त स्वायत्त इकाई राष्ट्रीय स्वायत्त क्षेत्र है। 'स्वायत्त' शब्द का आशय यह नहीं है कि उनके पास ऐसी शक्तियाँ हैं जो प्रशासन की अन्य इकाइयों को प्राप्त नहीं हैं। वस्तुतः प्रशासन की अन्य इकाइयों की तरह वे भी केन्द्रीकृत प्रशासनिक सोपान के अभिन्न अंग हैं।

स्थानीय सरकार के विभिन्न अंग राष्ट्रीय स्तर के सरकारी अंगों के समरूप है। इस प्रकार प्रदेशों, नगरपालिकाओं, काउण्टियों, शहरों, नगर-जिलों, जन-समुदायों और प्रान्तों में जन-कांग्रेस और क्रांतिकारी समितियाँ सम्मिलित हैं जो प्रशासन की अधिशाषी इकाइयाँ हैं। सामान्यतया चीन में प्रशासन का विश्लेषण प्राथमिक रूप से दल में प्रमुख क्षेत्रीय स्तरों के प्राधिकारों और राष्ट्रीय स्तर से लेकर निचले स्तर तक प्रमुख प्रशासनिक क्षेत्रों, प्रदेशों, जिलों, काउण्टियों और समुदायों वाली सरकार सोपानको के आधार पर किया जाता है।

7.2.5 चीन की प्रशासनिक व्यवस्था के मुख्य लक्षण

चीन की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

(i) एकदलीय व्यवस्था- चीन में एकदलीय व्यवस्था हैं। यह चीन के संविधान की एक प्रमुख विशेषता हैं। चीन के संविधान में साम्यवादी दल की स्थिति का उल्लेख नहीं किया गया है। चीन में साम्यवादी दल देश के नेतृत्व का केन्द्र बिन्दु हैं। वहाँ शासन और प्रशासन का वास्तविक शासन साम्यवादी दल ही हैं। दल ही के लोग न्यायपालिका और प्रशासन में कार्यरत हैं। इस प्रकार प्रशासन और सरकार में अन्तर करना असम्भव हैं। वहाँ के प्रशासन की वस्तुस्थिति समझने के लिए इस सत्य को ध्यान में रखना आवश्यक हैं।

(ii) साम्यवादी प्रभाव- चीन का संविधान साम्यवादी दल की क्रांतिकारी भूमिका को स्पष्टत: स्वीकारता हैं। दल का संगठनात्मक ढाँचा सम्पूर्ण समाज एवं प्रशासन में फैला हुआ हैं। सम्पूर्ण चीनी प्रशासनिक तंत्र राजनीतिक साम्यवाद के प्रति प्रतिबद्ध हैं। सन् 1993 से पूर्व अधिकांश लोकसेवक राजनीतिक सम्बन्धों के आधार पर भर्ती किए जाते थे। इस प्रवृत्ति में अब कमी आ रही है किन्तु उच्च नीति निर्माण, विधि निर्माण तथा कार्यक्रम निरूपण स्तर पर उन्हीं अधिकारियों को पदस्थापित किया जाता है जो सत्तारूढ़ साम्यवादी पार्टी की नीतियों को पोषित कर सकते हैं। सन् 1993 में पारित रेगुरेलशन ऑन स्टेट फंक्यानरीन के प्रावधानों के अनुसरण में वैज्ञानिक तथा कुशल प्रबन्ध की ओर कदम बढ़ाए जा रहे है।

(iii) लोकतंत्रात्मक केन्द्रीयतावाद- चीन का जनवादी गणराज्य जनवादी लोक-तंत्रात्मक राज्य है और उसने लोकतंत्रात्मक केन्द्रीयतावाद के सिद्धान्त को अपनाया हैं। लोकतंत्रवादी गुट का अर्थ हैं कि नशीरकों को शासन कार्य में भाग लेने का समुचित अवसर एवं पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हैं। केन्द्रीयतावाद का अर्थ है कि शासन का प्रत्येक अंग अपने ऊपर के अंग के अधीन हैं। अन्ततोगत्वा सर्वोच्च राज्य शक्ति एक केन्द्र-बिन्दु में जाकर निहित हो जाती हैं। लोकतंत्र और केन्द्रवाद का यह समन्वय साम्यवादी देशों की अपनी निजी विशेषता हैं। इसका उद्देश्य एकीकृत नेतृत्व को जन्म देना तथा निरंकुश एकात्मक और केन्द्रित राज्य की स्थापना करना है। चीन के प्रशासन की वास्तविक स्थिति को समझने के लिए इस महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक हैं। वहाँ का प्रशासन भी सरकार की भाँति केन्द्रीकृत हैं।

(iv) मंत्रालयी व्यवस्था- कार्यपालिका के दायित्वों की पूर्ति हेतु चीन में विशाल प्रशासनिक तंत्र कार्यरत है। केन्द्रीय स्तर पर प्रशासनिक विभागों को मंत्रालयों में विभक्त किया गया है। मंत्रालयों के अतिरिक्त अन्य अभिकरण, आयोग, बोर्ड, लोक उपक्रम तथा प्रशासनिक संगठन भी कार्यरत है। जो केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् (राज्य परिषद के किसी मंत्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण-निर्देशन में कार्य करते है। मंत्री को नीति, कानून एवं निर्णय सञ्जधी मामलों में परामर्श देने के लिए नौकरशाह पदस्थापित हैं जिनकी भूमिका अत्यन्त प्रभावशाली बनी हुई है। केन्द्रीय स्तर पर लगभग 30 मंत्रालयों एवं अन्य संगठनों सहित कुल 68 प्रशासनिक संगठन कार्यरत है। प्रत्येक प्रशासनिक विभाग में निम्नांकित तीन प्रकार के ब्यूरो प्रवर्तित है -

योजना ब्यूरो,

सांख्यिकी ब्यूरो,

वित्त एवं लेखा ब्यूरो।

सरकार के सभी कार्यालयों की शाखाएं या अनुभाग, ब्यूरो में विभक्त हैं। प्रत्येक ब्यूरो (इकाई) को एक विशिष्ट प्रकार का कार्य दिया जाता हैं। अधिकांश ब्यूरो के नियन्त्रक अधिकारी साम्यवादी दल के समर्थक लोक सेवक बनाए जाते हैं सरकार के ऑफसिर्स के रूप में नियुक्त व्यक्ति क्रमश: विदेश मामले, राजनीति एवं विधि प्रकरण, संस्कृति एवं शिक्षा, उद्योग एवं संचार, वित्त एवं व्यापार तथा कृषि एवं वानिकी मंत्रालयों से सम्बन्धित होते है।

(v) सुनियोजित आर्थिक विकास- रूसी नियोजन तंत्र 'गॉसप्लान' की तरह चीन में भी सामाजिक-आर्थिक विकास के नियोजित प्रयास राज्य द्वारा किए जाते है। साम्यवादी व्यवस्था के कारण योजनाओं का स्वरूप निर्देशात्मक न होकर अनिवार्य प्रकृति का है। योजना तंत्र के दो प्रमुख निकाय हैं -

(क) राज्य योजना आयोग

(ख) राज्य आर्थिक आयोग

राज्य योजना आयोग, राज्य परिषद् के परामर्शानुसार दीर्घकालीन योजनाएं निर्मित करता है जबकि राज्य आर्थिक आयोग अल्पकालीन योजनाएं बनाता है। योजनाओं की राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा स्वीकृति आवश्यक है। सन् 1993 के पश्चात् सामग्री क्रय, उत्पादन, वितरण तथा कार्मिक प्रशासन के क्रम में राज्य के लोक उपक्रमों को सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त किया जाने लगा हैं तथा अधिकांश योजना क्षेत्रों में अनिवार्य योजना के स्थान पर निजी उद्यमियों को महत्व दिया जा रहा है। चीनी अर्थव्यवस्था मुक्त व्यापार, तकनीकी विकास, लोक सेवा सुधार, लोक कल्याण एवं कार्यकुशलता की ओर उन्मूख है।

(vi) साम्यवादी दल का प्रभुत्व- चीन एक साम्यवादी देश हैं और वहाँ शासन तथा प्रशासन पर साम्यवादी दल का प्रभुत्व हैं। 1949 की क्रांति के समय से ही साम्यवादी चीन अपने राजनीतिक और प्रशासनिक विकास के कई चरणों से गुजरा हैं, यह तथ्य राजनीतिक लक्ष्यों एवं शक्ति सम्बन्धों से होते रहे परिवर्तनों को प्रतिबिम्बित करता हैं। चीन ने सोवियत प्रारूप (पूर्व के सोवियत यूनियन) को मार्गदर्शक माना तथा कार्यान्वयन के लिए मुख्यत: राजकीय लोकसेवाओं पर भरोसा किया गया। चीनी साम्यवादी दल ने "राजनीति और प्रशासन में नियन्त्रण होता हैं" नारे का प्रयोग कर अधिक नियन्त्रणकारी भूमिका ले ली तथा राजकीय उपस्कर अतिशय-नौकरशाही बना दिया गया। विदेत हैं कि चीन न केवल एक नयी राज-व्यवस्था स्थापित करने बल्कि राजनीतिक शक्ति का उपयोग कर तीव्र आधुनिकीकरण प्राप्त करने और चीन की सामाजिक प्रशासनिक संरचना एवं मूल्य पद्धति को परिवर्तित करने का प्रयास कर रहा हैं। चीन में ऐसी संगठनात्मक संरचनाओं और कार्य-प्रणालियों को विकसित किया गया हैं जो विभिन्न स्त्रोतों के अद्वितीय लोकप्रिय तत्वों से मिल जाती हैं। ये स्त्रोत हैं-प्रजातंत्रीय केन्द्रवाद का सैद्धान्तिक, लेनिनवादी मॉडल, रूसी समाज का उत्तर लेनिनवादी मॉडल क्रांतिकारी संघर्ष चलाने और विमुक्त क्षेत्रों के प्रशासन का चीनी साम्यवादी अनुभव आदि। साम्यवादी चीन में बहुत से महत्वपूर्ण संगठनात्मक पदक्रम राष्ट्रीय शक्ति के केन्द्र से स्थानीय स्तर तक फैले हुए हैं। साम्यवादी दल परम् सत्ताधारी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं

जिसका नीति-निर्माण की प्रक्रियाओं पर एकाधिकार है। साम्यवादी ही लोक सेवा में कार्यरत हैं और वे तटस्थ नहीं होते।

(vii) केन्द्रीकृत प्रशासन- चीन में लोक प्रशासन का विकेन्द्रीकरण नहीं हो पाया है क्योंकि साम्यवादी व्यवस्था में लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाते हुए भी शक्तियों के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती हैं। यद्यपि चीन में अनेक प्रान्त, स्वायत्तशासी क्षेत्र एवं जिले कार्यरत हैं किन्तु प्रशासन के अधिकांश प्रमुख निर्णय उच्चस्तरीय सत्ता द्वारा ही लिए जाते है। कम महत्व के 70 प्रशासनिक कार्यालय प्रान्तीय स्तर पर, 50 सिटी एवं प्रीफेक्चर स्तर पर तथा 45 काउण्टी स्तर पर स्थानीय संस्थाओं के अधीन किए गए है। चूँकि चीन में प्रत्येक स्तर पर निर्वाचित जन प्रतिनिधियों द्वारा गठित जन कांग्रेस, शासन संचालित करती है। अत: वे अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले प्रशासनिक संगठनों को नियन्त्रित भी करती हैं लेकिन चीन का संविधान मूलत: केन्द्रवाद का हामी है, अत: प्रान्त एवं अन्य स्थानीय स्तर की इकाईयाँ केवल केन्द्र सरकार के अधीनस्थ ही कार्य करती हैं।

(viii) सरकार और दल की अन्तरगुंफित संरचना- चीन का साम्यवादी दल कार्मिकों की अन्तरगुंफित पद्धति और उसी के द्वारा राज्य सरकार की संरचना के माध्यम से राज्यतंत्र को नियन्त्रित और संचालित करता हैं। दलीय नियन्त्रण और सरकारी संगठनों के नेतृत्व का निष्पादन विभिन्न प्रकारों से किया जाता हैं। प्रथम, केन्द्रीय समिति के विभाग और स्वयं दल की सोपानकी के भीतर की समितियाँ एक प्रकार की 'छाया सरकार' का निर्माण करती हैं। प्रत्येक विभाग मुख्य प्रकार्यात्मक क्षेत्रों या सरकारी कार्यो की सामान्य पद्धतियों में से प्रत्येक विभाग मुख्य प्रकार्यात्मक क्षेत्रों या सरकारी कार्यों की सामान्य पद्धतियों में से एक के लिए उत्तरदायी होती हैं। दल उस क्षेत्र के अन्दर कार्यरत समस्त सरकारी इकाइयों को निरन्तर रूप से नीति निर्देशित करती हैं। दूसरे, पार्टी के सदस्य सभी स्तरों पर सरकारी निकायों में शीर्ष पद पर आसीन होते हैं और उन्हें पार्टी के उच्चाधिकारियों या सरकारी प्राधिकारियों के आदेश प्राप्त होते हैं। पार्टी के आदेशों की प्रमुखता का कारण दल को सार्वजनिक रूप से नीति-निर्माण में सर्वोच्चता प्राप्त होना हैं। प्रत्येक राज्य के अधिकारीतंत्र में केन्द्रीय साम्यवादी दल के प्रमुख सदस्यों का एक कक्ष होता हैं जो राज्य को दिशा-निर्देश देता हैं। इस प्रकार दल ही हमेशा राज्य अधिकारीतंत्र के कार्मिको का पर्यवेक्षण करके उस पर नियन्त्रण रखती हैं।

(ix) चीन की पारम्परिक संस्कृति, समाजवाद तथा विकास से प्रभावित- चीनी प्रशासन में निर्णय प्रक्रिया तथा प्रशासनिक कार्यप्रणाली उपर्युक्त तीन तत्वों से अधिक प्रभावित दिखाई देती है। आंगडेन के अनुसार, "चीन की परम्परागत संस्कृति में कम्मईशयसवाद, प्रतियोगी परीक्षाएं, विशिष्ट प्रकार का व्यक्तिवाद (चीनी भाषा में इसे गुनाक्त्ती कहते है) तथा योग्य व्यक्ति द्वारा शासन संचालन की मान्यताएं गहराई से व्याप्त है।" इसी प्रकार समाजवादी मूल्यों में पार्टी, केडर, कार्य इकाई तथा समता की भावना निर्णायक रहती है। जहाँ तक चीन में विकास का प्रश्न है वह चीन के विशाल आकार, शक्ति तथा शिक्षा के स्तर से अत्यधिक प्रभावित माना जा सकता है। चीन की कुल जनसंख्या का पाँच प्रतिशत हिस्सा साम्यवादी दल कां सदस्य है, अत: राजनीतिक प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

(x) स्थानीय प्रशासन- चीन एक एकात्मक शासन व्यवस्था वाला देश है, लेकिन प्रान्तों, स्वायत्तशासी क्षेत्रों तथा स्वायत्तशासी जिलों को कुछ मामलों में छूट भी प्रदान की गई है।

बड़े नगरों की नगरपालिकाएं प्रत्यक्षत: केन्द्रीय सरकार द्वारा नियन्त्रित है। प्रान्तों में जिला, प्रशासन की एक इकाई है किन्तु स्थानीय स्वशासन की इकाईयाँ प्रीफेक्यर्स, काउण्टी तथा सिटी में विभक्त हैं। प्रत्येक स्तर पर जन प्रतिनिधियों से युक्त 'जन कांग्रेस' स्थानीय स्वशासन को संचालित करती है। चीन में गाँवों को 20 हजार कम्यूनों में एकीकृत किया गया हैं जो स्थानीय समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण शुइमका निभाते हैं। 'बेअर फुट डॉक्टर विधि' के माध्यम से चीन में रोगी को घर पर रखते हुए एकीकृत चिकित्सा पद्धति (आधुनिक तथा चीनी देशी पद्धति का एकीकरण) के द्वारा श्रेह स्वास्थ्य सेवाएं देने का जिम्मा भी स्थानीय संस्थाएं निभाती हैं।

(xi) विशिष्ट पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रणकारी संगठन- चीन के राजनय में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में स्पष्ट विभाजन दृष्टिगोचर नही होता है बल्कि राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा कम्यूनिष्ट पार्टी की केन्द्रीय र्सामेति एवं पोलित ब्यूरो ही वास्तविक सत्ता हैं। न्यायपालिका की शक्तियों को सीमित करते हुए सर्वोच्च जन प्रोक्चूरेटोरेट नामक अभिकरण की स्थापना की गई है जो पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण का सर्वप्रमुख संगठन है। इसके प्रमुख प्रोक्यरेटर जनरल का निर्वाचन राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा किया जाता है। सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटोरेट के अधीन स्थानीय स्तर पर अनेक प्रोक्यूरेटोरेट कार्यरत है जिनकी सैनिक एवं विशेष शाखाएं, दो प्रकार की शाखाएं है। ये प्रोक्यूरेटोरेट मूलत: इस बात पर निगरानी रखते है कि सरकार द्वारा निर्मित कानूनों, नियमों, नीतियों तथा संविधान के प्रावधानों का पालन हो रहा है अथवा नहीं। इनमें अधिकांश साम्यवार्दा पार्टी के कार्यकर्ता नियुक्त रहते है। सरकारी तंत्र एवं आम जनता दोनों पर पर्यवेक्षण करने, पुलिस नियन्त्रण करने के महत्वपूर्ण कार्य प्रोक्यूरेटोरेट को दिए गए है। समाजवादी व्यवस्था, राष्ट्रीय सुरक्षा, फौजदारी मुकदमों एवं राज्य के विरूद्ध षड्यन्त्र के मामलों में प्रोक्यूरेटोरेट या जन न्यायालय की अनुमति के बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। प्रोक्यूरेटोरेट नामक यह संस्था 'चीन का ओखुड्समैन' मानी जा सकती है।

केन्द्रीय सैनिक आयोग दूसरा विशिष्ट संगठन है जो सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटोरेट की भाँति प्रत्यक्षत: राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के नियन्त्रण में कार्य करता है। यह आयोग देश की सेना का नियन्त्रण एवं निर्देशन करता है। इस आयोग का अध्यक्ष ही सेना का सर्वोच्च कमाण्डर होता है। केन्द्रीय सैनिक आयोग का अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा अन्य सदस्य आवश्यकतानुसार नियुक्त किए जाते है। इसके अतिरिक्त चीन की गुप्तचर संस्था 'सेन्द्रल एक्सर्नल लेजा डिपार्टमेण्टल' भी प्रभावी भूमिका निभाता है।

(xii)अधिकारीतंत्र (लोकसेवा)- चीन में अधिकारीतन्त्र महत्वपूर्ण हैं जो दल दारा परिभाषित नीतियों का कार्यान्वयन करने के साथ-साथ प्रशासन को सुचारू रूप से चलाता हैं। चीन में प्रशासनिक पद्धति किस प्रकार कार्य करती है इसे जानने के लिए यह आवश्यक हैं कि इन समानान्तर पाठ्यक्रमों की कार्य-पद्धति बौर परस्पर सम्बन्धों को भली प्रकार समझ लिया जाये। चीनी राजनीतिक पद्धति का संचालन प्रजातन्त्रीय केन्द्रीयवाद के सिद्धान्तों के अधीन हैं जिसमें अन्तिम निर्णय लेने के अधिकार साम्यवादी दल और सरकार दोनों में ही अत्यधिक मात्रा में केन्द्रीत हैं। दल में कांग्रेस दल द्वारा चुनी हुई केन्द्रीय समिति सेंद्धान्तिक रूप से क्रांगेस सत्रों के बीच परम शक्ति का केन्द्र है, व्यवहार में पोलित ब्यूरो और इसकी स्थाया समिति पार्टी

सचिवालय के साथ मिलकर पार्टी के संगठन का सचालन करती है और प्रत्युत्तर में पार्टी अधिकारीतंत्र सहित देश के अन्य समस्त संगठनों का संचालन करती हैं।

सामान्यत: प्रशासनिक इकाईयों में सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों का कार्यान्वयन स्टॉफ द्वारा किया जाता हैं। गैर-साम्यवादी विश्व में ये लोक अधिकारी (लोक-सेवक) कहे जाते हैं जबकि चीन में इन्हें सका या कांपू कहते हैं, जो संगठित व्यवस्था में नेतृत्व, कुशलता एवं क्षमता के परिचायक हैं। इस प्रकार हम राज्यपरिषद के सदस्यों को पार्टी एवं केन्द्रीय सरकार के शीर्षस्थ संवर्गो में रख सकते हैं। अधिकारीतंत्र का मध्यवर्ती स्तर मध्य कोटि का संवर्ग हैं और जो लोग संवर्ग का निर्माण करते हैं। प्रत्येक संवर्ग पार्टी का सदस्य होता हैं किन्तु पार्टी का प्रत्येक सदस्य संवर्ग नहीं होता हैं। संक्षेप में, संवर्ग विभिन्न पार्टी एवं सरकारी अधिकारीतन्त्रों के कार्यकर्ता होते हैं और उन्हें पार्टी या सरकारी कार्य का निष्पादन करने का अधिकार प्राप्त हैं।

रोजगार के आधार पर संवर्ग की तीन प्रमुख श्रेणियाँ- राज्य, स्थानीय और सेना है। गैर-साम्यवादी देशों की सरकारी सेवा पद्धतियों के समान प्रत्येक समूह में पदों एव वेतनमानों सहित वेतन वर्गीकरण की अपनी पद्धति होती हैं। शहरी राज्य संवर्ग में 2 वेतनमानों की पद्धति हैं जबकि स्थानीय संवर्ग में 28 वेतनमान हैं। कम्यून स्तर पर या उससे निम्न स्तर पर स्थानीय संवर्गों को उनके वेतन की अदायगी प्रत्यक्ष रूप से उन संगठनों द्वारा की जाती हैं जहाँ वे कार्य करते हैं।

संवर्ग शब्द के कई अर्थ तथा प्रवृत्तियाँ हैं। व्यापक रूप से इसमें दल के सदस्य और गैर-दल के स्टाफ सम्मिलित होते हैं जो किसी भी स्तर पर चीन अधिकारीतत्र में सरकारी पद पर आसीन है। इस शब्द का आशय पार्टी अधिकार प्राप्त व्यक्तियों से हैं परन्तु कुछ वर्षो से इसका उपयोग अपेक्षाकृत कनिष्ठ कर्मचारियों के लिए भी किया जाने लगा हैं। यह संवर्ग पद्धति की पहली प्रवृत्ति हैं। दूसरे, चीन पर शासन करने के लिए अधिकारीतंत्र का आकार उसके क्रियाकलापों की व्यापकता और साम्यवादी की शक्ति सर्वाधिकारी संकल्पनाएं अत्यधिक संगठित सत्ता की स्तरित अधिकारीतत्र संरचना की प्रवृत्ति को सशक्त बनाती हैं। तीसरे, प्रत्येक मंत्रालय का कार्मिक ब्यूरो एक शक्तिशाली संगठन हैं, जिसमें पूर्ण रूप से दल के सदस्य कार्य करते हैं। चूँकि पार्टी स्वय, नियुक्तियों, पदोन्नति और अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के निर्णयों सहित कार्मिक प्रबन्धन पर अन्तिम नियन्त्रण रखती हैं। चौथे, अधिकांश संवर्गो के वेतन विशेष रूप से अधिक नहीं होते हैं फिर भी इनकी आय कृषक या श्रमिक की तुलना में बेहतर होती है। अधिकांश जनता की तुलना में पर्याप्त वित्तीय सुरक्षा, नि:शुल्क चिकित्सा, कम किराये का आवास, सस्ती खाद्य सामग्री, यात्रा में सामान्य लोगों से बेहतर सुविधाएं और बच्चों के लिए तुलनात्मक रूप से अच्छे विद्यालयों में शिक्षा दिलाने की सुविधा प्राप्त होती हैं। पाँचवे, संवर्गो के बराबर स्थानान्तरणों के सम्बन्ध में चीनी स्पष्टीकरण यह हैं कि अधिकारीतत्रवाद, स्थानीयता, विभागीयता या संवर्ग की संगठनात्मक इकाई के प्रति अत्यधिक निष्ठा की रोकथाम करते हैं। अन्तिम, माओ के बाद वहाँ के नेताओं की राय यह हैं कि सिद्धान्तवादी (रेड्स) और विशेषज्ञों के बीच विसंगति की

आवश्यकता नहीं हैं। वे संवर्गो के ऐसे विस्तृत दलों को इस प्रकार का प्रशिक्षण देते हैं जो सैद्धान्तिक दृष्टि से सही और व्यावसायिक दृष्टि से सक्षम होते हैं। वहाँ शिक्षित वर्ग के कार्य और उनकी व्यावसायिक उपलबिधयों को स्वीकार किया हैं और उन्हें मान्यता दी जाती हैं।

(xiii) लोक-सेवाएं एवं भाई-भतीजावाद- विश्व के अन्य विकासशील राष्ट्रों की भांति चीन भी निरंकुश लोक-सेवा तथा भाई-भतीजावाद की समस्या से ग्रस्त है। यद्यपि चीन की लोक-सेवा पर साम्यवादी पार्टी का नियन्त्रण है, किन्तु साम्यवादी विचारधारा में चीन लोक सेवक एक विशिष्ट अहं, निरंकुशता तथा स्वार्थो से घिरे हुए है चीन में योग्यता पर आधारित लोक-सेवा में अनेक अधिकारी ऐसे भी चयनित होते है जो साम्यवादी विचारधारा के समर्थक नहीं होते है, अत: ऐसे लोक-सेवा पर वैचारिक नियन्त्रण स्थापित करने के लिए आधारित आन्तरिक लोक-सेवा, प्रशासनिक लोक-सेवा के ढांचे में सुनियोजित ढंग से कार्य करती है। नौकरशाही के इन दो विभिन्न रूपों में संघर्ष होते हुए भी प्राय: सामने नही आ पाता है। सन् 1989 में निर्मित 'राष्ट्रीय प्रशासन स्कूल' में प्रशिक्षण के दौरान साम्यवादी शिक्षाएं लोक-सेवकों को दे दी जाती है।

चीनी लोक सेवाएं तीन प्रकार की है -

(क) प्रशासनिक कार्यपालक

(ख) व्यावसायिक या तकनीकी कार्मिक

(ग) कार्यालयी सेवा स्टॉफ

लोक-सेवाओं में पद विभाजन तथा नियुक्ति को शिक्षा और योग्यता के आधार पर केडर में बाँटा जाता है। लोक सेवाओं में प्राचीन काल से ही योग्यता, प्रतिस्पर्द्धा तथा समानता को महत्व दिया जाता रहा है लेकिन कटु सत्य यह है कि सन् 1933 से पूर्व अधिकांश उच्च पद पार्टी में समर्थकों द्वारा धारित किए जाते थे। स्थानीय संस्थाओं एवं लोक सेवाओं में निम्न पद प्राय: भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचार से पीड़ित रहे है। अल्पसंख्यक तथा अनुभवी व्यक्तियों को लोक-सेवा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व चीनी प्रशासन की नीति का अंग है। वर्तमान में चीनी प्रशासन सेवाओं को व्यावसायिक स्वरूप में ढालने के प्रयास जारी है।

(xiv) परिवर्तनशील व्यवस्था- चीनी लोक प्राय: कहते है-'त्सी,त्सी,त्स ओऊ, काई काई' अर्थात् कार्य करो, कार्य करो, कार्य करो, निःसंदेह कुछ गलतियाँ होगी, उन्हे सुधारो, सुधारो। चीन और जापान दोनों देशों के लोग कक्यइशयस की शिक्षाओं को जीवन में उतारते हैं। आज से पचास वर्ष पूर्व चीन में खेती का अधिकांश कार्य सामूहिक रूप से 20000 कम्यूनों द्वारा किया जाता था। चीन में 165 करोड़ मोऊ (भूमि नाप की इकाई) भूमि को सिंचाई सुविधा प्रदान कर तथा सग्रिहक स्वामित्व के अधीन रखकर अन्न उत्पादित किया जाने लगा। निःसंदेह इस समाजवादी व्यवस्था से क्रांतिकारी परिणाम सामने आए। लेकिन कालान्तर में आलसी तथा स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा समूहिक खेती में कम रूचि लेने के कारण वर्ष 1978-79 से पुन: भूमि एवं खेती का निजीकरण शुरू हुआ। इसी प्रकार माओत्से तुंग ने सन् 1956 में गाँव-गाँव में लोहा बनाने एवं उद्योग लगाने में क्रांतिकारी प्रयास किए लेकिन गुणवत्ता में गिरावट एवं

अव्यवस्था के कारण सरकार को ग्रामीण कुटीर उद्योगों के स्थान पर वृहद राष्ट्रीय लोक उपक्रम स्थापित करने पड़े।

भारत की भाँति चीन के लोक उपक्रम भी 'सफेद हाथी' सिद्ध हुई हैं, अत: अब पुनर्विचार हो रहा हैं। डग शाओ पिंग के नेतृत्व में चीन ने सन् 1978 से आर्थिक सुधारों की शुरूआत की जिन्हे सन् 1948 के गेट समझौते से पृथक् हुआ चीन सन् 1968 से पुन: इसमें सम्मिलित होने हेतु प्रयासरत था। सन् 2001 के दोहा सम्मेलन के द्वारा चीन विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बन चुका है। आर्थिक सुधारों के साथ ही प्रशासनिक सुधार भी किए है जिनके अन्तर्गत विदेशी विशेषज्ञों को चीन आमन्त्रित किया गया तथा चीनी अधिकारियों ने विश्व के अन्य देशों की प्रशासनिक व्यवस्था का अवलोकन कर निष्कर्ष निकाला कि राज्य द्वारा विशुद्ध समाजवाद की स्थापना एक दुष्कर कार्य है अत: निजीकरण की ओर कदम उठाना अप्रासंगिक नहीं है। इसी क्रम में राज्याधीन 120 उद्योगों की संख्या घटाकर मात्र 33 रह गई है तथा कृषि क्षेत्र में भी केवल अन्न, कपास, तिलहन, तम्बाकू, माँस, जलीय उत्पादन, वन क्षेत्र तथा प्राकृतिक रबर ही सरकार के अधीन है। शेष उद्योग निजी क्षेत्र को प्रदत्त कर दिए गए है। इसी प्रकार नौकरशाही की स्थूल काया में 5 लाख अधिशेष कार्मिकों को अन्यत्र समायोजित करने की योजना बनाई जा रही है क्योंकि अन्तर्राष्टीय परिस्थितियाँ भी चीन को विवश कर रही है।

7.2.6 पाश्चात्य देशों एवं जनवादी चीन की प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर तुलनात्मक विमर्श

चीन और पश्चिमी देशों तथा भारत की प्रशासनिक त्यवस्था में कुछ असमानताएं हैं। प्रथम, चीन में पश्चिमी देशों की लोक सेवा आयोग की भांति कोई स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष भर्ती निकाय नहीं हैं। चीन में साम्यवादी दल के सदस्यों को प्राथमिकता दी जाती हैं और उनकी भर्ती संस्थापित भर्ती नियमों के अनुसार नहीं की जाती हैं। अत: वहाँ अधिकांश सरकारी कर्मचारी और अधिकारी पक्के साम्यवादी हैं। दूसरे, चीन में नीति-निर्माताओं और प्रशासकों में सामंजस्य हैं क्योंकि दोनों ही एक सैद्धान्तिक और सामाजिक आधार का अनुसरण करते हैं। सरकारी सेवाओं पर पूर्ण रूप से साम्यवादी दल का नियन्त्रण हैं। चीन में लोक कर्मचारियों का कोई संगठन नहीं होता हैं। तीसरे, वहाँ प्रशासन का प्रारूप माओ की जन-आधारित नीति पर टिका है न कि पश्चिमी देशों के बेबेरियन प्रारूप पर। वहाँ के लोगों ने अपने जन-आधारित प्रशासन प्रारूप में अपनी विचारधारा के अनुरूप प्रतिस्थापित किया हैं। चीनी प्रारूप की विशेषता हैं प्रशासन के राजनीतिकरण तथा प्रशासन के अन्तिम राजनीतिक लक्ष्यों पर बल देना हैं। चौथे, चीनी अधिकारीतंत्र, पश्चिमी अधिकारीतन्त्रों की भांति विशेषीकृत कार्यालयों की सोपनकी पर आधारित हैं जिसमें लोगों की नियुक्तियाँ या पदोन्नति बेबेरियल मॉडल की तरह अनिवार्य रूप से तकनीक सक्षमता के आधार पर नहीं की जाती हैं। वहाँ की व्यवस्था में राजनीतिक रूप से प्रेरित साम्यवादी को गैर-राजनीतिक तकनीक विशेषज्ञ से अधिक महत्व दिया जाता हैं। दूसरे शब्दों में वहाँ अधिकारी की शिक्षा और तकनीकी कौशलों के अतिरिक्त उसके सामाजिक वर्ग के मूल, पार्टी सदस्यता और साम्यवादी आदर्शो के प्रति वचनबद्धता के स्तर को ध्यान में रखा जाता हैं।

यह पश्चिमी देशों के मॉडल व्यवस्था के विपरित हैं। पाँचवे, चीनी तकनीकी ही नहीं बल्कि उनसे तकनीकी और राजनीतिक कुशलता की अपेक्षा की जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रशासनिक कार्मिकों की भर्ती और पदोन्नति में तकनीकी एवं राजनीतिक सोच-विचार को महत्व दिया जाता हैं। छठवीं, अधिकारीतन्त्रीय संगठनों को जैसा कि बेबेरियन दृष्टि से महत्व दिया जाता हैं और समस्त समाजों के लिए अधिकारीतत्र की वैयक्तिक और प्राकृतिक भूमिका की जो धारणा बनी हुई हैं उसे चीनी प्रारूप पूर्णतया अस्वीकार करता है। वहाँ समस्त अधिकारीतत्र राजनीतिक ढाँचे के अन्दर कार्य करता हैं। चीनी प्रारूप में अराजनीतिक और तकनीकी प्रवृत्ति को निष्फल और अनुत्पादक माना जाता है। सातवें, चीन के लोग पश्चिमी देशों के विपरित सत्ता के बौद्धिक एवं कानूनी औचित्य को अस्वीकार करते है और अधिकारीतत्र संवर्गो के बीच मैत्री के आधार पर अधिक भागीदारी वाले नेतृत्व पर बल देते है। अधिकांश संवर्गो (लोकसेवकों) को अपने अधीनस्थों के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में शारीरिक श्रमयुक्त कार्य करना पड़ता है। इसके साथ उच्चतर स्तरों पर लिये निर्णयों के बारे में समर्थन जुटाने के लिए व्यापक कार्य प्रणालियाँ हैं 1 नीति-निर्माताओं द्वारा नयी नीति की धारणा बनायी और व्याख्या की जाती हैं। तत्पश्चात् समस्त स्तरों के कर्मचारियों के भागीदारी की अपेक्षा की जाती हैं। इसका उद्देश्य यह हैं कि यदि वे निर्णयों के लेने में सक्रिय भाग लेंगे तो वे संगठन के साथ अपना और अधिक तादात्म्य स्थापित करके अपना अधिक योगदान दे सकेंगे। इस प्रकार चीनी संगठनों में अपने अधीनस्थों के अनौपचारिक, सामाजिक समूहीकरण को निश्चित और संगठित करने के प्रयत्नों के द्वारा उनकी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। अन्तिम, चीनी लोग इस तथ्य पर बल देते हैं कि प्रशासन को अपने नियमों और कार्य-विधियों को अधिक से अधिक कम करने की कोशिश करनी चाहिए जिससे सभी सदस्य विशेष रूप से कनिठ लोकसेवक, जिसके पास कार्य सुधार के लिए नये विचार और नये आधार है, उन्हें लागू करने में सफल हो सकें। चीन में क्लासिकी संगठनात्मक सिद्धान्त की मुख्य धारणा 'आदेश की एकता' और रूसी सिद्धान्त के 'एक व्यक्ति प्रबन्धन' को अस्वीकार करते है। इसके विपरित चीनी सामूहिक नेतृत्व और परामर्श की लोचयुक्त प्रणाली पर बल देते हैं।

उपरोक्त अध्ययन से चीनी प्रशासन प्रारूप की मुख्य विशेषताओं और पश्चिमी देशों की प्रशासनिक व्यवस्था से विभिन्नताओं की जानकारी प्राप्त होती है। विभिन्नता होते हुए भी, चीनी प्रशासनिक पद्धति की बहुत सी विशेषताएं पश्चिमी प्रारूप जैसी ही हैं।

माटिन किंग वाइट ने पश्चिमी प्रारूप (बेबेरियन विचारधारा पर आधारित) और माओ की विचारधारा पर आधारित चीनी प्रशासन प्रतिमान की अत्यधिक उपयोगी तुलना की हैं। उसने दोनों प्रतिमान के बीच समानताओं और समानताओं को निम्न प्रकार स्पष्ट किया हैं -

दोनों प्रतिमानों के बीच समानताएं -

1. दोनों संगठनों के सुस्पष्ट उद्देश्य हैं।
2. संगठन विशेषीकृत कार्यालयों की पदसोपान पद्धति का उपयोग करते हैं।
3. भर्ती और पदोन्नति के सर्वव्यापी मानदण्ड हैं परन्तु दोनों पद्धतियों में विभिन्न मापदण्ड हैं।
4. फाइलें, नियम और सूचनाएं संगठनात्मक व्यवस्था के अंग हैं।

5. संगठन में शीर्ष स्थानों पर प्राधिकार और पुरस्कार अत्यधिक हैं, किन्तु चीन में इसे अपेक्षाकृत कम महत्व देते हे।
6. कार्यालय पदधारियों से अलग होते हैं।

दोनों प्रतिमानों के बीच असमानताएं -

प्रशासन की पश्चिमी संकल्पना	**प्रशासन की चीनी संकल्पना**
• संगठनात्मक प्राधिकार का आधार वैधानिक बौद्धिक वर्चस्व है।	जन-आधारित सत्ता पर बल दिया जाता हैं।
• कार्यालय और निष्पादन के लिए विभेदित पारितोषिकों को प्रोत्साहित किया जाता है।	कार्यालय और निष्पादन के लिए अलग- अलग पारितोषिक को प्रोत्साहित नहीं किया जाता हैं।
• कार्मिकों की भर्ती में तकनीकी क्षमता को महत्व दिया जाता हैं।	राजनीतिक और तकनीकी क्षमता दोनों को महत्व दिया जाता हैं ।
• संगठनात्मक स्वायत्तया को महत्व दिया जाता हैं।	राजनीतिक हस्तक्षेप का आधिपत्य होता हैं।
• राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होता हैं।	राजनीतिक हस्तक्षेप प्रशासन का आवश्यक हिस्सा है।
• संगठनों में नौकरी की सुरक्षा को प्रोत्साहित किया जाता हैं।	नौकरी, सुरक्षा और वृत्तिक अभिविन्यास को हतोत्साहित किया जाता हैं।
• संगठन की औपचारिक संरचना में अनौपचारिक सामाजिक वर्ग अनिवार्य रूप से विद्यमान होते हैं ।	अनौपचारिक वर्गो से पूर्ण रूप से सहयोग लिया जाता हैं।
• संगठनात्मक परिणामों की गणना नियमों और स्थापित कार्य-विधियों के द्वारा होती हैं।	लोचपूर्ण और परिवर्तनशील मूल्यों, नियमों और कार्य-प्रणालियों को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है।
• बड़े पैमाने के संगठनों में संवर्गों के प्रति उदासीनता हैं।	अन्तवैयक्तिक संवर्ग सम्बन्धों में सोपानकी के स्थान पर मैत्री सहयोग पर जोर दिया जाता है।
• संगठन के अनुसार ही विविध अनुपालन कार्य नीतियों की आवश्यकता होती हैं।	प्रत्येक स्थान पर मानकीय और सामाजिक अनुपालन की मुख्य भूमिका निभानी चाहिए।
• शासन संचालन की सुनिश्चित पदसोपान व्यवस्था हैं।	सामूहिक नेतृत्व और सहभागी परामर्श हैं।

चीन की प्रशासनिक व्यवस्था लोकतांत्रिक देशों के विपरित अलग विचारधारा, समाजवादी दृष्टिकोण और प्रतिबद्ध लोक-सेवा के आधार पर कार्यरत हैं। तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता हैं कि लोकतांत्रिक देशों के विपरित साम्यवादी देश की प्रशासनिक व्यवस्था किस प्रकार संचालित होती हैं।

7.3 सारांश

अपने विशाल आकार व जनाधिक्य के साथ ही चीन विश्व की महाशक्तियों में से एक है। उसका विकसित समृद्ध और शक्तिशाली होना उसकी शासन व्यवस्था की सफलता का

द्योतक है। उसकी शासन प्रणाली न एकात्मक हैं न संघात्मक है लेकिन एक विशिष्टिकृत प्रकृति व प्रारूप की धारिणी है। संविधान की सर्वस्वीकार्यता एवं लोचशीलता, केन्द्रियकृत लोकतंत्र, सर्वहारावर्ग का लोकसत्ता पर प्रभाव, अनुशासित-समर्पित जनसमूह, संसदीय मजबूत प्रणाली आज चीन को एकता के सूत्र में पिराये है।

इस आधुनिक युग में भी जहाँ वैश्वीकरण की बयार दुनिया भर में चल पड़ी हैं चीन की परम्पराओं एवं सांस्कृतिक विरासतें दलीय शासन एवं प्रशासन पर अपना प्रभाव कायम किये हुए है। संविधान जहाँ एक ओर नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं कर्त्तव्य स्पष्ट करता है। वहाँ न्यायपालिका संघ के टूटने और साम्यवाद के कमजोर होने के पश्चात् चीन में लोकतंत्र, खुलेपन, पूँजीवाद और बाजारीकरण पर जोर दिया जाने लगा है।

जनवादी चीन मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था कुछ मजबूत आधारों पर टिकी है। जैसे- सिद्धान्ततः कठोर लेकिन व्यवहार्यतः लचीला संविधान, सर्वहारा वर्ग का लोकसत्ता पर नियन्त्रण, केन्द्रीयकृत प्रशासन, सुस्पष्ट मौलिक अधिकार एवं कर्त्तव्य, जनोन्मूखी साम्यवादी दलनीति, प्रभावित प्रशासन, जननियन्त्रित विधायिका, शासनाधीन न्यायपालिका आदि।

निश्चय ही चीन आज हर क्षेत्र में दुनिया के लिए एक मिसाल और उसकी विशिष्टकृतताएं अध्येयताओं की जिज्ञासा का प्रमुख कारण है। अतः निसंदेह हमें चीन की प्रशासनिक प्रणाली की जानकारी, उसकी खुबियों को अपनी शासन व्यवस्था में उतारने एवं जानने की कोशिश भी करनी चाहिए।

7.4 अभ्यास प्रश्न

1. चीन के संवैधानिक विकास पर लेख लिखिए।
2. चीन का संविधान सिद्धान्त में कठोर लेकिन व्यवहार में लचीला हैं। समझाइए।
3. चीन के संविधान की मुख्य विशेषताएं क्या हैं'
4. चीन के प्रशासनिक क्षेत्रों एवं उनकी प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।
5. चीन की प्रशासनिक व्यवस्था के प्रमुख लक्षणों को रेखांकित कीजिए।
6. चीन के केन्द्रीयकृत साम्यवादी लोकतंत्र को समझाइऐ।
7. पाश्चात्य प्रशासनिक व्यवस्था एवं जनवादी चीन की प्रशासनिक व्यवस्था के मध्य समानताओं व असमानताओं को रेखांकित कीजिए।

7.5 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. निमरोद रेफली, रिडिंग्स इन कंपेरेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, एलंट बेकन, बोस्टन, 1967
2. डॉ. अवस्थी तुलनात्मक लोकप्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2007
3. मार्टिक किंग व्हाइट, ब्यूरोकेसी एण्ड मॉडनईजेशन इन चीन, द माओइस्ट क्रीटिक, अमेरिका सॉशलोजिकल रिव्यू अप्रैल, 1973
4. हारून ए.वान. पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन-एन इन्ट्रोडक्शन, केण्डल हंट पब्लिशिंग क डबीक, इओवा, 1997

5. फ्रेडरिग्ज: द एडमिनिस्ट्रेशन इन डवलपिंग कंट्रीज-द थ्योरी ऑफ सोसायटी, हाउटन मिफीलन योस्टन, 1964
6. फेरल हैडी: पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन-ए कंपेरेटिव पर्सपेक्टिक, एन.जे. प्रिन्टिग हाल, एंगलबुड क्लिक, 1966
7. उनकी बसु, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन कॉसेप्ट एण्ड थ्योरीज, म्हीलंग पब्लिशर्स, प्राइवेट लिमिटेड, 1998

इकाई-8

अमेरिका में स्थानीय सरकारें संघीय-स्थानीय संबंधों के विशेष संदर्भ में

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 स्थानीय शासन का महत्व एवं प्रकृति

8.3 संयुक्त्त राज्य अमेरिका में स्थानीय शासन की विशेषताएं

8.4 अमेरिका में स्थानीय शासन का कार्यक्षेत्र

8.5 अमेरिका में स्थानीय शासन की रूपरेखा

8.6 अमेरिका में स्थानीय शासन की कार्यपालिका शाखाएं

8.6.1 ग्रामीण स्तर पर अमेरिकी स्थानीय प्राधिकरण की विचारशील एवं कार्यपालिका शाखाएं

8.6.2 नगरीय स्तर पर विचारशील एवं कार्यपालिका शाखाएं

8.7 अमेरिका के स्थानीय सरकारों का वित्तीय प्रशासन

8.8 संयुक्त राज्य अमेरिका में सेवी वर्गीय प्रशासन

8.9 अमेरिका में संघीय-स्थानीय सरकारों के संबंध

8.9.1 संयुक्त्त राज्य अमेरिका में संघात्मक व्यवस्था

8.10 संघीय सरकार का स्थानीय सरकारों से संबंध, पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण

8.11 सारांश

8.12 अभ्यास प्रश्न

8.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप जान पायेंगे: -

- स्थानीय शासन का महत्व
- संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थानीय शासन की विशेषताएं एवं इसका कार्यक्षेत्र,
- संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थानीय शासन की संचरचना,
- संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थानीय शासन की कार्यपालिका शाखाओं का कार्यकरण,
- संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थानीय शासन में सेवीवर्गीय प्रशासन का ढांचा, एवं
- संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय-स्थानीय सरकारों के सम्बंधों की प्रकृति।

8.1 प्रस्तावना

स्थानीय शासन प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति और सामाजिक नियंत्रण तथा शक्ति एवं विकास के बीच एक समझौता है। लोकतंत्रात्मक शासन में स्थानीय शासन की संस्थाओं का

महत्व बहुत अधिक होता है, क्योंकि स्थानीय संस्थाऐं लोकतंत्र की पाठशाला के रूप में कार्य करती है। स्थानीय संस्थाओं द्वारा देश के नागरिकों में राजनीतिक चेतना का प्रसार एवं लोकतंत्र का वातावरण तैयार किया जाता है। स्थानीय संस्थाओं में भाग लेने से लोग स्वायत्त शासन की कला सीखते हैं। उन्हें नागरिकता का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है। नागरिक भावना का विकास होता है। आज संसार के लगभग सभी देशों में सम्पूर्ण शासन का भार केवल संघीय सरकार पर नहीं होता, अपितु एक बहुत बड़ा भाग सम्पूर्ण देश में फैली हुई स्थानीय सरकारों द्वारा संपादित होता है।

8.2 स्थानीय शासन का महत्व एवं प्रकृति

स्थानीय शासन को विभिन्न देशों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। अमेरिका में इसे म्युनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन के नाम से जाना जाता है। स्थानीय शासन उन संस्थाओं के शासन को कहा जाता है, जो जनता दारा चुनी जाती है तथा जिन्हें राष्ट्रीय अथवा राज्य सरकार के नियंत्रण में रहते हुए भी स्थानीय शासन के मामलों में अधिकार और दायित्व प्राप्त होते है।

स्थानीय शासन एक ऐसा शासन है, जो अपने सीमित क्षेत्र में प्रदत्त अधिकारों का उपयोग करता है, परन्तु स्थानीय शासन अपने क्षेत्र में संप्रभू नहीं होता।

स्थानीय शासन की संस्थाऐं राज्य या संघीय सरकार द्वारा दिये गये अधिकारों का उपयोग करती है और राज्य विधान मण्डलों दारा बनाई गयी विधियों को लागू करती है। स्थानीय शासन को शासकीय अधिकारों के विकेन्द्रीकरण के रूप में भी समझा जा सकता है। स्थानीय शासन को स्थानीय जनता के लिए सबसे उपयुक्त शासन माना जाता है, क्योंकि स्थानीय आवश्यकताओं और समस्याओं को स्थानीय लोग आसानी से समझ सकते है।

कार्ल जे.फ्रैडीरक के अनुसार- स्वायत्त शासन स्थानीय समाज पर एक प्रशासनिक व्यवस्था है, जो व्यवस्थापन के नियमों द्वारा इस प्रकार विनियमित होती है कि सरकार की सत्ता का उस समय प्रतिनिधित्व करें, जबकि वह स्थानीय रूप से सक्रिय है।

एचगोल्डिग के अनुसार- यह एक बस्ती के लोगों द्वारा अपने मामलों का स्वयं ही प्रबंध है।

गिलक्राइस्ट के अनुसार- स्थानीय संस्थायें अधीनस्थ संस्थायें हैं, लेकिन एक सीमित क्षेत्र में इन्हें कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है।

स्थानीय संस्थाओं और संघ ईकाइयों में अंतर

- स्थानीय संस्थाऐं पूरी तरह से स्वतंत्र न होकर केन्द्रीय या प्रादेशिक शासन के अधीन रहकर कार्य करती है, जबकि संघीय ईकाइयाँ अपने कार्य क्षेत्र में स्वतंत्र होती हैं।
- स्थानीय संस्थाओं पर केन्द्र या प्रादेशिक सरकारों का कुछ नियंत्रण अवश्य रहता है, जबकि संघीय ईकाइयाँ नियन्त्रण से मुक्त रहती हैं।
- स्थानीय संस्थाओं के कार्य स्थानीय महत्व के होते हैं एवं संघीय ईकाइयों के कार्य प्रादेशिक होते है।
- स्थानीय संस्थाओं का अधिकार क्षेत्र परिवर्तित किया जा सकता है, जबकि संघीय ईकाइयों में परिवर्तन हेतु संविधान में संशोधन जरूरी है।

8.3 संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थानीय शासन की विशेषताऐ

किसी भी देश की स्थानीय सरकार बहुत कुछ वहाँ की ऐतिहासिक परम्पराओं का परिणाम होती है। कहा जाता है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है, जैसे-जैसे समस्यायें आती जाती है, वैसे-वैसे नये-नये उपाय काम में लिये जाते है। परिस्थिति एवं आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य ने ही स्थानीय संस्थाओं के विकास को गति प्रदान की है।

अमेरिका में स्थानीय शासन का जो रूप है, वह अमेरिकी लोकतंत्रीय परम्परा के अनुकूल है। अमेरिकी स्थानीय प्रशासनिक संस्थाऐं, ब्रिटिश परम्परा की देन है ये संस्थाऐं औपनिवेशिक काल में भी विद्यमान थी, लेकिन समय के साथ इसमें अनेक परिवर्तन हुए।

अमेरिकन शासन की कुछ प्रमुख विशेषताऐ इस प्रकार है -

- अमेरिका में स्थानीय शासन को व्यावसायिक दृष्टि से देखा जाता है।
- राज्य स्तर से नीचे प्रशासन की ईकाइयाँ एक प्रकार से राज्य शासन की प्रतिनिधि है। राज्य के कानून द्वारा उनको शक्तियाँ एवं संगठन बनाया गया है।
- स्थानीय शासन का गठन न केवल प्रत्येक राज्य में निम्न प्रकार का है, बल्कि एक ही राज्य में कई स्थानों पर कई प्रकार के स्थानीय निकाय है।
- विभिन्न राज्यों में विभिन्न ईकाइयों की स्वायत्तता का स्तर अलग-अलग राज्यों में भिन्न भिन्न है।
- राज्यों को अपनी स्थानीय संस्थाऐं निर्धारित करने की स्वतन्त्रता है।

8.4 अमेरिकी स्थानीय शासन का कार्यक्षेत्र

अमेरिका में स्थानीय शासन के अन्तर्गत सामान्यत: व पुलिस, अग्निरक्षा, स्वास्थ्य एवं सफाई, सार्वजनिक मार्ग, शिक्षणालयों का संचालन, सार्वजनिक उपयोगिता क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्रों में अधिक विकसित है, लेकिन दोनों का कार्य लगभग एक सा है। स्थानीय प्रशासन के अनेक कार्यो में राज्य सरकारें भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेती हैं। वस्तुतः स्थानीय शासन अमेरिकी शासन व्यवस्था का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है, जो राज्य की विभिन्न जातियों व वर्गो की सुख शांति के लिए आवश्यक है।

8.5 अमेरिका में स्थानीय शासन की रूपरेखा

अमेरिका में स्थानीय शासन संस्थाओं को सामान्यत: दो वर्गो में बाँटा जाता है। नगर शासन (City Government) एवं ग्राम्य शासन (Rural Government)। स्थानीय शासन की सबसे बड़ी इकाई कंट्री (country) है। अमेरिका में लगभग तीन हजार कंट्रीयां हैं। जिसके दस हजार कस्बे (Town) तथा इनमें से लगभग सोलह हजार नगर प्रशासनिक ईकाइयाँ (Urban Muncipalities) बनाई गयी है, जिन्हें नगर (City) कहते है। इसके अलावा वहाँ करीब आठ हजार अन्य प्रकार की (Miscellaneous) इकाईयों हैं, जिन्हें विशेष जिले (Special District) के नाम से जाना जाता है। ये इकाईयाँ सिंचाई एवं जल प्रवाह के कार्य देखती है।

काउन्टी

यह स्थानीय शासन की सबसे बड़ी इकाई है। संख्यात्मक दृष्टि से ये करीब तीन हजार के आसपास हैं। प्रत्येक राज्य को प्रशासनिक दृष्टि से काउन्टियों में बाँटा गया है। इनका क्षेत्रफल भिन्न-भिन्न होता है। कंट्री के प्रशासन को एक समिति अथवा परिषद द्वारा संचालित किया जाता है, जिसमें करीब चार से लेकर पचास तक सदस्य होते हैं। दो तिहाई कंट्री परिषदों या समितियों (Country Board or Concils) में छः से कम ही सदस्य होते हैं। कुछ अधिकारी निर्वाचित होते हैं, जिनके द्वारा उन प्रशासनिक कार्यों को किया जाता है, जिन्हें परिषद अथवा समिति स्वयं नहीं करती। काउण्टी के न्यायाधीश भी या तो नियुक्त किये जाते है या फिर निर्वाचित होते है।

टाउन

अमेरिका के कई राज्यों में काउण्टी को टाउनों और नगरों में विभाजित किया गया है। टाउन ग्रामीण स्थानीय शासन की मुख्य निकाय है और नगर शहरी स्थानीय शासन के। टाउन का शासन एक कस्बा या टाउन समिति दारा संचालित किया जाता है। इस समिति की बैठक प्राय: वार्षिक होती है, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर अधिक बैठकें भी आयोजित हो सकती है। ये समितियाँ नियम बनाने और बजट स्वीकार करने का कार्य करती है तथा अपने-अपने क्षेत्र के लिए विशिष्ट व्यक्तियों की एक परिषद (Board Select Man) जिसे टाउन समिति भी कहते है तथा एक शिक्षा परिषद का निर्वाचन भी करती है।

टाउनशिप

टाउनशिप भी स्वशासन की एक इकाई है। इसका प्रबंध एक छोटी सी निर्वाचित परिषद द्वारा किया जाता है। इसके अध्यक्ष को नगर प्रमुख (Mayer) या सभापति (Chairman) कहा जाता है। मेयर निर्वाचित भी हो सकता है और परिषद के सदस्यों में से किसी एक को मनोनीत भी किया जा सकता है। टाउनशिप की परिषद, नियम बनाने, कर्मचारियों को नियुक्त करने एवं बजट स्वीकारने के कार्य करती है।

नगर

अमेरिका में नगर की स्थिति इंग्लैण्ड की बरो (Borough) या कंट्री बरो (Country Borough) के समान होती है। ये कंट्री के उपविभाग होते हैं। इनकी संख्या लगभग सोलह हजार है।

प्रत्येक नगर का शासन प्रबंध एक अधिकार पत्र (Charter) के अनुसार होता है, जिसे या तो राजकीय व्यवस्थापिका द्वारा प्रदान किया जाता है या जिसे नगरसभा अपने नगर-स्वशासन के अधिकार के अन्तर्गत स्वयं निर्धारित करती है। नगर के लिए इस अधिकार पत्र का वही महत्व है, जो किसी राज्य या सम्पूर्ण देश के लिए संविधान का है।

अधिकार पत्रों (Charters) के द्वारा साधारणत: तीन प्रकार के स्थानीय शासनों की स्थापना होती हो, जिनके नाम निम्नोक्त है -

(i) मेयर कौंसिल फार्म -

इनमें विभिन्न क्षेत्रों से जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की 'एक परिषद हीती है। इसका अध्यक्ष मेयर होता है, जिसके दो रूप होते है। एक शक्तिवान, और दूसरा शक्तिविहिन।

शक्तिहीन मेयर की शक्तियाँ बहुत कम होती है। वह परिषद का सभापति होता है। वह कुछ मुख्य-मुख्य पदों पर नियुक्ति कर सकता है, किन्तु उनकी कौंसिल द्वारा पुष्टि कराना आवश्यक होता है। कुछ विषयों में मेयर को विशेषाधिकार प्राप्त होता है, लेकिन कौंसिल उसके निषेध को दो-तिहाई बहुमत से समाप्त कर सकती है।

सिद्धान्त रूप से मेयर का कार्य विभिन्न विभागों का नियन्त्रण और निरीक्षण करना है, लेकिन व्यवहार में वह ऐसा नहीं कर पाता, क्योंकि उसे पर्याप्त अधिकार प्राप्त नहीं है।

(ii) शक्तिशाली टाइप मेयर (Strong Mayor Type)

शक्तिशाली टाइप मेयर के स्थानीय शासन का आधार शक्ति प्रथक्करण का सिद्धान्त है। कौंसिल नीति का निर्धारण करती है और मेयर, जो जनता द्वारा निर्वाचित होते है, कार्यपालिका शक्तियुक्त होते है। मेयर ही महत्वपूर्ण अधिकारियों की नियुक्त करता है और उन्हें अपने अधिकार से हटा भी सकता है। नगर-ईकाई के सभी कर्मचारियों की नियुक्ति उसी के द्वारा होती है और नगर के बजट पर भी उसका नियंत्रण रहता है। उसे कौंसिल के निर्णयों पर कुछ प्रतिबंध के भी अधिकार होते है। इस प्रकार शक्तिशाली मेयर नगर के प्रशासन का अध्यक्ष होता है।

(iii) कमीशन फार्म (Commission From)

इस प्रारूप में नगर का शासन एक आयोग द्वारा चलाया जाता है। इससे अशक्त मेयर वाले शासन के दोष दूर हो जाते है तथा शासन का सरलीकरण हो जाता है। इस प्रारूप में नगर की व्यवस्थापन और प्रशासन संबंधी शक्तियाँ एक छोटे आयोग में निहित होती है, जिसके सदस्य लगभग पाँच होते हैं और जिन्हें जनता चुनती हैं। इसमें से एक आयोग का सभापति होता है। सम्पूर्ण आयोग नीति निर्धारण करता है और आयोग का प्रत्येक सदस्य एक प्रशासनिक विभाग का अध्यक्ष होता है।

नगर का पूरा प्रशासन उतने ही भागों में विभक्त होता हैं, जितने इसके सदस्य होते हैं। आयोग का प्रत्येक सदस्य एक विभाग का कार्य देखता है। इस पद्धति का लाभ यह है कि इसमें शक्तियों तथा उत्तरदायित्वों का विभाजन नहीं होता, अपितु पाँच या सात व्यक्ति सामंजस्य के साथ कार्य कर सकते हैं।

इस पद्धति का दोष यह है कि इसके सदस्यों की संख्या कम होने के कारण जनता का सही प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता तथा इसमें सभी सदस्यों की शक्तियाँ समान होती है। यदि आयोग के सदस्यों के बीच किसी प्रश्न पर गतिरोध पैदा हो जाये तो उसे कोई नहीं सुलझा सकता।

नगर प्रशासन का यह प्रारूप अधिक बड़े नगरों में लोकप्रिय नहीं है। यह पद्धति केवल 25 हजार के आस-पास की आबादी वाले छोटे नगरों में ही लोकप्रिय है।

(iv) कौंसिल मैनेजर फार्म (Council Manager From)

नगरीय शासन का यह प्रारूप व्यापक रूप से प्रचलित है। इस पद्धति में नेता निर्धारण का कार्य तो काँसिल करती है तथा प्रशासन का उत्तरदायित्व एक विशेष योग्यता प्राप्त अधिकारी मैनेजर पर होता है। मैनेजर साधरणत: कौंसिल द्वारा नियुक्त किया जाता है, जो कि

दैनिक प्रशासन के लिए पूर्णत: उत्तरदायी होता है। इस प्रारूप का मुख्य उद्देश्य कुशल प्रशासन है। अमेरिका में यह प्रणाली सबसे अधिक सफल प्रणाली मानी जाती है, क्योंकि इस प्रणाली में नीति निर्माण एवं प्रशासन को अलग-अलग कर देने से प्रशासन में विशेष कुशलता आ जाती है।

8.6 अमेरिकी स्थानीय शासन की कार्यपालिका शाखाऐं

स्थानीय सरकार की संरचना में दो प्रकार की ईकाइयाँ शामिल होती हैं, जो दो अलग-अलग प्रकार के कार्य सम्पन्न करती हैं। जैसे-सार्वजनिक नीति को निर्धारित करने वाली ईकाई को विचारशील इकाई कह सकते है तथा नीति संबंधी निर्णयों को क्रियान्वित करने वाली इकाई को कार्यपालिका ईकाई कहा जा सकता है। इस प्रकार नीति निर्णय एवं प्रशासन, दो अलग-अलग कार्य हैं।

पॉल एच एपलवी तथा व्रिंपा चैपमेन के अनुसार- वास्तविक व्यवहार में नीति संबंधी निर्णयों की रचना और उनको क्रियान्वित करने में स्थानीय सरकार के संदर्भ में पूर्ण रूप से विभाजक रेखा नहीं खीचीं जा सकती। अधिकांश छोटे-छोटे निर्णयों को क्रियान्वित करते समय कुछ अन्य निर्णय भी साथ-साथ होते हैं। इसी प्रकार जब निर्णय लेने की प्रक्रिया संचालित होती हैं, तो उनकी क्रियान्विति का भी पूरा ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार स्थानीय सरकार के विचारशील एवं कार्यपालिका अंगों को भी परस्पर संबंधित रहना पड़ता हैं और ये दोनों सहयोग से कार्य करती हैं।

इस प्रकार सार्वजनिक नीति रचना का कार्य केवल एक ही प्रकार के अंग द्वारा सम्पन्न नहीं किया जाता। इस कार्य में प्रतिनिधि एवं गैर प्रतिनिधि दोनों ही प्रकार की ईकाइयाँ भाग लेती है। प्रतिनिधि ईकाईयों के अधिकाँश सदस्य मुख्यत: निर्वाचित होते हैं तथा निर्णय निर्माण के कार्य में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

8.6.1 ग्रामीण स्तर पर अमेरिकी स्थानीय प्राधिकरण की विचारशील एवं कार्यपालिका शाखाऐं-

अमेरिका में देहाती स्तर पर काउण्टी टाउन तथा टाउनशिप पाये जाते हैं। इनकी विचारशील एवं कार्यपालिका शाखाऐं अलग-अलग नाम, काम एवं शक्तियों से सम्पन्न हैं। काउण्टी के प्रशासनिक अभिकरण अनेक प्रकार से राज्य की सहायता करते हैं, जैसे जन्म प्रमाण पत्र, कार, शादी, विवाह के लाइसेंस बनाने का काम आदि।

काउण्टी का संगठन जटिल होता है। इसकी शक्तियाँ एवं कार्य विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों को सौंप दिये जाते है। इन पर काउण्टी आयुक्त, पर्यवेक्षक, मण्डल एवं काउण्टी मण्डल पर्यवेक्षण करता है। काउण्टी के लिपिक, नगराधिप, अभियोग चलाने वाले अधिकारी और कोषाध्यक्ष आदि की शक्तियाँ कानून द्वारा स्पष्ट कर दी जाती है। काउण्टी के संगठन में काउण्टी मंडल का महत्वपूर्ण स्थान है।

काउण्टी मंडल

उण्टी मंडल में काउण्टी अथवा उसके जिलों की जनता द्वारा निर्वाचित सदस्य होते हैं, जिनकी संख्या अलग-अलग राज्यों में पाँच से लेकर पचास तक होती है। कुछ राज्यों में काउण्टी को टाउनशिपों में विभाजित किया जाता है। ये टाउनशिप काउण्टी मण्डल के सदस्यों का चुनाव

करते हैं। काउण्टी मण्डल के सदस्य दो अथवा चार वर्षो के लिए नियुक्त होते हैं। इन्हें प्रतिवर्ष या प्रति दूसरे वर्ष आंशिक रूप से बदला जाता है। यदि मण्डल का आकार छोटा होता है तो उसमें सभी विषयों पर विचार-विमर्श हो जाता है और यदि आकार बड़ा होता है तो प्रारंभिक अध्यक्ष के लिये समितियाँ नियुक्त कर दी जाती हैं। काउण्टी मण्डल के सदस्य किसान, छोटे व्यापारी, काउण्टी बैंक के कर्मचारी, डॉक्टर, वकील, व्यावसायिक, राजनीतिज्ञ आदि होते है।

काउण्टी मण्डल द्वारा संविधान एवं राज्य विधान मण्डल द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा अनेक नीति संबंधी निर्णय लिये जाते है। जैसे नये उधम प्रारम्भ करना, भवन निर्माण, सड़क एवं पुल निर्माण, चीजों की खरीददारी, काउण्टी द्वारा उनके ठेके दिए जाते है। व्यवहार में इनके कारण भ्रष्टाचार पनपता है। काउण्टी मण्डल छोटे अधिकारियों की नियुक्ति करता है और अपने अधीन संस्थाओं के लिए नियम-उपनियम बनाता है। इसके द्वारा समाज कल्याण की दृष्टि से अनेक कार्य किये जाते हैं। यह एक नीति निर्णायक निकाय के रूप में बजट बनाना और स्वीकार करना, कर की दर कम करना, व्यक्तियों एवं क्षेत्रों के बीच मूल्यांकन करने जैसे अनेक वित्तीय कार्य सम्पन्न करता है।

न्यायिक अधिकारी

काउण्टी स्तर पर न्याय प्रशासन को चलाने वाले अनेक अधिकारी होते है, जैसे-एटॉर्नी, नगराधिप एवं कोरोनर आदि। कानूनी दृष्टि से ये सभी राज्य के अधिकारी होते हैं, लेकिन इन्हें स्थानीय अधिकारी के रूप में जाना जाता है, क्योंकि ये स्थानीय जनता द्वारा निर्वाचित किये जाते हो। एटॉनी अभियोग चलाने वाला अधिकारी है। वह राज्य के नाम पर काउण्टी क्षेत्र के समस्त अपराधियों के विरूद्ध अभियोग चलाता है। नगराधिप (Sheriss) काउण्टी का जनता द्वारा निर्वाचित अधिकारी होता है, जो शान्ति स्थापना, अपराधी पक्कना, न्यायालय के लेखों को कार्यान्वित करना, काउण्टी जेल को प्रशासित करना आदि कार्य सम्पन्न करता है।

कोरोनर (Coroner) द्वारा दुर्घटना में होने वाली मृत्यु के कारणों की जाँच, डॉक्टर करा की गई असावधानी की जाँच जैसे कार्य सम्पन्न किये जाते हो। यह जूरी द्वारा बुलाये गवाहों की परीक्षा करता है तथा प्रमाणों की देखभाल करता है। इनके अलावा काउण्टी में वित्तीय अधिकारी भी होते हैं, जैसे-कोषाध्यक्ष, मूल्यांकन कर्ता एवं अंकेक्षणकर्ता आदि। अमेरिका के लगभग 25 राज्यों में एक काउण्टी क्लर्क रखने की भी परम्परा है, जो निर्वाचित होता है तथा कई महत्वपूर्ण कार्य करता है।

टाउन सरकार

इसका दायित्व सैलेक्टमैन (Selectman) के हाथों में रहता है। इनका चुनाव टाउन मीटिंग में किया जाता है। इनका कार्यकाल एक वर्ष रहता है। ये टाउन मीटिंग के लिए एजेण्डा तैयार करते है तथा मतदाता सूची बनाने, सड़क रक्षा करने, निर्धनों को राहत देने जैसे कार्य करते है। इसमें एक टाउन क्लर्क भी होता हैं, जो अनेक कार्य सम्पन्न करता है।

टाउनशिप के अधिकारी

अमेरिका के 16 राज्यों में टाउनशिप पाई जाती है, जिसके कार्यो का प्रबन्ध एक या एक से अधिक अधिकारियों द्वारा किया जाता है। टाउनशिप के अधिकारी की सहायता के लिए एक निर्वाचित परामर्शदाता मण्डल होता है।

8.6.2 नगरीय स्तर पर विचारशील एवं कार्यपालिका शाखायें-

अमेरिका में नगरीय स्तर का स्थानीय प्रशासन चार प्रकार से सम्पन्न किया जाता है। कमजोर मेयर परिषद व्यवस्था, आयोग व्यवस्था, शक्तिशाली मेयर व्यवस्था एवं परिषद प्रबन्धक योजना। प्रशासन के इन सभी प्रारूपों में विचारशील एवं कार्यपालिका शाखाओं की स्थिति तथा उनका कार्यात्मक विस्तार भिन्न-भिन्न होता है। कमजोर मेयर तथा परिषद व्यवस्था में मेयर की शक्तियाँ सीमित होती है। इसमें अवरोध एवं संतुलन के सिद्धांत का पालन किया जाता है। परिषद समिति म्प्रवस्था के माध्यम से प्रशासन का सामान्य निरीक्षण करती है।

आयोग व्यवस्था के अन्तर्गत स्थानीय सरकार के समस्त कार्य एवं शक्तियाँ जनता दारा निर्वाचित प्रतिनिधि निकाय को सौंप दी जाती है। नीति एवं प्रशासन तथा व्यवस्थापन एवं क्रियान्विति का कार्य एक हाथों में सौंप दिया जाता है। इस व्यवस्था में मेयर की शक्तियाँ कम होती है। वह आयोग की मध्यस्थता करता है और नगर का नाम मात्र का अध्यक्ष होता है।

इसके अतिरिक्त तीसरा रूप शक्तिशाली मेयर से युक्त सरकार का है। इस व्यवस्था में मेयर को कार्यपालिका संबंधी तथा परिषद को व्यवस्थापन संबंधी शक्तियाँ सौंपी जाती हैं। इन दोनों के बीच कार्यो में सहयोगात्मक रवैया रहता है। मेयर दारा मुख्य कार्यपालिका की भूमिका निभाई जाती है, वह सभी विभागाध्यक्षों की नियुक्ति करता है और उन पर नियंत्रण रखता है। मेयर दारा वार्षिक बजट बनाया और प्रस्तुत किया जाता है।

परिषद का आकार सामान्यत: छोटा होता है, किन्तु सभी नगरों में एक जैसा नहीं है। सभी पार्षद निर्वाचित होते है। इस व्यवस्था में परिषद का मुख्य कार्य प्रस्ताव पास करना, बजट स्वीकार करना और मेयर पर प्रतिबन्ध लगाना है। कुछ नगरों में मेयर के अधीन एक व्यावसायिक प्रशासक भी नियुक्त किया जाता है, जो नगरीय प्रशासन के समन्वय और पर्यवेक्षण में मेयर की सहायता करता है।

नगरीय प्रशासन का एक और रूप है-परिषद प्रबन्धक योजना। यह व्यवस्था अमरीका में काफी लोकप्रिय है। इस व्यवस्था में व्यवस्थापक एवं प्रशासन पर नियंत्रण की शक्तियाँ परिषद के हाथों में होती ह तथा प्रशासनिक कार्य एक नगर प्रबंधक तथा उन विभागीय अध्यक्षों को सौंपा जाता है, जिन्हें स्वयं प्रबंधक नियुक्त करता है। इस व्यवस्था में परिषद का आकार छोटा होता है। नगर प्रबंधक के चयन का आधार योग्यता एवं प्रशिक्षण होता है। परिषद दारा प्रबंधक की नियुक्ति, पदच्युति, अध्यादेश या प्रस्ताव पास करना, वित्त पर नियंत्रण, प्रबंधक के कार्यो की जाँच जैसे कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। परिषद अपने में से ही मेयर का चुनाव करती है, जो कि परिषद की अध्यक्षता करता है। इस योजना में परिषद का स्थान महत्वपूर्ण है। वह प्रबंधक की नियुक्ति करती है और जब चाहे उसे पद से हटा सकती है। यह नीति पर नियंत्रण रखती है। वित्तीय क्षेत्र में परिषद को बजट स्वीकार करना, विनियोग बनाना, करों की मात्रा निश्चित करना, जैसे अनेक अधिकार प्राप्त है।

8.7 अमेरिका के स्थानीय सरकारों का वित्तीय प्रशासन

अमेरिका में स्थानीय सरकार के वित्तीय स्त्रोतों का वर्गीकरण सेन्सस के ब्यूरों दारा प्रस्तुत किया जाता है। सामान्यत: अमेरिकन स्थानीय संस्थाओं के राजस्व स्त्रोत, सामान्य

सम्पत्ति कर, व्यापार बिक्री एवं सेवाओं पर कर, भाड़ा कर, लाइसेंस बनाना, परमिट, व्यापार, गैर व्यापार एवं जुर्माना, धन एवं सम्पत्ति का प्रयोग, ब्याज, किराया एवं ..रॉयल्टी, अन्य अभिकरणों द्वारा राज्य के करों में आनुपातिक हिस्सेदारी, अनुदान, पेंशन, मूल्यांकन, दान एवं योगदान, लावारिस धन, सरकारी सेवा, उद्यमों के योगदान, सेवाओं का मूल्य आदि।

स्थानीय संस्थाऐं समय-समय पर अपने आर्थिक दायित्वों को पूरा करने के लिए ऋण प्राप्त करती हैं, लेकिन यह ऋणों के रूप में प्राप्त राशि राजस्व नहीं मानी जा सकती, क्योंकि जो धन उधार लिया जाता है, वह तो उसे वापस चुकाना होता है।

एण्डरसन तथा वाइउनर के अनुसार- सरकार की किसी भी ईकाई का राजस्व वह धन है, जो प्रतिवर्ष बहुत कुछ नियमित रूप से इसके राजकोष में आता है तथा जो इसके कार्य को नहीं बढ़ाता।

वर्तमान काल में स्थानीय प्रशासन का म्पय अत्यधिक बढ़ गया है। जनसंख्या में वृद्धि, स्थानीय सेवाओं की ष्यापकता एवं उनके स्तर में वृद्धि के कारण व्यय बढ़ गया है।

स्थानीय संस्थाओं को अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने हेतु पर्याप्त वित्त की आवश्यकता होती है। इसके अलावा जनसंख्या में भी निरंतर वृद्धि हो रही है, जिसके कारण नगर निकायों के कार्य उत्तरदायित्व एवं व्यय बहुत बढ़ गये है। नगर निकायों की आय के प्रमुख साधन इस प्रकार है-ये विभिन्न प्रकार के कर लगाते है एवं राज्य एवं संघ सरकार से विभिन्न योजनाओं के लिए आर्थिक सहायता भी प्राप्त होती है। करारोपण में नगर निकायों को राज्य के कानूनों के अनुसार ही चलना पड़ता है। करों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्पत्ति कर है। भूमि, मकान, मशीन, पशु, व्यक्तिगत सामान आदि सभी प्रकार की सम्पत्ति पर यह कर लगाया जा सकता है। घर के सामान एवं धार्मिक संस्थाओं की सम्पत्ति आदि पर यह कर नहीं लगता है। सम्पत्ति कर के अलावा निर्वाचन कर, आमोद-प्रमोद कर आदि के द्वारा भी नगर निकायों को आय होती है। जुर्माना, फीस, विभिन्न व्यवसायों को लाइसेंस देने, सार्वजनिक उपयोगिता के कार्यो के संचालन आदि से भी स्थानीय संस्थाओं को आय होती है।

अमेरिका में संघीय और राज्य सरकारें स्थानीय प्रशासनिक ईकाईयों को पर्याप्त मात्रा में आर्थिक सहायता देती है और बदले में उन पर पर्याप्त नियंत्रण रखती है। सहायता राशि को प्रयोग में लाने के लिए कुछ शर्तो का पालन करना आवश्यक होता है। राज्य सरकारें स्थानीय निकायों के सुधार के लिए और उनकी कार्यकुशलता के लिए उन पर नियंत्रण रखती है। अमेरीकी स्थानीय सरकार के राजस्व के बारे में जो समस्यायें उत्पन्न होती हैं, उनके विभिन्न कारण है, जैसे- स्थानीय सरकार के कार्यो में वृद्धि, घटता हुआ सम्पत्ति कर, राजस्व एकत्रित करने की व्यवस्था की प्रभावहीनता, राज्य की करों में हिस्सेदारी तथा सहायता अनुदान की नीतियों में निश्चितता का बढ़ता हुआ संघर्ष आदि। इन कारणों से अमेरिकी स्थानीय सरकारें पिछले कुछ वर्षो से राजस्व के नये स्त्रोत विकसित करने में पर्याप्त रूचि ले रही है।

8.8 संयुक्त राज्य अमेरिका में सेवीवर्गीय प्रशासन

अमेरिका में स्थानीय सरकार के सेवी वर्ग का प्रबन्ध एक क्रमिक विकास का परिणाम है। इस पर अनेक बाहरी परिस्थितियों और आन्तरिक दबावों का प्रभाव पड़ता है। अमेरिका में योग्यता एवं लूट प्रणाली, दोनों ही आधार प्रस्तावित है। अमेरिकी राज्यों की स्थानीय सेवा हेतु संबंधित राज्यों के कानून या चार्टर के तहत नागरिक सेवा आयोग बनाये गये है। पचास हजार से अधिक जनसंख्या वाले प्रत्येक नगर में एक नागरिक सेवा आयोग होता है। यह आयोग कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त रखा गया है। इसे प्रार्थियों की परीक्षा करने तथा योग्यता की सूची बनाने, अपीलों की पुनरीक्षण करने तथा लोक सेवकों की नियुक्ति एवं पदमुक्ति संबंधी सभी विषयों को नियंत्रित करने की शक्ति दी गयी।

अमेरिका में स्थानीय स्तर पर पद वर्गीकरण प्रगतिशील नहीं है। फिर भी समान कर्त्तव्यों और समान उत्तरदायित्वों के आधार पर विभिन्न वर्गो में समूहीकृत कर दिया जाता है। सामान्यत: कर्मचारी द्वारा किया गया सम्पर्क, नीति के विषय में उत्तरदायित्व की मात्रा, कार्य की दशायें, कर्मचारियों पर रखा जाने वाला निरीक्षण कार्य में निहित कठिनाईयाँ, पद की अपेक्षित योग्यताओं को वर्गीकरण करते समय ध्यान में रखा जाता है। समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को अपनाया गया है। वेतन योजना तैयार करने का दायित्व नगर परिषद का होता है। नगर परिषद अपने कर्मचारियों का ऐसा वेतन तय करना चाहती हैं, जिससे नगरपालिका सेवाओं में योग्य व्यक्तियों को आकर्षित किया जा सके तथा ध्यय और राजस्व के बीच संतुलन रखा जा सके। वेतन योजना को कुल बजट के साथ एकीकृत किया जाता है।

अमेरिका में स्थानीय सरकार उच्च अधिकारियों के वेतन पर विशेष ध्यान देती है, क्योंकि मध्य और निम्न स्तर के योग्य एवं प्रशिक्षित कर्मचारी तो आसानी से मिल जाते हैं, किन्तु उच्च अधिकारी नहीं मिलते।

भती की प्रक्रिया

अमेरिका में लोक सेवकों की भर्ती के लिए प्रत्याशी के अनुभव और योग्यताओं की जाँच की जाती है तथा व्यावहारिक परीक्षाऐं ली जाती है। इस तरह योग्य व्यक्ति को नियुक्ति दी जाती है। यहां योग्य उम्मीदवारों को आकर्षित करने के लिए आकर्षक पोस्टर लगाये जाते हैं। समाचार पत्रों एवं रेडियों प्रसारण का लाभ उठाया जाता है। स्कूलों से सम्पर्क किया जाता है, ताकि योग्य विद्यार्थियों की जानकारी ली जा सके। न्यूनतम योग्यता रखने वाले प्रत्याशी के प्रार्थना पत्र की जाँच कर परीक्षा हेतु आमंत्रण भेजा जाता है, जिसके अन्तर्गत सामान्य बुद्धि की जाँच हेतु मौखिक एवं लिखित परीक्षा आयोजित की जाती है। विशेष पदों हेतु कार्य कुशलता की परीक्षा ली जाती है। प्रत्याशी के बौद्धिक स्तर एवं नई बात सीखने की योग्यता और क्षमता को आँका जाता है। उसकी मेडिकल जाँच की जाती है। चारित्रिक जानकारी के पश्चात योग्य प्रत्याशियों की एक सूची तैयार की जाती है, जिसे संबंधित अधिकारी को सौंप दिया जाता है।

सेवीवर्ग का प्रशिक्षण

स्थानीय सरकार के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए समुचित प्रयास किये जाते हैं। परिवीक्षा काल के लिए जब नियुक्त्ति की जाती है, तो यह प्रयास किया जाता है कि पद संभालने से पूर्व प्रत्याशी को प्रशिक्षण दे दिया जाये। सेवा पूर्व प्रशिक्षण के रूप में विद्यालयों

एवं महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को स्थानीय सरकार के कार्यकलापों का ज्ञान कराया जाता है। स्थानीय कर्मचारियों को सेवाकालीन प्रशिक्षण भी दिया जाता है, जो दो दिन से लेकर दो माह तक चलता है। इस समय में कर्मचारी को नगर तथा विभाग के संगठन का आवश्यक विशेष ज्ञान दिया जाता है। परिवीक्षा काल में कर्मचारी को बारी-बारी से स्थानीय सरकार के विभिन्न पदों पर कार्य करने को कहा जाता है, ताकि वह सम्पूर्ण संगठन से परिचित हो सके।

कर्मचारियों का मूल्यांकन

स्थानीय कर्मचारियों की कार्य सम्पन्नाता का मूल्यांकन नियमित रूप से किया जाता है, जिससे पदोन्नति, स्थानान्तरण में सुविधा रहती है।

पदोन्नति एवं स्थानान्तरण

स्थानीय स्तर पर पदोन्नति के अवसरों की कमी है। पदोन्नति के लिए वरिष्ठता एवं योग्यता दोनों को आधार बनाया जाता है। कुछ नगरों में वरिष्ठता के सरल किन्तु कठोर नियमों को लागू किया जाता है। छोटे नगरों में उच्च अधिकारियों के व्यक्तिगत निर्णय को मापदण्ड माना जाता है।

अनुशासन की व्यवस्था

अनुशासनात्मक कार्यवाही के रूप में कर्मचारी को चेतावनी देने, निन्दा करने, पदोन्नति रोकने, निलम्बित करने जैसी कार्यवाही की जाती है। अमेरिका की विकसित परम्पराओं के अनुसार सामान्यत: विभागीय अधिकारी को अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की शक्ति सौंपी गई हैं, जिसका प्रयोग वह स्वेच्छा से करता है।

सेवानिवृति योजना

कर्मचारियों को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु उचित सेवानिवृति का महत्व है। पेंशन की उचित व्यवस्था ना होने पर योग्य व्यक्ति नगरपालिका सेवा को अपना आजीवन व्यवसाय नहीं बनाते। जिससे संगठनात्मक समस्यायें पैदा होती हो। इसलिए अमेरिका के अधिकांश नगरों में किसी न किसी रूप में सेवानिवृति व्यवस्था को अपना लिया जाता है, जिसका व्यय नगरपालिकाओं के चालू राजस्व में से किया जाता है।

कर्मचारियों के संघ

स्थानीय स्तर पर कर्मचारियों के संघों ने नगरपालिका प्रशासन को सुधारने में अच्छा कार्य किया है। निम्न स्तर के नगरपालिका के संगठन अनेक प्रकार से समस्याओं को दूर करके प्रशासनिक कार्यकुशलता को बढ़ावा देते हैं। नगरपालिका स्तर पर कई प्रकार के कर्मचारी संगठन हैं।

अमेरिका में कुछ महत्वपूर्ण स्थानीय सेवा संघ इस प्रकार है-अध्यापकों का अमेरीकी संघ, अग्रिशामकों का अन्तराष्ट्रीय संघ, राज्य काउण्टी एवं नगरपालिका कर्मचारियों का अमेरिकी संघ, राष्ट्रीय नागरिक सेवा संघ आदि। इन संघों द्वारा स्थानीय लोक सेवकों की विभिन्न समस्याऐं सुलझाने, उन्हें कार्य की उपयुक्त दशायें प्रदान करने तथा नियोक्ता के साथ सहयोगपूर्ण संबंध स्थापित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है।

8.9 अमेरिका में संघीय-स्थानीय सरकारों में संबंध

किसी भी देश का प्रशासन उस देश की राजधानी एवं राज्यों का प्रशासन उनकी राजधानियों से संचालित नहीं किया जा सकता है। केन्द्र एवं राज्य सरकारों के अतिरिक्त संघीय, स्थानीय शासन संस्थायें, प्रशासनिक संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। आधुनिक राज्यों का क्षेत्रफल बहुत बड़ा होता है और केन्द्रीय सरकार स्थानीय मामलों की समुचित देखभाल नहीं कर पाती। अत: विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त के आधार पर स्थानीय शासन का कार्य स्थानीय संस्थाओं को सौंपा जाता है।

8.9.1 संयुक्त राज्य अमेरिका में संघात्मक व्यवस्था

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान निर्मित, लिखित एवं कठोर है। यहां सरकार संघात्मक और अध्यक्षात्मक है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को सम्मान दिया जाता है। शक्ति-पृथक्करण, अवरोध एवं संतुलन के सिद्धान्त अपनाये गये है। अध्यक्षात्मक कार्यपालिका होने के कारण प्रशासन का राजनीतिक नेतृत्व दो कार्यपालिकाओं में नहीं है। राष्ट्रपति के नाम से प्रशासन संचालित होता है और वहीं वास्तविक सत्ताधारी है। अमेरिका विश्व का एक लोकतांत्रिक संघात्मक शासन व्यवस्था का राष्ट्र है। यहां की शासन व्यवस्था का स्वरूप संघात्मक है। वर्तमान में 50 राज्य है। यहां की संघात्मक व्यवस्था को आदर्श संघात्मक व्यवस्था का नाम दिया गया है। यहां की संघात्मक शासन की शक्तियाँ संविधान द्वारा निर्धारित की गई है। राष्ट्रीय महत्व के विषय संघीय सरकार को तथा स्थानीय महत्व के विषय राज्य सरकारों को सौंपे गये हैं। अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों के पास हैं।

1787 से अब तक जितने देशों में संघात्मक संविधान बने हैं, उन्हें अमेरिकी संविधान से प्रेरणा और पथ प्रदर्शन प्राप्त हुए हैं। किसी नागरिक को दो सरकारों के प्रति निष्ठा रखना आधुनिक संसार में अमेरिकी संघीय संविधान है। व्हीयर के अनुसार-अमेरिकी संविधान में कहीं पर भी 'संघीय' या 'संघ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। फिर भी इसे संघीय संविधान कहा जाता है और वर्तमान समय में सभी व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका को संघीय शासन का एक आदर्श उदाहरण मानते हैं।

अमेरिका में संघीय व्यवस्था के कारण

कोई देश विशेष परिस्थितियों और कारणोंवश एक विशिष्ट शासन व्यवस्था ग्रहण करता है। अमेरिका द्वारा संघीय व्यवस्था अपनाये जाने के निम्न कारण थे-

(i) संविधान के निर्माण से पूर्व अमेरिका महाद्वीप में अनेक उपनिवेश अलग-अलग राज्यों में विद्यमान थे, उनका एक साथ होना जरूरी था। अत: अमेरिकी संविधान निर्माताओं और अमेरिकी जनता ने यह उचित समझा कि संघीय व्यवस्था अपनाई जाये।

(ii) देश की क्षेत्रफल की विशालता को देखते हुए इस व्यवस्था को अपनाना आवश्यक समझा।

(iii) तत्कालीन राजनीतिक दल राष्ट्रीय व केन्द्रीयकृत नहीं थे और केन्द्र की अपेक्षा राज्यों को शक्तिशाली करने के पक्षधर थे। अत: यह स्वाभाविक था कि देश की शासन व्यवस्था संघात्मक हो।

(iv) संविधान निर्माता व्यक्तिगत अधिकारों और सम्पत्ति के प्रबल समर्थक थे और संघात्मक व्यवस्था इनकी रक्षा का उत्तम साधन था, क्योंकि यह राष्ट्रीय और राज्य सरकारों के बीच शक्ति विभाजन द्वारा दोहरी सुरक्षा प्रदान करता है।

उपरोक्त सभी कारणों से अमेरिकी जनता ने संघात्मक शासन व्यवस्था को उचित समझा और यह उपरोक्त सफलता प्राप्त करती गई। अमेरिका में संघ एवं स्थानीय सरकारों के बीच संबंधों की दिशा में महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां पर जो संघ बना है, उसमें आज भी राज्यों की स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय एकता का सामंजस्य विद्यमान है।

संघात्मक शासन व्यवस्था में सम्प्रभूता की अभिव्यक्ति केन्द्रीय सरकार और ईकाई सरकारों द्वारा होती है। यहां दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करने के लिए स्वतंत्र है।

अमेरिकी संविधान एक सतत् संघीय संविधान है, जिसका संघात्मक रूप समाप्त नहीं किया जा सकता। किसी राज्य के अस्तित्व को मिटाया नहीं जा सकता। दोनों सरकारों के अपने पृथक शासन तंत्र हैं। केन्द्रीय और राज्य सरकारें अपने अस्तित्व के लिए एक दूसरे पर नहीं, अपितु संविधान पर आश्रित है।

केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच शक्ति विभाजन की व्यवस्था है। शक्ति विभाजन में गणना व अवशेष के सिद्धान्त का उपयोग किया गया है, जिसमें केन्द्रीय और ईकाई सरकारों में से किसी एक की शक्तियों की गणना कर उन्हें निश्चित कर दिया जाता है और अवशिष्ट शक्तियों को विभिन्न राज्यों को सौंप दिया गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के संघीय प्रशासन में सर्वोच्च न्यायालय का बहुत अधिक महत्व है। देश की संघात्मक व्यवस्था का संचालन करने में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका महत्वपूर्ण है। इस सबके अलावा अमेरिकी संघ की ईकाइयों को संविधान संशोधन संबंधी कार्य के विषय में पूरी-पूरी शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि अमरीकी संविधान के द्वारा न केवल एक संघ राज्य में वरन् व्हीयर के शब्दों में एक 'आदर्श संघ' की स्थापना की गई है। स्ट्रांग के द्वारा भी संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान को विश्व का सर्वाधिक पूर्ण संघात्मक विधान कहा गया है।

8.10 संघीय सरकार का स्थानीय सरकारों से संबंध, पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण

अमेरिका में स्थानीय सरकार के साथ राज्य सरकार के संबंधों का एक इतिहास रहा है। यह समय और परिस्थिति के अनुसार बदलता रहा है। राज्य एवं स्थानीय सरकार के बीच आपसी संबंध होना स्वाभाविक है। प्रत्येक स्थानीय सरकार संबंधित राज्य द्वारा स्थापित की जाती है' तथा वह राज्य सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है। अमेरिकी संविधान द्वारा राज्यों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, वे स्थानीय सरकारों पर भी लागू होते हैं।

विधायी नियंत्रण

अमेरिकी नगरों की स्थिति राज्य व्यवस्थापिका के एजेन्टों के समान है। व्यवस्थापिका द्वारा नगरों की स्थापना की जाती है। नियमानुसार व्यवस्थापिका अपनी इस शक्ति को हस्तान्तरित नहीं कर सकती। नगरों को नियंत्रित करने की व्यवस्थापिका की शक्ति असीमित

होती है। स्थानीय सरकार के चार्टर के विषय में व्यवस्थापिका विचार करती है तथा जरूरत के अनुसार उसमें परिवर्तन कर देती है। स्थानीय सरकार के विषय में राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा समय-समय पर व्यवस्थापन किया जाता है, जिसकी वजह से व्यवस्थापिका का कार्यभार बढ़ जाता है। अत: कर, ऋण, बजट तथा सेवी वर्ग आदि विषयों पर सामान्य कानून बनाने का प्रयास किया जाता है।

प्रशासनिक नियंत्रण

स्थानीय सरकार पर विभिन्न प्रकार से प्रशासकीय नियंत्रण स्थापित किया जाता है। प्रशासकीय नियंत्रण का रूप एवं मात्रा प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न है। कुछ राज्यों में अप्रत्यक्ष प्रशासनिक नियंत्रण है। इसके लिए प्रशासक परामर्श एवं सूचना प्रदान करते है। प्रतिवेदनों की मांग करते है। किये गये कार्यो का मूल्यांकन करते हैं तथा प्रशासकीय पर्यवेक्षण करते है। प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियंत्रण के अन्तर्गत यह व्यवस्था की जाती है कि कोई स्थानीय कार्य करने से पहले राज्य से अनुमति ली जाये।

राज्य द्वारा स्थानीय अधिकारियों को नियुक्त एवं पदमुक्त किया जाये, ऐसे आदेश प्रसारित किये जाये, जिनको मानने के लिए स्थानीय सरकार बाध्य हो। स्थानीय स्तर पर राज्य के नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण को बढ़ावा देने हेतु ही प्रशासकीय नियंत्रण स्थापित किया गया है।

संघ सरकार दारा स्थानीय सरकारों पर सकारात्मक नियंत्रण स्थापित करना चाहिए। चूँकि स्थानीय सरकार के अधिकारियों का कार्यकाल एवं अनुभव कम होता है। अत: राज्य सरकार को उन्हें समय-समय पर सूचनाऐं एवं परामर्श प्रदान करना चाहिए।

8.11 सारांश

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भागीदारी निभाने के बाद भी स्थानीय सरकार समस्याओं से पूर्णत: मुक्त नहीं हो सकी है। स्थानीय सरकार के सुचारू संचालन के लिए समय-समय पर परिवर्तन भी किये जाते है। संयुक्त राज्य अमेरिका के नगरों का प्रशासनिक इतिहास अपव्यय, भ्रष्टाचार एवं कुप्रबंध से प्रभावित रहा है। स्थानीय सरकारों के संचालन में अनेक संगठनात्मक एवं व्यावहारिक समस्यायें आती हैं और उनके समाधान के लिए सुधार योजनायें प्रस्तुत की जाती है। स्थानीय शासन को कार्यकुशल एवं उपयोगी बनाने हेतु आवश्यकता है, उसे अधिक शक्तियाँ प्रदान की जायें तथा इसके साथ-साथ प्रभावी कार्य हेतु इन पर समुचित नियंत्रण की भी व्यवस्था की जाये। स्थानीय सरकार अधिक मानवीय, उत्तरदायी एवं अधिक सेवायें प्रदान करने वाली होनी चाहिए।

स्थानीय एवं राज्य सरकारों के बीच सहयलोत्मक संबंधों का होना आवश्यक है।

8.12 अभ्यास प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थानीय शासन की विशेषताएं बताइये।
2. अमेरिका में संघीय और स्थानीय सरकारों के बीच संबंधों को स्पष्ट कीजिये।

8.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'माहेसवरी, एस.आर. मेजन सिविल सिस्टम इन द वर्ल्ड, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आग्रा, 2002
2. त्रिलोकनाथ चतुर्वेदी, तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2007
3. लक्ष्मीकान्त एम. लोक प्रशासन, टाटा मैकग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी लि., नई दिल्ली, 2006
4. कटारिया, सुरेन्द्र, तुलनात्मक लोक प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2006

इकाई-9

विकास की अभिकर्ता (पंचायती राज संस्थाएं) और स्थानीय स्वायत्त, सरकार (पंचायतों) के रूप में भारत में स्थानीय सरकार

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 पंचायती राज का एतिहासिक परिप्रेक्ष्य

9.3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम

9.4 राष्ट्रीय प्रसार सेवाएं

9.5 बलवंत राय मेहता समिति प्रतिवेदन (1957)

9.6 अशोक मेहता समिति प्रतिवेदन (1978)

9.7 सर्वोदयी विचारक और पंचायती राज

9.8 दलविहीन प्रजातांत्रिक व्यवस्था

9.9 सर्वोदयी विचारकों के अनुसार पंचायती राज के कार्य

9.10 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा

9.11 पंचायती राज संस्थाओं के कार्यो के सम्बन्ध में बलवंत राय मेहता समिति के विचार

9.12 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुसार पंचायती राज के कार्य

9.13 सारांश

9.14 शब्दावली

9.15 अभ्यास प्रश्न

9.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0. उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को पंचायती राज संस्थाओं के एतिहासिक परिप्रेक्ष्य, इनकी विकास यात्रा, सर्वोदयी विचारकों के पंचायती राज के संबंध में विचार, पंचायती राज संस्थाओं के कार्य, अवधारणा, और पंचायती राज के कार्यो के विषय में बलवंत राय मेहता समिति के विचारों से अवगत करवाना है। इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप

1. पंचायती राज के इतिहास का वर्णन कर सकेंगे,
2. पंचायती राज के विषय में सर्वोदयी विचारकों के विचारों की व्याख्या करने में सक्षम हो जाएंगे,
3. ग्रामीण विकास और प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा और बलवंत राय मेहता तथा अशोक मेहता के पंचायती राज संबंधी योगदान का सविस्तार वर्णन कर पाएंगे।

9.1 प्रस्तावना

भारत देश भौगोलिक दृष्टि से अत्यधिक विशाल होने के साथ-साथ संसार का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक देश है। इस देश की अपनी अनूठी विशेषता है कि यहां पंचायती राज व्यवस्था को अपना कर प्रत्यक्ष प्रजातंत्र को साकार रूप दिया है। वास्तविकता में देखा जाए तो पंचायती राज भारतीय प्रजातंत्र में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की आधारशिला है। भारत के आसपास चारों और तानाशाही शासन और सैनिक शासन विद्यमान है। इन सबके बीच में भारत में पंचायती राज व्यवस्था का अस्तित्व अद्भुत और अनोखा ही कहा जाएगा। ग्राम सभा और ग्राम पंचायत का अस्तित्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। लोक प्रशासन के विद्यार्थियों के लिए पंचायती राज की जानकारी उपयोगी होने के साथ-साथ आवश्यक जान पड़ती है, क्योंकि इन्हीं संस्थाओं के माध्यम से प्रजातंत्र को पुष्पित व पल्लवित किया जा सकता है।

इस अध्याय में सर्वप्रथम पंचायती राज के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का वर्णन है, इसी के अन्तर्गत बलवंत राय मेहता समिति और अशोक मेहता समिति के विचारों की जानकारी प्रस्तुत की गई। पंचायती राज का कोई भी विचार सर्वोदयी दर्शन की जानकारी के बिना अधूरा ही है। इस कमी की पूर्ति का इस पाठ में विनम्र प्रयास किया गया है। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा की यहां व्याख्या की गई है। पंचायती राज के कार्यो के विषय में बलवंत राय मेहता के विचारों से पाठकों को अवगत कराया गया है।

9.2 पंचायती राज का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारतवर्ष की अधिकांश जनसंख्या सदैव ही गांवों में निवास करती रही है। आज भी लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या भारत के ग्रामों में ही निवास करती है। ग्रामीण स्थानीय संस्थाएं भारतीय लोक प्रशासन का अभिन्न अंग रही हैं। ऐतिहासिक स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि ग्राम पंचायतें अति प्राचीन काल से ही यहां विद्यमान रही है। 'ऋग्वेद, वाल्मीकि रामायण और महाभारत में 'पंच' और 'पंचायत' शब्दों का उल्लेख है। समाज के पाँच मुख्य व्यक्तियों की संस्था होने के कारण यह पंचायत कहलाती थी। कालान्तर में इसकी सदस्य संख्या में अन्तर आ गया। ग्यारहवी शताब्दी में 'नीतिसार' में शुक्राचार्य ने इनका उल्लेख किया है। बौद्धकाल में भारत में अनेक छोटे-छोटे गणराज्य विद्यमान थे। यह माना जाता कि इस काल में इन संस्थाओं का महत्व अत्यधिक बढ़ गया था। जातक कथाओं से इस बात की पुष्टि होती है। ऐतिहासिक स्रोत इस बात के गवाह हैं कि मौर्यकाल में देश में एक शक्तिशाली सत्ता की स्थापना हो चुकी थी, लेकिन गांवों की स्वायत्ता अप्रभावित रही है। उस समय भी पंचायतों की शक्तियाँ और क्रियाकलाप क्यों के त्यों बने रहे।

मध्यकाल में मुगल शासकों ने भारतीय लोक प्रशासन में भारी फेरबदल किया था, लेकिन यह सम्पूर्ण फेरबदल राज्य स्तरीय प्रशासन और नगरीय स्थानीय प्रशासन तक ही सीमित रहा। जदुनाथ सरकार ने भारतीय इतिहास का वर्णन करते हुए कहा कि 'मुगल लोग केवल नगरीय व्यक्ति होकर रह गए थे' उन्होंने ग्रामीण स्थानीय प्रशासन को नहीं छूआ, वह जैसा पहले चल रहा था, यथावत वैसा ही चलता रहा। यह अवश्य है कि जाति पंचायतें इस काल की देन हैं।

अंग्रेजी शासन काल में भारतीय लोक प्रशासन में भारी फेरबदल किया गया। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे पंचायतों के समस्त कृत्य अपने अधिकार में ले लिये। नवीन न्यायिक व्यवस्था ने पंचायतों के न्यायिक कृत्य छीन लिये। अंग्रेजों ने अपने शासन के प्रारम्भिक काल में योजनाबद्ध तरीके से पंचायतों को नष्ट करने का प्रयत्न किया। बाद के शासनकाल में अंग्रेजों ने पंचायतों के पुनरजीवन के प्रयत्न किये। पुनरजीवन के प्रयासों के पीछे दो कारण थे-पहला तो यह कि बाढ़, अकाल, महामारी जैसी आपात स्थिति से निपटते समय उन्हें केन्द्रीय शासन और ग्रामजनों के मध्य एक कड़ी की नितान्त आवश्यकता महसूस होती थी, जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने पंचायतों को बेहतर समझा। दूसरा कारण यह था कि गांधी जैसे स्वतंत्रता संग्राम में जुटे लोगों द्वारा ग्रामराज्य की अवधारणा पर बल दिया। ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की अंग्रेज स्वयं स्थापना करके स्वतंत्रता के संग्राम में जुटे प्रहरियों के महत्व को समाप्त करना चाहते थे। अत: इन्हीं सब बातों के फलस्वरूप अंग्रेजों ने बाद के शासनकाल में पंचायतों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण पर ध्यान केन्द्रित किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में ग्राम पंचायतों के लिए प्रावधान किया गया। चालीसवें अनुच्छेद के अनुसार: "राज्य तथा उनको इतनी शक्तियाँ एवं सत्ता सौंपेगा कि उनको स्वायत्त सरकार की इकाईयों के रूप में कार्य करने के योग्य बना सकें।" वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था पर भारत में आयोजित दो कार्यक्रमों, यथा सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं का बहुत बड़ा योगदान है, इस कारण से इन कार्यक्रमों पर सविस्तार चर्चा करना समीचीन होगा।

9.3 सामुदायिक विकास कार्यक्रम

भारत में नीति निर्माताओं की यह मान्यता थी कि वर्षो तक रहे विदेशी शासन के फलस्वरूप भारतीय ग्रामीण जन अपनी पहल की भावना (Initiative) खो चुके थे और हर छोटी व बड़ी आवश्यकता की पूर्ति के लिए सरकार की ओर ताकते थे। उनकी मनोदशा बच्चों वाली हो चली थी। जिस प्रकार बच्चे शतप्रतिशत अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए माता-पिता पर निर्भर रहते हैं उसी प्रकार ग्रामीण जन सरकार पर निर्भर रहते थे। 'गूंगे-बहरे पशुओं' की भांति उनका व्यवहार हो चला था। नेतृत्व की भावना और पहल करने का माद्धा ही नहीं रहा था। जिस प्रकार एक भेड़ जिधर चले दे उसी तरफ अन्य भेड़ें बिना सोचे-समझे चल देती हैं ऐसी उनकी मनोवृाए बन गई थी। अपनी स्थानीय छोटी-मोटी समस्याओं पर गंभीरता से सोचने और उसे दूर करने की प्रवृत्ति का लोप हो गया था।

ग्रामीणजन के मानसिक परिवर्तन के उद्देश्य से नीति निर्माताओं ने 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' को अपनाने का निर्णय लिया। भारत में इसका शुभारम्भ 2 अक्टूबर, 1952 को किया गया। इसके तहत प्रथम चरण में 55 विकास खण्डों की स्थापना की गई। आगे चलकर इसे सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया। इस कार्यक्रम का मूल दर्शन था "From Government motivated self-help to motivated self help" अर्थात् प्रारम्भिक दौर में सरकार की पहल से विकास के लिए प्रयत्न किये जाएंगे और शनै: शनै: ग्रामीण जनता में जैसे-जैसे पहल करने की प्रवत्ति विकसित होगी तब सरकारी पहल धीरे-धीरे कम होते-होते समाप्त होकर सारे

कार्य ग्रामीण जनता की पहल और प्रेरणा से सम्पन्न होने लग जाएंगे। एक प्रकार से सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण जनता में मानसिक परिवर्तन लाने के लिए प्रारम्भ किया गया था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुसार: "सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण जीवन के सम्पूर्ण स्तर को ऊँचा उठाने हेतु स्थानीय मानवशक्ति को क्रियाशील बनाने का एक संयुक्त और समन्वित प्रयत्न है।" समाजशास्त्री ए. आरदेसाई के अनुसार- "सामुदायिक विकास योजना एक ऐसी प्रणाली है जिसके कराण पंचवर्षीय योजना ग्रामों के सामाजिक और आर्थिक जीवन के रूपान्तरण की प्रक्रिया प्रारम्भ करना चाहती है। "भारत सरकार के प्रकाशन" इण्डिया 1959" में लिखा था- "सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्वयं ग्रामवासियों चारा आयोजित एवं कार्यान्वित किया हुआ एक अनुदान प्राप्त कार्यक्रम है जिसमें सरकार तो केवल तकनीकी मार्गदर्शन और वित्तीय सहायता प्रदान करती है।"

कृषि विकास संबंधी कार्य, यातायात एवं संचार के साधनों का विकास, स्वास्थ्य, सफाई एवं चिकित्सा संबंधी कार्य, शिक्षा प्रसार, कुटीर उद्योग एवं बेकारी निवारण, कारीगरों, किसानों, पंचों एवं ग्रामीण नेताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था, ग्रामवासियों के लिए सस्ते और अच्छे मकानों की व्यवस्था, और सामाजिक कल्याण सामुदायिक विकास कार्यक्रम का हिस्सा बने।

9.4 राष्ट्रीय प्रसार सेवाएं

"सामुदायिक परियोजनाओं के साथ-साथ उनके एक वर्ष उपरान्त 2 अक्टूबर 1953 को पुननिर्माण का एक अन्य कार्यक्रम आरम्भ किया गया था, जिसे 'राष्ट्रीय प्रसार सेवा' का नाम दिया गया।" इन सेवाओं की कल्पना अधिक अन्न उपजाओ जाँच समिति' की संस्तूति के आधार पर की गई थी। एक प्रकार से सामुदायिक विकास कार्यक्रम को प्रभावी तरीके से लागू करने के उद्देश्य से कुछ प्रशासनिक फेरबदल करके ढाचे का निर्माण किया और उसे राष्ट्रीय प्रसार सेवा नाम दिया गया। इसके अन्तर्गत प्रत्येक खण्ड स्तर पर लगभग एक दर्जन विषय विशेषज्ञ उपलब्ध कराए गए जिन्हें प्रसार तकनीक की सहायता से विकास को स्थाई रूप प्रदान करने का दायित्व सौंपा गया। इस विशेषज्ञ टीम का मुखिया खण्ड विकास अधिकारी को बनाया गया।

"सामुदायिक विकास प्रशासन का उएरदायित्व नियमित नौकरशाही को ही सौंपा गया था, किन्तु विद्यमान संगठनात्मक ढांचे में हेर-फेर कर दिया गया था। हेर-फेर करने में ध्यान इस बात का रखा गया था कि ग्रामीण पुनर्निर्माण के एकीकृत कार्यक्रम पर जो बल दिया गया था वह उसमें प्रतिबिम्बित हो सके और कार्य-नीति को समुचित महत्व दिया जा सके। "खण्ड विकास अधिकारी, विभिन्न विषयों से जुड़े हुए प्रसार अधिकारी और ग्राम-स्तरीय कार्यकर्ता, जिसे आगे चलकर ग्राम सेवक के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा, इन दोनों कार्यक्रमों की नवीनता माने जाते हैं।

9.5 बलवंत राय मेहता समिति प्रतिवेदन- 1957

सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय प्रसार सेवाओं के फलस्वरूप कुछ भौतिक उपलब्धियाँ अवश्य प्राप्त हुई, किन्तु ग्रामीण लोगों के मानसिक सोच में कोई परिवर्तन नजर नहीं आया। ग्रामीणजन परतंत्र प्रशासन और स्वतंत्र भारत के प्रशासन में कोई अन्तर महसूस नहीं कर सके। नौकरशाही के हाथों में कार्यक्रमों की बागडोर के कारण जनता में नेतृत्व और हुपीलकदमी की भावना लेशमात्र भी नहीं बढ़ सकी। इन कार्यक्रमों की असफलता के कारण विरोधी दलों द्वारा ही आलोचना नहीं की गई वरन् स्वयं कांग्रेस के नेतागण भी इसकी कमियों के कारण इन कार्यक्रमों को समाप्त करने पर जोर डालने लगे। सरकारी, अर्द्धसरकारी और निजी संगठनों द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों में इन कार्यक्रमों की खामियों का खुलासा किया गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के कारण सरकार द्वारा संसद के भीतर और संसद के बाहर तीखी आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। इन आलोचनाओं के परिणामस्वरूप आयोजन परियोजना समिति द्वारा बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में सामुदायिक परियोजनाओं और राष्ट्रीय प्रसार सेवा के अध्ययन दल की नियुक्ति वर्ष 1957 में की गई। इस दल को आमतौर पर बलवंत राय मेहता समिति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस समिति ने अपना अध्ययन प्रतिवेदन दिसम्बर 1957 में प्रस्तुत किया जिसमें निम्न प्रमुख खामियों को उजागर किया: -

(1) सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय प्रसार सेवा दोनों ही योजनाएं ग्रामीण जनता में पहल की भावना जाग्रत करने में विफल रही थी।

(2) पंचायत स्तर के ऊपर की स्थानीय निकायों ने सामुदायिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में कोई उत्साह नहीं दिखाया था।और

(3) पंचायतों ने भी सामुदायिक विकास कार्यक्रम में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभायी थी।

बलवंत राय मेहता समिति की यह मान्यता थी कि इन दोनों योजनाओं में जनता की सक्रीय भागीदारी नहीं होने के कारण ये विफल रही हैं। समिति का कहना था कि जब तक ग्रामीण जनता को सीधे या उनके प्रतिनिधियों के माध्यम से इन कार्यक्रमों के निर्माण और उनके क्रियान्वयन में सम्मिलित नहीं किया जाता तब तक ग्रामीण जनता में पहल की भावना जागृत नहीं हो सकती। इन कार्यक्रमों से जनता में अपनत्व की भावना तभी जागृत हो सकेगी जब उनकी सक्रयि भागीदारी सुनिश्चित की जाएगी। इस समिति की राय थी कि यह सुनिश्चित करने के लिए 'प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण' (Democrative Decentralistion) किया जाना अतिआवश्यक है।

बलवंत राय मेहता समिति के मत में प्रजातंत्र की परिकल्पना यह है कि केवल ऊपर से ही शासन न चलाया जाये बल्कि स्थानीय प्रतिभाओं का विकास किया जाये। यह तभी संभव है जबकि वे (स्थानीय लोग) सक्रियता से सरकार के कार्यो में भाग ले सकें। इसे ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण कहते हैं। स्पष्ट है कि जिस राज्य में सत्ता का जितना अधिक विस्तार होगा वह उतना ही अधिक लोकतांत्रिक विस्तार होगा, वह उतना ही अधिक लोकतांत्रिक लोक कल्याणकारी राज्य होगा। सर्वसाधारण के पास ज्यादा अधिकार आयेंगे तब वे अपना कर्तव्य पालन भी पूर्ण निष्ठा से करेंगे। विकेन्द्रित व्यवस्था में जनता अपने विकास एवं कल्याण सम्बन्धी कार्यो के

लिए शासन पर निर्भर न रहकर स्वयं अपने साधनों से कार्य पूरा करने के लिए तत्पर रहेगी, क्योंकि उसके पास सत्ता होगी, अधिकार होंगे और उनके उपयोग करने की शक्ति भी उनके पास होगी। अत: विकेन्द्रीकरण और प्रजातंत्र में घनिस संबंध हैं तथा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

बलवंत राय मेहता समिति ने सुझाव दिया कि शीघ्र ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण किया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतांत्रिक आधार पर प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना करके विकास की समस्त बागडोर उन्हें साँपना अति आवश्यक है। इस समिति का यह कहना था कि इन संस्थाओं का आधार वैधानिक हो, ये संस्थाएं वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित हों, और उनके पास समुचित कार्यपालिका शक्तियाँ और पर्याप्त स्रोत हों। सरकार द्वारा इन संस्थाओं पर अत्यधिक नियन्त्रण नहीं रखा जाना चाहिए। इन्हें समुचित परामर्श तथा मार्गदर्शन मिलता रहना चाहिए ताकि ये गलतियाँ नहीं करें। ये प्रतिनिधि संस्थाएं स्थानीय विकास के लिए स्थानीय जनता की इच्छा-अभिव्यक्ति के यन्त्र का कार्य करें।

बलवंत राय मेहता समिति ने इन संस्थाओं की स्थापना के लिए एक प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद के गठन का सुझाव दिया है। इस समिति की राय थी कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सर्वाधिक लाभ तभी मिलेगा जब तीनों ही स्तरों पर पंचायतीराज संस्थाओं का गठन कर एक साथ कार्य प्रारम्भ किया जाए। इस समिति की मान्यता थी कि सम्पूर्ण ग्रामीण विकास के कार्य इन प्रजातांत्रिक संस्थाओं को सौंपा जाना श्रेयस्कर रहेगा। समिति का कहना था कि इन संस्थाओं में से प्रत्यक्ष निर्वाचन केवल ग्राम पंचायतों का किया जाए और पंचायत समिति और जिला परिषद का गठन अप्रत्यक्ष प्रणाली से किया जाए। पंचायत समिति को प्रमुख विकास की एजेंसी मानते हुए इसे अधिक से अधिक वित्तीय साधन और सहायता, अधिक कार्मिक वर्ग और ज्यादा तकनीकी सहायता उपलब्ध करायी जाये। जिला परिषद का कार्य मात्र जिले की ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों और सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं में सहयोग, समन्वय, पर्यवेक्षण और नियंत्रण का दायित्व रहे।

जिला स्तर तक के इस स्थानीय क्षेत्र में लोकतंत्र को पहुंचाकर वहां के लोगों में स्थानीय अभिरूचि व लगन पैदा किये जाने के सष्कध में प्रतिवेदन में कहा गया कि जब तक हम ऐसी प्रतिनिधात्मक व लोकतंत्रीय संस्था को ढूँढ नहीं निकालते या उसका निर्माण नहीं कर लेते जो यह देखने के लिए कि स्थानीय बातों पर व्य्य होने वाला धन स्थानीय आवश्यकताओं, अभिरूचि, स्थानीय देख-रेख तथा स्थानीय सतर्कता उपलब्ध कर सके, जब तक हम उसमे पर्याप्त शक्ति निहित नहीं करते और उसके लिए आवश्यक वित्त की व्यवस्था नहीं करते, तब तक हम विकास के क्षेत्र में कभी भी न तो स्थानीय अभिरूचि उत्पन्न कर सकेंगे और न स्थानीय उत्साह ही उत्तेजित कर सकेंगे।

राष्ट्रीय विकास परिषद् ने बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों को सन 1958 में स्वीकार कर लिया था। अगस्त 1958 में आंध्र प्रदेश में कुछ क्षेत्रों में इस योजना को परीक्षण के तौर पर प्रारम्भ किया। इस परीक्षण के नतीजे सामने आये भी नहीं थे कि राजस्थान राज्य

में 2 अक्टूबर 1959 को नागौर मे द्वीप प्रज्वलित कर इस त्रि-स्तरीय व्यवस्था का श्रीगणेश किया गया। थोड़े समय पश्चात आंध्र प्रदेश में भी पूरे राज्य में इसे 1959 में ही लागू कर दिया। अन्य राज्यों में यह व्यवस्था कुछ या अधिक परिवर्तन के साथ 1960-1961 में शुरू की गयी। राजस्थान और आध प्रदेश में लगभग इस त्रि-स्तरीय योजना को उसी रूप में प्रभावी बनाया गया जिस रूप में बलवंत राय मेहता समिति ने सुझाया था।

आगे चल कर राज्य सरकारों दारा अपने-अपने राज्य में पंचायती राज व्यवस्था का अध्ययन करने के उद्देश्य से समय-समय पर कुछ समितियों की नियुक्ति की गई। संघीय सरकार द्वारा भी वित्तीय प्रशासन, इनकी निर्वाचन व्यवस्था, ग्राम सभा आदि के अध्ययन के उद्देश्य से पृथक-पृथक समितियों का गठन किया गया। जनता पार्टी के सत्ता में आने पर संघीय स्तर पर 1977 में अशोक मेहता समिति का गठन किया गया, जिसने अपना प्रतिवेदन अगस्त 1978 में सरकार को प्रस्तुत किया। इस समिति द्वारा सम्पूर्ण पंचायती राज व्यवस्था के अध्ययन के पश्चात् प्रस्तुत प्रतिवेदन की महत्वपूर्ण बातों की यहां जानकारी प्राप्त करना उचित रहेगा।

9.6 अशोक मेहता प्रवन्ध समिति प्रतिवेदन (1978)

इस समिति ने 'प्रजातांत्रिक प्रबन्ध की विचाराधारा' का प्रतिपादन किया। इसके प्रतिवेदन में यह स्वीकार किया गया कि बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ विकास अवश्य हुआ है, लेकिन अभी भी विकास के और उच्च सोपान पर प्रगति के उद्देश्य से बहुत कुछ किया जाना शेष है। बलवंत राय मेहता समिति का विकेन्द्रीकरण की पद्धति से आगे बढ़ते हुए 'प्रजातांत्रिक प्रबंध व्यवस्था' (Democratic Management System) को अंगीकार करना है। बलवंत राय मेहता समिति दारा सुझाई त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के स्थान पर अशोक मेहता समिति ने द्वि-स्तरीय व्यवस्था की पुरजोर सिफारिश की। अशोक मेहता समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह स्वीकार किया कि 'पंचायती राज की कहानी उतार-चढ़ावों की कहानी है जो तीन चरणों से होकर गुजरी है। सन् 1958 से 1964 तक विकास का चरण, 1965 से 1969 तक ठहराव का चरण और 1969 से 1977 तक पतन का चरण।

अशोक मेहता समिति का मानना था कि- आमतौर पर पंचायती राज संस्थाओं का काम निराशाजनक रहा है स्टैर उसके पीछे कमियाँ और विफलताएं रही हैं। इन संस्थाओं में समाज के आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से दबदबे वाले लोग हावी रहे हैं जिसके कारण कमजोर वर्गो तक लाभ नहीं पहुंच पाया है। राजनीतिक गुटबंदी के कारण भी उनके कामकाज में विकृति आई है और विकास कार्य अवरूद्ध या कमजोर हुआ है। भ्रष्टाचार अकुशलता, नियमों की अवहेलना, दैनिक कामकाज में राजनीतिक हस्तक्षेप, गुटबंदी, स्वार्थ-प्रेरित कार्यवाही, सेवा भावना की जगह अधिकारों पर कब्जा इन तमाम कारणों से औसत ग्रामीण के लिए पंचायती राज की उपयोगिता सीमित हो कर रह गई हैं।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज की त्रि-स्तरीय के स्थान पर द्वि-स्तरीय मॉडल अपनाने की वकालत की। समिति की मान्यता थी कि पंचायत समितियां समुचित रूप से प्रभावशाली नहीं हैं, इस कारण इनके स्थान पर मण्डल पंचायतों का गठन करना श्रेयस्कर रहेगा। मण्डल पंचायतें एक प्रकार से पंचायत समिति और जिला परिषद के बीच की संस्था है। इस प्रकार अशोक मेहता समिति की यह मान्यता थी कि मण्डल पंचायतें और जिला परिषदों का गठन करके विकास कार्यो को दुतगति प्रदान की जा सकती हैं। इस समिति ने ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रबंधन पर जोर देते हुए कहा कि केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों के वितरण की वर्तमान योजना पर पृथक से विस्तृत विचार किया जाना उचित होगा। महाराष्ट्र के पंचायती राज की सफलता से प्रभावित होकर अशोक मेहता समिति ने 'महाराष्ट्र मॉडल' की तरफ झुकाव दर्शाया है। दूसरी ओर इसे पंचायत समिति के स्थान पर मण्डल पंचायत अधिक उपयुक्त जान पड़ी। पंजाब के 'डवलपमेंट क्लस्टर्स' (Development Clusters) की उपलब्धियों से प्रभावित होकर इसे स्वीकार करने की बात कही है। इस समिति ने यह माना कि भारतीय किसान पहले की तुलना में समृद्ध हुए हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में काफी मात्रा में विकास हुआ है। विकास की द्रुतगति प्राप्त करने के लिए इस समिति ने कहा कि हमें एक ऐसे मण्डल केन्द्र की स्थापना करना है जहां किसानों को खाद, बीज, ट्रैक्टर के कलपुर्जे तथा किसानों के मतलब के अन्य साधन एक ही जगह मिलने लगे। इससे किसानों को बहुत सहायता होगी। किसानों को एक-एक चीज के लिए इधर-उधर भटकना नही पड़ेगा। इस समिति ने जहां पंचायत समिति की भूमिका को नकारा है वही ग्रामीण स्तर पर 'प्रबंध-व्यवस्था' विकसित करने पर जोर दिया है।

एक और महत्वपूर्ण सिफारिश अशोक मेहता समिति की थी कि पंचायती राज संस्थाओं में राजनैतिक दलों को सक्रिय भागीदारिता का निर्वाह करना चाहिए। यह पहला सरकारी दस्तावेज था जिसने दलविहीन व्यवस्था के स्थान पर स्पष्ट तौर पर दलीय भागीदारी पर जोर दिया। सिद्धराज ढढा ने, जो कि इस समिति के सदस्य थे, इस समिति में अपनी मिति दर्ज करायी। सर्वोदयी विचारक होने के कारण सिद्धराज को राजनैतिक दलों की सक्रीय भागीदारिता अनुपयुक्त लगी और साथ ही वे ग्राम सभा को अधिक सशक्त वनाना चाहते थे वो भी समिति ने नहीं माना।

अशोक मेहता समिति प्रतिवेदन राजनीति की भेंट चढ़ गई। जनता पार्टी, जिसने इस समिति की नियुक्ति की थी, थोड़े समय के पश्चात ही विघटित हो गई और उसके स्थान पर कांग्रेस दल की सरकार बनने के कारण इस प्रतिवेदन के संघीय सरकार ने ठंडे बस्ते में डाल दिया। आगे चलकर हेगड़े के नेतृत्व मे बनी कर्नाटक सरकार ने मूल रूप से और कस में तेलगूदेशम सरकार ने राजनैतिक उद्देश्य के कारण मिश्रित रूप से पंचायती राज के 'मण्डल मॉडल' को अपनाया। कर्नाटक में थोड़े समय पश्चात कांग्रेस के सत्ता में आने पर द्रि-स्तरीय के स्थान पर पुन: त्रि-स्तरीय पंचायती राज को अपना लिया गया।

9.7 सर्वोदयी विचारक और पंचायती राज

भारत में प्रचलित सर्वोदया विचारों की जड़े मोहनदास करमचन्द गांधी के शासन संबंधी दर्शन में पायी जाती हैं। जय प्रकाश नारायण और विनोबा भावे ने इसे नवीन रूप प्रदान करने के साथ-साथ समुचित विस्तार भी प्रदान किया। वास्तविकता में देखा जाये तो यह अवधारणा वास्तविक पंचायती राज से कहीं अधिक विस्तृत है। यह हमारे सम्पर्गू राजनैतिक-प्रशासनिक ढ़ाचे से संबंध रखती है। गांधी और जय प्रकाश की मान्यता यह थी कि संसदात्मक व्यवस्था भारत के लिये अनुपयुक्त है। गांधी ने तो संसद के लिये बड़े कड़वे शब्दों का प्रयाग किया। उन्होंने संसद को "बांझ औरत" की संज्ञा देते हुए कहा कि हो सकता है यह व्यवस्था ब्रिटेन के लिये माफिक हो लेकिन भारत को पंचायती राज व्यवस्था को ही अंगीकार करना चाहिए। गांधी-जेपी-विनोवा की यह दृढ़ मान्यता थी कि हमारी राजनैतिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करते हुए इसकी पुनः संरचना करनी चाहिए। पंचायत को मौलिक इकाई के रूप में अपनाते हुए हमारे देश को 'सामुदायिक प्रजातंत्र' (Communication Democracy) अंगीकार करना श्रेयस्कर होगा। किसान को अपने खेत पर प्राप्त उपज पर हक होगा लेकिन जमीन ग्रामीण समुदाय की होगी जिसे बेचने का हक किसान को प्राप्त नहीं होगा।

जेपी का यह कहना था कि भारत का वर्तमान राजनैतिक प्रशासनिक ढ़ांचा उल्टा है। यह एक ऐसा पिरामिडनुमा है जो नीचे से नुकीला और ऊपर से चौड़ा है। किसी भी देश का राजनैतिक ढाचा नीचे से विस्तृत और ऊपर से नुकीला होना चाहिए। उनकी मान्यता यह थी कि जिस ढ़ांचे का आधार नुकीला होगा वह अत्यन्त कमजोर होता है और वह कदापि सफल नहीं हो सकता है। जेपी यह कहते थे कि भारत की वर्तमान व्यवस्था ताश के पत्ते के नहले के अनुरूप है जो जरासे हवा के झोंके से ढह जाएगा।

गांधी-जेपी-विनोबा का यह कहना था कि भारत के संविधान का निर्माण करते समय हमें पंचायत को अधिक से अधिक कार्य और शक्तियां सौंपते हुए ऊपर की तरफ बढ़ना चाहिए। भारत में पंचायत को आधारभूत इकाई मानकर इसे सबसे पहले कार्य सौपें। उसके बाद खण्ड स्तर पर कार्य और शक्तियाँ सौंपे। जो कार्य ग्राम और खण्ड स्तर पर नहीं हो सकते हैं उन्हें जिला स्तर पर वितरित करें। उसके बाद राज्य स्तर की इकाई को कार्य और शक्तियाँ सौपी जानी चाहिए। शेष बचे हुए कार्य और शक्तियों का हस्तान्तरण संघीय स्तर पर संसद को किया जाना चाहिये। जबकि हुआ इससे उलट है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने सर्वप्रथम संघीय स्तर पर संसद को कार्य और शक्तियां सौंपी हैं। उसके बाद राज्य स्तर पर कार्य और शक्तियां प्रदान की हैं। शेष बची खुची शक्तियां और कार्य स्थानीय स्वायए संस्थाओं को प्रदान करने का कार्य किया है।

स्वतंत्रता संग्राम के समय में भारत के लिये गांधी ने स्वतंत्र भारत में 'राम राज्य' की कल्पना की थी जिसमें आर्थिक-सामाजिक समानता होगी और ऊंच-नीच रहित व्यवस्था होगी। राम राज्य में सबसे प्रमुख ईकाई ग्राम होगा जिसमें समस्त नागरिकों को राजनैतिक-प्रशासनिक कार्यो में दिन-प्रतिदिन हिस्सेदारी निभानी है। सर्वोदयी विचारक यह मानते हैं कि चार साल या पांच साल में एक बार अपने जनप्रतिनिधियों का निर्वाचन कर लेना भर समुचित नहीं है। वर्तमान व्यवस्था में सामान्य नागरिक द्वारा अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करने के अलावा

कोई भागीदारी नहीं है, जो उचित जान नहीं पड़ता है। नागरिक को शासन में कदम-कदम पर हिस्सा लेने के प्रचुर अवसर प्राप्त होने चाहिए।

सर्वोदयी विचारक यह चाहते हैं कि प्रत्येक गांव की एक मजबूत और सशक्त 'ग्राम सभा' होनी चाहिये जिसे अपनी ग्राम पंचायत का निर्वाचन करने का अधिकार होना चाहिए। ग्राम पंचायत के चुनाव प्रत्यक्ष प्रणाली से सर्वसम्मति द्वारा किये जाऐ। खण्ड या ब्लाक स्तर पर संस्था का निर्माण अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली से किया जाए। इसी प्रकार जिला, राज्य और संघीय स्तर पर व्यवस्थापिका का निर्वाचन अप्रत्यक्ष आधार पर हो। कहने का अभिप्राय यह है कि भारत में एक ऐसी संघीय व्यवस्था हो जिसमें ग्राम सभा से लेकर संघीय स्तर पर संसद में आंगिक (Organic) संबंध हों और उसमें प्रत्यक्ष निर्वाचन मात्र ग्राम पंचायत का हो और उससे ऊपर की समस्त इकाईयों का गठन अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा किया जाना चाहिए।

महात्मा गांधी के अनुसार साधन और साध्य में अभिन्न सम्बन्ध है। उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उत्तम मार्ग को अपनाना होगा। गांधी के अनुसार हमारे लक्ष्य श्रेष्ठ हों। साथ ही साथ हमारे साधन भी पवित्र एवं उत्तम होने चाहिए। गांधीवादी सत्य और अहिंसा पर बल देते है। गांधी जी व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। उनका कहना था कि मेरे लिये स्वराज्य का अर्थ अपने देश के दरिद्र से दरिद्र व्यक्ति की स्वतंत्रता है। वे राज्य के विरूद्ध व्यक्तियों को अधिकार देने के हिमायती थे।

गांधीवादियों का लक्ष्य एक सर्वोदयी समाज की स्थापना करना है जिसमें जाति, धर्म, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब का भेद-भाव नहीं होगा। इस समाज में सभी नागरिकों को अपनी सर्वागीण उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त होगा, पूंजीवाद और आर्थिक शोषण का अन्त हो जाएगा। व्यक्तियों की भौतिक उन्नति के साथ-साथ नैतिक उन्नति पर भी गांधीवादी समुचित जोर देते हैं।

9.8 दल विहीन प्रजातांत्रिक व्यवस्था

राजनैतिक दलों के द्वारा प्रजातांत्रिक व्यवस्था के संचालन में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण से सर्वोदय विचारक दल विहीन व्यवस्था की वकालत करते हैं। सामान्यतया प्रजातंत्रिक व्यवस्था का संचालन राजनैतिक दलों की सहायता से किया जाता है। लेकिन दलों के मध्य संघर्ष की स्थिति और सत्ता प्राप्ति के लिये मुकाबला इतना अधिक बढ़ जाता है कि लोकहित और राष्ट्रीय हित पिछड़ जाता है एवं दलीय हित में कार्य करने के कारण दलीय व्यवस्था अहितकर सिद्ध होने लगती है। शासन प्रजातांत्रिक के स्थान पर दलीय अधिनायकतंत्र का रूप ग्रहण करने लगता है। सर्वोदय विचारकों की यह मान्यता है कि समाज के विविध व्यक्तियों व व्यक्ति समूहों के हित परस्पर विरोधी नहीं होते तथा उन्हें विरोधी मानकर उनमें सामंजस्य स्थापिक करने के बहाने बहुमत के आधार पर लोकमत को जानकर उसके आधार पर समाज की व्यवस्था का संचालन दलीय लोकतंत्र के माध्यम से करना उचित नहीं है। पारस्परिक कृत्रिम विरोध की दशा में लोकमत के निर्धारण के लिये उस राजनीति का सहारा लिया जाता है जिसका आधार बहुमत है तथा जिसके अन्तर्गत बहुमत को लोकमत तथा दलीय नीति को लोकनीति मानकर उसके आधार पर सम्पूर्ण समाज की समस्याओं को राज्य के माध्यम से हल

करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार बहुमत के आधार जो राजनीति अस्तित्व में आती है उसमें लोकतंत्र, लोकतंत्र न रहकर दलतंत्र बन जाता है। ऐसे में विनोबा के शब्दों में "चुनाव का विषवृक्ष" बहुमत पर आधारित राजनीति के सहचर के रूप में समाज में पारस्परिक विष फैलाता है। चुनाव के विषय में विनोबा कहते है: यह जो चुनाव होता है उसका अपना अलग धर्म विचार है। उसके तीन सिद्धान्त है: आत्मस्तुति, पर-निन्दा और मिथ्याभाषण।

सर्वोदयी विचारक बहुमत तथा अल्पमत के आधार 'पर बने हुए राजनैतिक दलों के माध्यम से लोकतंत्र के क्रियान्वयन को समाज की समष्टि की दृष्टि से हानिकर मानते हैं। विनोबा के शब्दों में: यह जो अल्पसंख्या और बहुसंख्या का विचार चला है उसका परिणाम बहुत भयंकर हो रहा है। इससे करोड़ों रूपया खर्च हो रहा है। इसमें गरीबों का कोई स्थान नहीं है। इसके कारण जाति भेद तो इतना बढ़ गया है कि कम्युनिष्टों में जो चीज नहीं थी, उनमें भी वह आ गई है।

सर्वोदयी विचारक वर्तमान दलीय आधार पर प्रजातत्र के संचालन का विरोध करते हैं। उनके अनुसार समाज का संचालन बहुमत पर आधारित दलीय लोकतंत्र की व्यवस्था के स्थान पर सर्वसम्मति पर आधारित दल विहीन लोकतंत्र के द्वारा होना चाहिए। वर्तमान प्रकार के लोकतंत्र में विविध दलों का निर्माण समाज सेवा के नाम पर होता है, लेकिन इस आधार पर जब राजनैतिक दल बन जाते हैं तो दलीय सेवा मुख्य और समाज सेवा गौण हो जाती है। प्रत्येक समस्या को अलग-अलग दल अपने अनुसार रंगने का प्रयत्न करते हैं। समस्त निर्णय दलहित में लेने की प्रवृत्ति बनती है। दलविहीन लोकतंत्र का संचालन वस्तुत: तभी संभव है जब लोग बिना दलबंदी के लोक सेवा करने के आदी हों।

सर्वोदयी विचारक दल विहीन व्यवस्था के विकास के लिये गांवों के पुनर्निमाण की राय देते है। विनोबा का विचार है कि लोकतंत्र को दल विहीन स्वरूप प्रदान करने के लिये ग्राम सभाओं का संगठन निर्दलीय आधार पर किया जाए। उनके विचार से प्रत्येक कुटुम्ब से एक-एक व्यक्ति को सम्मिलित करके एक सभा का गठन किया जाए और इस सभा द्वारा एक समिति की नियुक्ति करके दिन-प्रतिदिन के कार्यो का संचालन करना चाहिए। ग्रामों का इस आधार पर पुनर्गठन करने के साथ-साथ ग्रामों को इस बात का पूर्ण अधिकार होना चाहिए कि वे अपना शासन प्रबंध वे स्वयं करे और उसके लिये ऊपर के स्तर पर निर्मित सरकार का मुंह न ताके।

9.9 सर्वोदयी विचारकों के अनुसार पंचायती राज के कार्य

जैसा कि अन्यत्र बताया जा चुका है कि सर्वोदयी विचारक पंचायतों को अधिकाधिक अधिकार और कर्तव्य सौंपने के पक्षधर हैं और वे चाहते हैं कि भारतीय संविधान में सरकार को अधिकार, शक्तियां और कर्तव्यों का वितरण करते समय पंचायतों से प्रक्रिया प्रारम्भ करके ऊपर की संस्थाओं की ओर बढ़ना चाहिये और केन्द्रीय या संघीय स्तर पर गठित पंचायत को कम से कम अधिकार और कर्तव्य सौंपे जाने चाहिये। गांधीजी के अनुसार "ग्राम पंचायत को अपने क्षेत्र के सम्पूर्ण कार्यो के सम्पादन का अन्तिम अधिकार होगा। गांधीजी ने इनके संगठन व अधिकारों की कोई स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत नहीं की, तथापि उनके ही विचारों के आधार पर श्री एस.एन.

अग्रवाल ने (S.N. Agarwal: Gandhian Constitution for free India) जिला, प्रान्त व केन्द्रीय इकाईयों के अधिकार व संगठन का विवेचन किया है।

गाधी जी लिखते हैं: "ग्राम स्वराज के सम्बन्ध में मेरा विचार यह है कि वह एक पूर्ण गणराज्य हो, जो अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये अनेक पड़ोसियों से पूर्णत: स्वतंत्र होगा। गांव का सम्पूर्ण प्रशासन पंचायतों के हाथों में होगा।..... विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका तीनों प्रकार की शक्तियां गांव की पंचायतों के पास होंगी।"

गांधी के इन विचारों के अध्ययन से यही झलकता है कि पंचायती राज को वे स्थानीय स्वायत्त संस्था के रूप में मानते थे और इन संस्थाओं को विकास के अभिकरण के रूप में उन्होंने इन संस्थाओं की कल्पना नहीं की थी। सर्वोदयी विचारकों के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को अत्यधिक स्वायएता प्रदान की जानी चाहिए और बाह्य हस्तक्षेप को वे सभी अनुचित मानते है। गांधीजी तो ग्राम स्वराज्य को पूर्ण गणराज्य के रूप में देखना चाहते थे।

महात्मा गांधी ने कहा था कि स्वराज में समाज की प्रमुख इकाई परिवार होगा और राजनैतिक व्यवस्था की प्रमुख इकाई ग्राम होगा। यह "ग्राम गणराज्य" सभी आन्तरिक मामलों में पूर्णरूप से आत्मनिर्भर होगा और कुछ मामलों में पर निर्भर होगा। यह व्यवस्था पिरामिड़ीय नहीं होगी जिसमें आधार शिखर को बनाये रखता है, बल्कि यह व्यज्रस्था समुद्रीय होगी जिसमें कि व्यक्ति ही इसका प्रमुख केन्द्र होगा। इसमें बाहरी धाराएं अन्दरूनी धाराओं को ओर शक्ति प्रदान करेगी और बदले में वे उनसे शक्ति भी ग्रहण करेंगी।

9.10 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था उसे कहा जाता है जिसमें जनता स्वयं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष विधि से अपने जनप्रतिनिधियों द्वारा समष्टि रूप से सम्पूर्ण जनता के हित की दृष्टि से शासन करती है, न कि किसी समुदाय या वर्ग विशेष के हित की दृष्टि से। लोकतंत्र के जिस आदर्श स्वरूप की बात की जाती है वह व्यवहार में उतारना कठिन है, क्योंकि लोकतंत्र का क्रियान्वयन सामान्यतया राजनैतिक दलों के माध्यम से होता है लेकिन दलीय राजनीति व जनसाधारण की अज्ञानता-अनभिज्ञता के कारण लोकतंत्र सम्पूर्ण जनता के हित के स्थान पर वर्ग विशेष के हित का साधन बन कर रह जाता है, सम्पूर्ण जनता में निहित सम्प्रभुत्ता का उपभोग सत्तारूढ़ दल के शीर्षस्थ नेता अथवा कर्मचारीवृंद के हाथों में आ जाता है और सामाजिक समानता के बजाय सामाजिक विषमता का बोलबाला हो जाता है। लोकतंत्र की इस व्यावहारिक कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से विकेन्द्रित लोकतंत्र और दल विहीन शासन व्यवस्था की सिफारिश की जाती है। यहां लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और दल विहीन व्यवस्था पर चर्चा करना प्रासंगिक होगा।

सर्वश्रेष्ठ प्रजातांत्रिक व्यवस्था उसे कहा जाएगा जिसमें अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण हो। जनतंत्र में राज्य की सर्वोच्च सत्ता औपचारिक रूप से जनता में निहित होनी चाहिए। शासन के दिन प्रतिदिन के कार्यो में आम जनता की सक्रीय भागीदारी होना इसकी प्रथम आवश्यकता है। मिल कहते हैं कि "सामाजिक राज्य की सब आवश्यकताओं को पूरी तरह से पूर्ण करने वाला शासन वही हो सकता है जिसमें सम्पूर्ण जनता भाग ले।" लोकतंत्र का आदर्श रूप वह होगा जिसमें आम जनता का योगदान सतत, व्यापक सक्रिय और क्रियात्मक हो। इकबाल नारायण का

कहना है कि".. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण शासन कार्य में जनता के योग की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें यह योग समय-समय पर-दो, तीन, चार या पांच वर्ष बाद राष्ट्रीय या प्रादेशिक सरकार के लिये प्रतिनिधियों का चुनाव कर लेने तक ही सीमित गही रहता, वरण उसमें उस योग का रूप अपने स्थानीय क्षेत्र, ग्राम या नगर के सार्वजनिक मामलों के दिन प्रतिदिन के प्रबंध में सक्रिय भाग लेने का होता है। विकेन्द्रित लोकतंत्र, लोकतंत्र का वह रूप है जिसमें सार्वजनिक मामलों का प्रबंध कार्य चोटी के लोगों तक सीमित नहीं रहता, वरण उसका संचालन, प्रबंध-कार्य में सक्रिय भाग लेने वाली जनता की उन स्थानीय इकाईयों द्वारा होता है, जो न्यूनाधिक रूप से छोटी-छोटी सरकारें होने के कारण शासन की वास्तविक शक्ति एवं लोकतांत्रिक विचारों व लोकप्रिय कार्यो के केन्द्र के रूप में कार्य करती है।"

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण 'शक्ति के प्रत्यायोजन' (Delegation of Power) और 'प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण' (Administrative Decentralisation) से भिन्न होने के कारण ही लोकतान्त्रिक शब्द के साथ विकेन्द्रीकरण शब्द का प्रयोग किया जाता है। कुछ लोग यह प्रश्न करते है कि जब लोकतंत्र शब्द में विकेन्द्रीकरण निहित है तो इसके साथ पृथक से विकेन्द्रीकरण शब्द का क्या औचित्य है? इसका उएर यही है कि शक्ति के प्रत्यायोजन और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण से भिन्न होने के कारण ही विकेन्द्रीकरण शब्द का प्रयोग किया गया है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण से व्यापक है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की अनुपस्थिति में प्रत्येक प्रशासनिक इकाई अपने उच्च स्तर के अधिकारियों के दिशा-निर्देशों का सदैव इन्तजार करते हैं और वे तब तक कुछ नहीं करते जब तक कि ऊपर से आदेश प्राप्त नहीं हो जाते। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण अपनाए जाने के पश्चात प्रत्येक इकाई निश्चित सीमा तक बिना ऊपर के आदेश या इशारे के इंतजार किये अपना कार्य सम्पन्न कर सकती है। प्रशासनिक इकाईयों को दिन-प्रतिदिन के कार्य में कुशलता बनी रहती है, वे निश्चित सीमा तक बिना समय नष्ट किये अपना कार्य सम्पन्न करते चलते है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के मूल में प्रशासनिक कुशलता निहित है जबकि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य ही राष्ट्रीय, प्रादेशिक और (विशेषकर) स्थानीय स्तरों पर शासन कार्य में जनता का अधिकाधिक हिस्सा लेने की व्यवस्था किया जाना है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत विभिन्न स्तरों पर कार्यरत प्रशासनिक अधिकारियों और कर्मचारियों को मात्र इस बात का अधिकार होता है कि निर्धारित नीति के अन्तर्गत काम करते हुए विभिन्न योजनाओं को अनावश्यक बाह्य हस्तक्षेप के बिना अपने स्वयं के विवेक से कार्यन्वित कर सकें। जबकि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत जनता की विविध स्तरों की प्रतिनिधि संस्थाओं को लोक कल्याण की विविध योजनाओं का निर्माण करने तथा स्वतंत्रतापूर्वक अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार उनका क्रियान्वयन करने और संचालन करने का अधिकार होता है। इससे स्पष्ट है कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण से व्यापक है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में जनता द्वारा मौलिक उपभोग की व्यवस्था है, प्रशासनिक प्रत्यायोजन केवल प्रशासनिक उपयोगिता की वस्तु है तथा वह नीचे के प्राधिकारियों द्वारा केवल ऊपर से प्राप्त की हुई शक्ति के उपभोग की व्यवस्था है। शक्ति का प्रत्यायोजन का तात्पर्य किसी

उच्चाधिकारी द्वारा निम्न अधिकारी को इस प्रकार का अधिकार देना है कि उसका प्रयोग निम्न अधिकारी अपने स्वयं के अधिकार की तरह नहीं करके मात्र एक प्रदत्त अधिकार की तरह ही करें और यह उच्चाधिकारी के प्रसाद पर्यन्त ही ऐसा कर सकता है अर्थात जब तक उच्चाधिकारी चाहता है तभी तक वह ऐसा कर सकता है। उच्चाधिकारी द्वारा प्रयायोजित शक्ति वापस भी ली जा सकती है। इस सम्बन्ध में पाल मेयर का कहना हे कि "केन्द्रीय प्रशासन का निर्देश देने तथा निर्णयों को संशोधित करने का अधिकार सुरक्षित रहता।.... केन्द्रीय संगठन सुसम्बद्ध होता है, अर्थात वह उच्च स्तरीय व अधीनस्थ इकाइयों का एक दृढ़ ढांचा होता है। "जबकि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण केन्द्रीय मामलों का प्रबंधन अपने आप करने के लोकतंत्रीय सिद्धान्त के क्रियान्वयन को व्यापक करके उसे स्थानीय क्षेत्र तक लागू करता है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में स्पष्टत: अधिकार की भावना निहित है जबकि प्रशासनिक प्रत्यायोजन में उच्च स्तरीय प्राधिकरण की स्वेच्छा या रियायत पर निर्भर है, वे जब चाहे प्रत्यायोजित शक्ति को वापस भी ले सकते है।

9.11 पंचायती राज संस्थाओं के कार्यो के संबंध में बलवंत राय मेहता समिति के विचार

बलवंत राय मेहता समिति का प्रतिवेदन संभवत: पहला सरकारी दस्तावेज था जिसने सपष्ट शब्दों में पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के संबंध में कार्य और दायित्व सौंपने की पुरजोर सिफारिश की थी। इस समिति की नियुक्ति की पृष्ठभूमि ही कुछ ऐसे थी कि स्वत: पंचायती राज संस्थाओं को अधिकाधिक स्वायत्ता के साथ ग्रामीण विकास दायित्वों को सौंपना उचित समझा। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भारत सरकार द्वारा संचालित सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं की विफलता के कारणों की जांच करने और उनकी सफलता के लिये उपयुक्त सुझाव सरकार को प्रदान करने के उद्देश्य से ही बलवंत राय मेहता समिति की नियुक्ति की थी। अध्ययन और अनुसंधान के पश्चात इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि जब तक केवल नौकरशाह इन कार्यो को करते रहेंगें और उन कार्यो से जनता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से नही जोडेने तब तक इस क्षेत्र में सफलता नहीं मिल सकती है। इस दिशा मे सुधार के उद्देश्य से बलवंत राय मेहता समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह पुरजोर सिफारिश की थी कि ग्रामीण पुनरूत्थान के उद्देश्य के लिये त्रि-स्तरीय जन प्रतिनिधि संस्थाओं का गठन करके उन्हें समुचित साधन उपलब्ध कराए जाऐ और उन्हें स्वायत्ता के साथ विकास प्रशासन सब्लधी अधिकार सम्पन्न बनाते हुए कर्तव्य सौंपे जाने चाहिये। इससे स्पष्ट हो जाता है कि बलवंत राय मेहता समिति ने ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं अर्थात पंचायती राज संस्थाओं को विकास के अभिकरण के रूप में कल्पना करते हुए इनकी स्थापना के लिये स्पष्ट सिफारिशें प्रस्तुत की है।

बलवंत राय मेहता समिति के प्रतिवेदन प्रस्तुत हो जाने के पश्चात समस्त अध्ययन दलों और समितियों ने बलवंत राय मेहता समिति के अनुरूप ही पंचायती राज संस्थाओं का स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के साथ-साथ इन्हें विकास के अभिकरण मानते हुए ही अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की हैं।"

9.12 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुसार पंचायती राज के कार्य

जैसा कि अशोक मेहता समिति ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि सत्तर के दशक में पंचायती राज व्यवस्था मृत प्राय होने लगी थी, इसे पुन:जीवित करने का प्रयत्न राजीव गांधी ने 64वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से किया था, लेकिन राज्य सभा में समुचित समर्थन नहीं जुटा पाने के फलस्परूप राजीव गांधी का यह प्रयास विफल ही रहा। नरसिम्हा राव के प्रधानमंत्रित्व काल में अप्रैल 1992 में 73वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो सका। इस संशोधन द्वारा भारतीय संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर पंचायती राज संस्थाओं को सौंपे जाने वाले कार्यों की सूची जोड़ी गई। इस सूची में से कुल 29 कार्य पंचायती राज को राज्य सरकारों द्वारा सौंपे जाने की अपेक्षा की गई है। इन कार्यो को राज्य द्वारा सौंपा जाना अनिवार्य नहीं है, यह राज्यों की स्वेच्छा पर छोड़ा गया है। इस 11वीं अनुसूची में दर्शाये कार्य अग्रलिखित है: -

1. कृषि जिसके अंतर्गत कृषि विस्तार भी है।
2. भूमि विकास, भूमि सुधार का कार्यान्वयन, चकबन्दी और भूमि संरक्षण।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और जल-ग्रहण क्षेत्र का विकास।
4. पशुपालन, डेयरी उद्योग एवं कुक्कट-पालन।
5. मत्स्य उद्योग।
6. सामाजिक वानिकी एवं फार्म वानिकी।
7. लघु वन उपज।
8. लघु उद्योग, जिनके अन्तर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी है।
9. खादी, ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योग।
10. ग्रामीण आवासन।
11. पेयजल।
12. ईधन और चारा।
13. सड़कें, पुलिया, पुल, नौकायन फेरी, जलमार्ग और अन्य संचार साधन।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण, जिसके अन्तर्गत विद्युत का वितरण भी है।
15. अपारंपरिक उर्जा स्त्रोत।
16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
17. शिक्षा, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय भी है।
18. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा।
19. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।
20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक किया कलाप।

22. बाजार और मेले।
23. स्वास्थ्य और स्वच्छता जिनके अन्तर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय भी परिवार कल्याण।
24. महिला और बाल विकास।
25. समाज कल्याण, जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है।
26. दुर्बल वर्गो का और विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।
27. सार्वजनिक वितरण प्रणाली।
28. सामुदायिक परिसम्पत्तियों का अनुरक्षण।

9.13 सारांश

इस तरह भारत जैसे विशाल देश में प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से पंचायती राज व्यवस्था को अपनाया गया था। इस व्यवस्था के माध्यम से प्रशासन में जन सहभागिता बढाने तथा नियोजन स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप करने तथा उद्देशित लक्ष्यों को प्रभावी रूप में प्राप्त करने का प्रयास किया गया। यद्यपि प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण का विषय भारत के लिए कुछ नया नहीं है परन्तु बलवंत राय मेहता तथा अशोक मेहता समिति की सिफारिश अनुसार पंचायती राज की जो व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया उसके कारण निश्चित ही अधिकांशत: गाँवों में रहने वाले भारतीय जनता को प्रशासन में सहभागिता का अवसर प्राप्त हुआ है।

9.14 शब्दावली

1. **सर्वोदयी :** ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें समाज में रहने वाले समस्त नागरिकों को अपनी सर्वागीण उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त होता है। ऐसी व्यवस्था जिसमें सभी का उदय हो।
2. **अधिनायकतंत्र :** जिस व्यवस्था में शासक पर कोई अंकुश या प्रतिबन्ध नहीं होता उसे अधिनायकतंत्र या निरंकुश शासन अथवा तानाशाही कहते हैं। ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह अपनी मनमानी से कठोरता से शासन करे उसे अधिनायकतंत्र कहा जाएगा।
3. **प्रत्यक्ष प्रजातंत्र :** शासन की वह व्यवस्था जिसमें सम्पूर्ण जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से बिना एजेण्टों अथवा प्रतिनिधियों के प्रभुसत्ता का प्रयोग करती है।
4. **गणराज्य :** ऐसा राज्य जिसमें समस्त प्राधिकारों का स्रोत लोग या जनता हो और किसी बाह्य प्राधिकारी के प्रति कोई अधीनता नहीं हो। ऐसी शासन व्यवस्था जहां सरकार जनता के द्वारा जनता के लिए बनाई गई हो।

5. **प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण :** ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें जनता को शासन-कार्यो में अधिकाधिक भाग लेने का अवसर हो, शक्ति का हस्तान्तरण ऊपर से नीचे की ओर होता हो और स्थानीय स्वायत्त-शासन की इकाईयाँ अपने प्रशासन का स्वयं प्रबन्ध करती हों।

9.15 अभ्यास प्रश्न

1. स्थानीय स्वायए शासन संस्था और विकास अभिकरण के रूप में पंचायती राज पर एक निबंध लिखिये।
2. प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण से क्या अभिप्राय है ? बलवंत राय मेहता और अशोक मेहता समिति प्रतिवेदनों की प्रमुख सिफारिशों का वर्णन कीजिये।
3. पंचायती राज के विषय में सर्वोदया विचारकों के विचारों से अवगत कराते हुए इनकी कमियां बताइये।
4. भारतीय संविधान में ग्यारहवीं अनुसूची में वर्णित पंचायती राज के कार्यो की व्यख्या कीजिये। क्या आज पंचायती राज संस्थाएं इन समस्त कार्यो को सफलतापूर्वक कर रही हैं?

9.16 संदर्भ ग्रन्थ सूचि

1. इकबाल नारायण, भारतीय राजनीतिक विचारक, ग्रन्ध विकास, जयपुर, 2005
2. इकबाल नारायण, राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 1975
3. एस.एस.सिंह, लेजिस्लेटिव फ्रेमवर्क ऑफ पंचायती राज इन इन्डिया, इन्टलेकचच्वल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1993
4. सूरत सिंह एवं मोहिन्दर सिंह (सम्पा.) रूरल डवलपमेन्ट इन दी, टवेन्टी फस्ट सेंचूअरी, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स प्रा.लि, नई दिल्ली,2006
5. गिरवर सिंह, भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2004
6. महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाश मन्दिर, अहमदाबाद, 2003
7. जय प्रकाश नारायण, पंचायती राज एड द बेसिक ऑफ इण्डियन पोलिटि, 1962
8. जय प्रकाश नारायण, टूवर्ड्स न्यू सोसायटी, 1958
9. आर.वी.जथार, इवोल्युशन ऑफ पंचायती राज इन इण्डिया, 1964

इकाई-10

राजनीति एवं लोकप्रशासन कें तुलनात्मक अध्ययन में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक का अर्थ एवं परिभाषा

10.3 सरचनात्मक-प्रकायात्मक विश्लेषण की विशेषताएं

10.4 राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्याख्या: आमण्ड के विचार

10.5 तुलनात्मक राजनीति का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

10.6 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता

10.7 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अवधारणा का तुलनात्मक राजनीति में प्रयोग

10.8 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की तुलनात्मक राजनीति में उपयोगिता

10.9 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आलोचना

10.10 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम एक मूल्यांकन

10.11 ईस्टन के निवेश-निर्गत विश्लेषण और आमण्ड के संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण का तुलनात्मक अध्ययन

10.12 सारांश

10.13 अभ्यास प्रश्न

10.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे -

- संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक का अर्थ
- आमण्ड का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण,
- संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक की उपयोगिता,
- ईस्टन का दृष्टिकोण।

10.1 प्रस्तावना

'व्यवस्था विश्लेषण' की तरह की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण भी राजनीति विज्ञान में समाजशास्त्र के रास्ते से ही आया है। यद्यपि 'संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक' की संकल्पना का प्रयोग मानवशास्त्र में इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ही होने लगा था, किन्तु राजनीतिक विश्लेषण में इसका प्रचलन 'राजनीतिक व्यवस्था' की अवधारणा के प्रतिपादन के बाद ही अधिक लोकप्रिय हुआ है। इसके साथ 'आमण्ड' का नाम जोड़ा जाता है। सर्वप्रथम आमण्ड ने ही राजनीतिक व्यवस्था की 'संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक' ढंग से व्याख्या कर इसका राजनीतिक विश्लेषण में सामान्य रूप से और तुलनात्मक राजनीति में विशेष रूप से प्रयोग किया था। आमण्ड

द्वारा राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्याख्या का विवेचन करने से पहले इसका अर्थ और ऐसे विश्लेषणों की विशेषताएं समझना आवश्यक है। अत: पहले हम इसका संरचनात्मक-प्रकार्यात्मकता का अर्थ समझेंगे और बाद में इसकी विशेषताओं के संदर्भ में इसके राजनीतिक विश्लेषण में प्रयोग की बात करेंगे।

10.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक का अर्थ एवं परिभाषा

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण दो संकल्पनाओं के प्रयोग पर आधारित है। पहली सकल्पना 'संरचना' की है और दूसरी संकल्पना 'प्रकार्य' की है। अत: संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक का अर्थ इन दोनों संकल्पनाओं का अर्थ करके समझा जा सकता है। रॉबर्ट सी. बोन ने प्रकार्य की परिभाषा करते हुए लिखा है कि एक प्रकार्य व्यवस्था को बनाये रखने और उसको विकसित करने के लिए किया जाने वाला ऐसा क्रिया-प्रतिमान है जो नियमित रूप से होता रहता है। प्रकार्य का वह अर्थ विकार्य (Dyfunction) का संकेत भी देता है, जिससे उस क्रिया प्रतिमान का आशय होता है जो व्यवस्था के अस्तित्व और विकास के लिए घातक होता है। इससे स्पष्ट है कि हर राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों के साथ विकार्य स्वत: ही संपादित होते रहते हैं। अत: प्रकार्य का अर्थ संदर्भ सापेक्ष ही कहा जा सकता है। एक स्थिति में एक प्रकार्य, उससे भिन्न स्थिति में विकार्य बन सकता है। इस कारण, प्रकार्य के अर्थ में यह सतर्कता रखना आवश्यक है कि केवल उन्हीं क्रिया प्रतिमानों को प्रकार्य कहना है, जो राजनीतिक व्यवस्था को बनाये रखने, उसे विकसित करने तथा नियमित रूप से उसमें घटित होते रहते हैं। इस संबंध में मर्टन ने प्रकार्य का अर्थ इस तरह से किया है कि उसको विकार्य से अलग कर सकना सम्भव हो जाता है। मर्टन ने प्रकार्य उन पर्यवेक्षणीय परिणामों को कहा है जो राजनीतिक व्यवस्था के अनुकूलन और समायोजन में सहायक होते हैं। इसके विपरित, विकार्य राजनीतिक व्यवस्था के अनुकूलन और समायोजन को कम करने वाली प्रक्रियाएं है। इस संदर्भ में बर्टन यह स्पष्ट करता है कि प्रकार्य और विकार्य भिन्न-भिन्न क्रिया-प्रतिमानों द्वारा उत्पन्न होते हैं ऐसी धारणा भ्रमात्मक है। एक क्रिया प्रतिमान, एक स्तर पर प्रकार्य और दूसरे स्तर पर विकार्य बन सकता है। अत: हमें प्रकार्य का अर्थ ऐसे क्रिया-प्रतिमान से ही लेना है जो व्यवस्था का पोषक या अनुरक्षक हो।

प्रकार्य के अर्थ के इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि हर क्रिया-प्रतिमान या गतिविधि को तुलनात्मक राजनीतिक में प्रकार्य नहीं माना जाता है। इसमें केवल उन्हीं क्रियाओं को प्रकार्य कहा जाता है जिनमें निम्नलिखित लक्षण होते हैं -

(क) क्रिया राजनीतिक व्यवस्था की अनुरक्षक या उसे बनाए रखने वाली हो।

(ख) क्रिया राजनीतिक व्यवस्था को विकसित करने वाली हो।

(ग) क्रिया प्रतिमानित हो अर्थात् यह नियमित रूप से घटित होती रहने वाली हो।

किसी भी क्रिया को तब तक प्रकार्य नहीं कहा जाता है जब तक कि वह नियमितता का लक्षण नहीं रखती हो। उदाहरण के लिए, किसी क्रिया के एक दिन या काल विशेष में राजनीतिक व्यवस्था का अनुकूलन करने से वह प्रकार्य नहीं बन जाती, क्योंकि वही क्रिया-प्रतिमान बाद में किसी अन्य काल विशेष में राजनीतिक व्यवस्था को विखण्डित करने वाली हो सकती है। अत: प्रकार्य का राजनीति में विशेष अर्थ ही लिया जाता है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण में दूसरी महत्वपूर्ण संकल्पना 'संरचना' की है। संरचना राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों के निष्पादन की व्यवस्थाओं को कहा जाता है। हर राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों की क्रिया जिस व्यवस्था के द्वारा की जाती है उस व्यवस्थात्मक संगठन को संरचना का नाम दिया जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संरचनाओं का अर्थ प्रकार्यों के अर्थ के साथ जुड़ा हुआ है। इस अर्थ में, कोई संगठन प्रकार्य विशेष का निष्पादन करने पर ही संरचना कहा जाएगा। उदाहरण के लिए, विधानमण्डल केवल निर्वाचित या मनोनीत सदस्यों की सामूहिकता को नहीं कहकर अवस्था में ही व्यवस्थापन संरचना कही जाएगी जब यह व्यवस्था को बनाए रखने हेतु व्यवस्थापन की क्रिया को नियमित रूप से निष्पादित करती हो। अत: संरचना के प्रकार्यों के आधार पर परिभाषित किया जाता है। हर कोई संगठन संरचना नहीं बन जाता है। प्रकार्य विशेष के आधार पर ही कोई संगठन संरचना माना जाता है। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि एक संरचना केवल एक ही प्रकार्य तक सीमित रहती हो यह आवश्यक नहीं है। मर्टन यह विचार स्वीकार नहीं करता कि संरचना केवल एक प्रकार्य ही करती है या कर सकती है। एक ही प्रकार्य अनेक संरचनाओं के समूह के द्वारा निष्पादित हो सकता है। इसी तरह, एक ही संरचना प्रकार्य निष्पादित कर सकती है।

राजनीतिक व्यवस्थाओं में प्रकार्यों की तरह संरचनाओं का भी विशेष महत्व होता है। वैसे प्रकार्यवादियों ने 'प्रकार्यों' पर अधिक जोर देने की बात कही है किन्तु, राजनीतिक विश्लेषण में इस मत को स्वीकार नहीं किया जाता है। इसी तरह, अनेक विद्वान संरचनाओं पर जरूरत से अधिक बल देने की बात भी कहते हैं। उनका कहना है कि प्रकार्यो का प्रमुख आधार संरचनाएं होती हैं, अत: संरचनाओं को ही प्रमुखता दी जानी चाहिए। रिग्ज ने इस मत के समर्थन में लिखा है, "प्रकार्यों के विरूद्ध संरचनाओं पर बल नहीं दिया जाता है तो विश्लेषण गुमराह करने वाला और अविश्वसनीय हो सकता है।" यह दोनों ही विचार अतिवादी हैं। लापालोम्बारा ने संरचनाओं और प्रकार्यों को महत्व देने की बात को प्रस्तावित करते हुए लिखा है कि "राजनीतिक विश्लेषण अनेक भ्रमों और कठिनाइयों का उस अवस्था में स्वत: समाधान हो जाएगा। हम राजनीतिक व्यवस्थाओं की संरचनाओं पर भी उतना ही ध्यान देंगे, जितना हम उस प्रकार्यात्मक पक्षों पर देते हैं।"

राजनीति में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण विशेष अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। यह 'संरचना' और 'प्रकार्य' के दो प्रत्ययों के इर्द-गिर्द गूँथा हुआ विश्लेषण ही नहीं, वरन् यह इन दोनों प्रत्ययों की विशेष रूप से व्याख्या भी करता है। एस.पी. वर्मा की मान्यता है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण में तीन आधारभूत प्रश्न सन्निहित है अर्थात् संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण में मुख्यतया तीन तथ्य देखने का प्रयत्न किया जाता है कि (1) किसी व्यवस्था में कौनसे आधारभूत प्रकार्य पूरे किए जाते हैं, (2) प्रकार्य किन संरचनाओं चारा पूरे होते है, और (3) यह प्रकार्य किन परिस्थितियों में पूरे किए जाते हैं।

इन तीन प्रश्नों के उत्तर में संरचनात्मक-प्रक्रियात्मक विश्लेषण, संरचनाओं और प्रकार्यों के प्रत्ययों को विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त करके, राजनीति के सामान्य सिद्धान्त निर्माण में

प्रयत्नशील माना जा सकता है। राजनीतिक यथार्थ का प्रकार्यात्मक स्पष्टीकरण से इसी कारण और अधिक सही हो जाता है कि इस स्थिर तत्वों का उपयोग न करके गत्यात्मक प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

10.3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण की विशेषताएं

राजनीतिक व्यवस्था की आधारभूत विशेषताएं ही संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण में स्वीकार की गई है। इसमें भी राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा का आधार बनाए रखा गया है। इसलिए ही एलेन बाल ने लिखा है कि "सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त के फलस्वरूप संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण अस्तित्व में आया।" तुलनात्मक राजनीतिज्ञ अध्ययनों में इसका विशेष रूप से प्रयोग आमण्ड ने किया है। उसने राजनीतिक व्यवस्था के तीन लक्षणों को प्रमुख बताया है। यह हैं- (1) व्यापकता, (2) अन्तरनिर्भरता, और (3) सीमाओं का अस्तित्व। यह विशेषताएं ईस्टन द्वारा बताई चार विशेषताओं से मिलती-जुलती है।

राजनीतिक व्यवस्था के इन लक्षणों को लेकर ईस्टन और आमण्ड समान विचार रखते हैं। किन्तु, ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था की 'माँगो-समर्थनों' तथा 'नीतियों-निर्णयों' के रूप में समझने का प्रयास किया है, जबकि आमण्ड इससे आगे जाकर संरचनाओं और प्रकायाँ के आधार पर इसे समझते है। इस कारण, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण की विशेषताएं निवेश-निर्गत विश्लेषण से कुछ भिन्न प्रकार की हो जाती हैं। संक्षेप में वह इस प्रकार हैं -

(क) सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था की विश्लेषण इकाई,

(ख) व्यवस्था अनुरक्षण के लिए विशिष्ट प्रकायों की अनिवार्यता,

(ग) व्यवस्था की विविध संरचनाओं में प्रकार्यात्मक अन्तनिर्भरता,

(घ) संरचनात्मक प्रतिस्थापन्नता।

(क) इस लक्षण की दृष्टि से संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण निवेश-निर्गत विश्लेषण के समान ही माना जा सकता है। ईस्टन की तरह की आमण्ड भी संरचनाओं और प्रकायाँ को विश्लेषित करने में राजनीतिक व्यवस्था का ही आधार रखता है। यद्यपि, संरचनाओं को सम्पूर्ण व्यवस्था के आधार पर ही समझने की बात पर बल दिया गया है, फिर भी यह दृष्टिकोण इस बात में अधिक आगे बढ़ गया है कि इसने उन सब संरचनाओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया है जो राजनीतिक व्यवस्थाओं को विशेष प्रकृति प्रदान करती है। अत: इसमें भी विश्लेषण की इकाई के रूप में अवश्य ही सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर बल दिया गया है, किन्तु राजनीति की गत्यात्मक शक्तियों की खोज में यह उससे शहर भी जाने का प्रयास करती है।

(ख) संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण में यह मानकर चला जाता है कि राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए व्यवस्था की संरचनाओं द्वारा कुछ कार्य या विकार्य अनिवार्यत: निष्पादित होने चाहिए अन्यथा राजनीतिक व्यवस्था बनी नहीं रह सकती है। इन प्रकार्यो की अनिवार्यता का यह अर्थ नहीं है कि सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में संरचनाएं एक ही प्रकार की होती हैं। यहां बल क्येल इस बात पर दिया गया है कि व्यवस्था में संरचनात्मक विभिन्नीकरण या विविधता हो सक्ली है अर्थात् राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों का सम्पादन 'क' प्रकार की संरचनाओं के द्वारा हो सकता है तो किसी अन्य व्यवस्था में इन्हीं प्रकायों का निष्पादन 'ख'

प्रकार की संस्वनाएं हो सकती हैं। यहां संरचनाओं की समानता मौलिक नहीं है किन्तु, व्यवस्था के बने रहने के लिए प्रकार्यो का एक-सा निष्पादन अनिवार्य है। उदाहरण के लिए, किसी राजनीतिक व्यवस्था में व्यवस्थापन कार्य किस संरचना के द्वारा किया जाता है, यह तथ्य विशेष महत्व नहीं रखता है। किन्तु, इस बात का महत्व होता है कि व्यवस्था के बने रहने के लिए व्यवस्थापन कार्य का किसी न किसी संरचना के द्वारा निष्पादन अनिवार्यत: हो।

(ग) इस विश्लेषण की यह विशेषता है कि राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान संरचना में अन्तनिभरता की प्रकार्यात्मक आधार पर व्याख्या करता है। इसका यह अर्थ है कि संरचनाओं को प्रकार्यो के आधार पर परिभाषित करने का प्रयत्न करता है। इसी आधार को लेकर इसका राजनीति-विज्ञान से कही अधिक तुलनात्मक राजनीति में प्रयुक्त किया जाता है। इससे राजनीतिक व्यवस्था की गत्यात्मक शक्तियों को खोज निकालना सम्भव हो जाता है। इसी तरह, इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक संरचनाओं में आया हर अन्तर राजनीतिक व्यवस्था के लिए खतरा नहीं माना जा सकता है। परिवर्तित संरचना वह कार्य कर रही है जो राजनीतिक व्यवस्था में इससे पहले किसी अन्य संरचना के द्वारा किया जाता था तो यह संरचनात्मक परिवर्तन राजनीतिक व्यवस्था के छने का कारण नहीं बन सकता है। इसलिए ही यह विश्लेषण अधिक यथार्थवादी और तुलनात्मक राजनीति में विशेष रूप से लोकप्रिय हो गया है। इस संबंध में ऐप्टर और एक्सटीन ने ठीक ही लिखा है कि "विश्वयुद्ध केबाद के वर्षो में और विशेष रूप से हाल ही के वर्षो में, तुलनात्मक राजनीति के विद्यार्थियों ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण के प्रवर्गो और परिप्रेक्ष्यों का अधिकाधिक प्रयोग किया है।"

(घ) संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण में सरचनात्मक-प्रतिस्थापन्नता की धारणा को मान्यता प्राप्त है। यंग ने ठीक ही लिखा है कि "इस विश्लेषण की महत्वपूर्ण विशेषता इस बात में निहित है कि इसमें संरचनात्मक-प्रतिस्थापन्नता की को स्वीकार किया गया है। "आमण्ड यह मानते हैं कि हर व्यवस्था में सांस्कृतिक विभिन्नताएं पाई जाती है। इस कारण, संस्कृति विशेष के अनुसार संरचनाओं में अन्तर हो सकते हैं। अत: एक से प्रकार्यो के निष्पादन के लिए एक-सी संरचनात्मक व्यवस्था होनी आवश्यक नहीं है। विकासशील राज्यों में संस्कृति की भिन्नताओं के कारण ही पाश्चात्य जगत की राजनीतिक संरचनाओं के होते हुए भी ये संरचनाएं वे कार्य करने में असफल रही हैं जो इनके द्वारा पाश्चात्य जगत की व्यवस्थाओं में निष्पादित होते हैं। अत: संरचनात्मक एकरूपता या समानता के स्थान पर इस दृष्टिकोण में यह स्वीकार क्यिा जाता है कि संस्कृति विशेष के अनुसार संरचनाओं में हेर-फेर या इनका रूप परिवर्तन या उसके स्थान पर नई प्रकार की संरचनाओं का निर्माण या प्रतिस्थापना हो सकती है।

(च) संरचनाएं हर समय केवल प्रकार्य ही करती हों ऐसा इस विश्लेषण में नहीं माना है। संरचनाओं के कार्य सापेक्ष और संदर्भी होते हैं। एक ही संरचना एक समय में और दूसरे समय में विकार्य करने की स्थिति में धकेली जा सकती है। प्रकार्य का हम पहले ही कर चुके हैं फिर भी इसका पुन: अर्थ करना इस तथ्य को समझने के लिए आवश्यक है कि कोई संरचना किस प्रकार का कार्य कर रही है। जो क्रिया-प्रतिमान राजनीतिक व्यवस्था को बनाये रखने और उसको विकसित करने में सहायक हो उसको प्रकार्य तथा जो क्रिया-प्रतिमान इसके विपरित राजनीतिक व्यवस्था को कमजोर करने और उसको तोड़ने से सम्बन्धित हो उसको विकार्य कहा जाता है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण में केवल यही नहीं माना जाता है कि हर राजनीतिक संरचना

केवल एक ही प्रकार का कार्य अर्थात् प्रकार्य ही करती है। यह परिस्थिति पर निर्भर करता है तथा सापेक्ष होता है। इससे यह विश्लेषण संरचनाओं के प्रकार्यों और विकार्यो को स्वीकार करने वाला बन गया।

10.4 राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्याख्या :आमण्ड के विचार

आमण्ड द्वारा प्रयुक्त संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण उसकी राजनीतिक व्यवस्था की धारणा के इर्द-गिर्द ही घूमता है, अत: इसे समझने के लिए हमें आमण्ड की राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या को देखना होगा। आमण्ड के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था "अन्त: क्रियाओं की ऐसी व्यवस्था है जो उन सभी स्वतन्त्र समाजों में पाई जाती है जो कम व अधिक विधि-सम्मत भौतिक बाध्यता को काम में लाते हुए अथवा उसकी धमकी देते हुए एकीकरण और अनुकुल स्थापित करने के कार्यो में लगे हुए है। "आमण्ड द्वारा दी गई इस परिभाषा में 'अधिक अथवा क्कम, 'भौतिक बाध्यता' तथा 'विधि सम्मत' शब्द बहुत महत्व के हैं। इनके प्रयोग से वह राजनीतिक व्यवस्था को अन्य व्यवस्थाओं से न ककेवल अलग कर पाता है वरन् उसकी प्रकृति और सक्रियता को भी विशेष प्रकार की बना देता है। उसका कहना है कि उसने 'अधिक अथवा कम' शब्दों का प्रयोग इस कारण क्यि है तानाशाही व्यवस्थाओं में वैधता के सम्बन्ध में काफी सन्देह रहता है और विकासशील समाजों में यह सम्भव है कि एक समय में एक से अधिक व्यवस्थाएं मौजूद हो। 'भौतिक बाध्यता' का स्पष्टीकरण देते हुए आमण्ड कहता है कि यही तत्व राजनीतिक व्यवस्था को विशिष्टपन प्रदान करके उसे अन्य सभी व्यवस्थाओं से भिन्न और काफी-कुछ सर्वोपरिता प्रदान करती है। 'विधि सम्मत' शब्द के प्रयोग से आमण्ड यह स्पष्ट कर देना चाहता है कि वह राजनीति को क्येल बल प्रयोग के रूप में नहीं मानता। भौतिक बाध्यता की वैधता (विधि सम्मतता) ही राजनीतिक व्यवस्था के निवेशों और निर्गतों को व्यवस्थित करने का काम करती है और उसे व्यवस्था के रूप में विशिष्टता, सुस्पष्टता और सम्बद्धता प्रदान करती है।

आमण्ड की राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या से तीन बातें स्पष्ट होती हैं। स्वयं उसी शब्दों में यह तीन बातें इस प्रकार हैं -

(क) राजनीतिक व्यवस्था एक स्थूल घटक है जो पर्यावरण को प्रभावित करता है और स्वयं पर्यावरण से प्रभावित होता है और विधिसम्मत बल प्रयोग का प्रावधान उसे बनाये रखने का प्रमुख कारण है।

(ख) अन्तःक्रियाएं व्यक्तियों के बीच नहीं किन्तु उनके दारा स्वीकृत भ्रमइकाओं के बीच होती रहती हैं, और

(ग) राजनीतिक व्यवस्था एक ऐसी खुली हुई व्यवस्था है जो अपनी सीमाओं से बाहर स्थित घटकों और व्यवस्थाओं के साथ एक अनवरत संचरण सम्बन्ध के द्वारा जुड़ी हुई है।

आमण्ड व्यवहारवादी है इसलिए उसकी रूचि संस्थाओं से अधिक प्रक्रियाओं में है और इस कारण वह राजनीतिक व्यवस्था के भीतर की संरचनाओं को उनके कार्यों के माध्यम से समझने का प्रयत्न करता है। उसकी मान्यता है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में कुछ

निश्चित कार्यों को पूरा करना पड़ता है। उसने बहुत से कार्यात्मक संवर्गों की चर्चा की है जिन्हें पूरा करना प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था का दायित्व है। व्यवस्था की स्थिरता को बनाये रखने के लिए प्रक्रियाएं मुख्यत: उत्तरदायी होती हैं, इस कारण आमण्ड व्यवस्थाओं के विश्लेषण को इतना महत्व नहीं दिया जितना प्रक्रियाओं को दिया है। उसने भी राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्याख्या में ईस्टन के साथ ही तीन चरण स्वीकार किए हैं, यह इस प्रकार हैं-

(क) राजनीतिक व्यवस्था के निवेश,

(ख) रूपान्तरण प्रक्रिया, और

(ग) राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत।

(क) राजनीतिक व्यवस्था के निवेशों के सम्बन्ध में आमण्ड भी ईस्टन की तरह ही दोहरा विभाजन-मांगों और समर्थनों, को स्वीकार करता है तथा मांगों और समर्थनों को करीब-करीब उसी अर्थ में लेता है, किन्तु आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था के प्रकायों का अधिक संरचनात्मक विचार अपनाया है इसलिए वह मांगों को ईस्टन से अधिक व्यापक अर्थ लेते हुए इनको चार प्रकार की श्रेणियों में विभक्त करता है। उसके अनुसार निवेशों के रूप में आने वाली मांगों की मोटे रूप से चार श्रेणियाँ हो सकती हैं। यह हैं-(1) वस्तुओं और सेवाओं के वितरण या आवन्दन सम्बन्धी मांगे, (2) व्यवहारों को नियन्त्रित करने सम्बन्धी मांगे, (3) राजनीतिक सहभागिता सम्बन्धी मांगे, और (4) संचार से सम्बन्धित मांगे।

प्रथम प्रकार की मांगों में तनख्याह बढ़ाने या शिक्षा की व्यवस्था करने जैसी मांगे रहती है। दूसरी प्रकार की मांगो का सम्बन्ध सार्वजनिक व्यवहार को नियन्त्रित करने की सुरक्षात्मक व्यवस्थाएं करने से है। तीसरी में मत देने का अधिकार या अन्य प्रकार की निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित होने सम्बन्धी मांगे आती हैं तथा चौथे प्रकार में सूचनाएं और जानकारी प्राप्त करने या सूचनाएं देने सम्बन्धी मांगे होती हैं। इस तरह, आमण्ड मांगों की व्याख्या में ईस्टन से कहीं अधिक विस्तार में गया है। उसका अभिमत है कि मांगों को किसी एक श्रेणी में रखा जा सकता है। ईस्टन ने मांगों के इस तरह के वर्गीकरण का प्रयास नहीं किया है।

मांगों की तरह ही आमण्ड ने निवेश के दूसरे पक्ष, समर्थनों को भी चार श्रेणियों में विभक्त किया है। उसके अनुसार समर्थन भी मोटे तौर पर हर राजनीतिक व्यवस्था में चार प्रकारों में से किसी एक रूप में प्रकट होता है। समर्थनों का अर्थ आमण्ड ने वही स्वीकार किया है जो ईस्टन ने किया है। यह चार प्रकार के समर्थन इस प्रकार हैं- (1) दृव्यात्मक समर्थन, (2) आज्ञाकारिता के समर्थन, (3) सहभागिता समर्थन और (4) श्रद्धात्मक समर्थन।

दृव्यात्मक समर्थन में कर इत्यादि देना सम्मिलित होता है, जबकि आज्ञाकारिता समर्थन में सरकार के कानून के पालन को लिया जा सकता है। सहभागिता समर्थन मत देकर या मत अभिव्यक्त करके दिया जाता है। श्रद्धात्मक समर्थन में शासकों का सम्मान करना या राष्ट्र के प्रतीकों जैसे राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान या राष्ट्रप्रतीक को सम्मान देना है। आमण्ड की यह मान्यता है कि मांगों या समर्थनों के आकार-प्रकार की निर्णायक राजनीतिक संस्कृति होती है, लोगों की अभिवृत्तियों से इनका सम्बन्ध होता है। यहां आमण्ड निवेशों की आधारभूमइ तैयार करने में राजनीतिक संस्कृति की भूमिका को विशेषकर राजनीतिक समाजीकरण और राजनीतिक भर्ती को महत्वपूर्ण मानता है। इसका अभिमत है कि मांगे किस प्रकार की होंगी तथा समर्थनों में जनता

की सक्रियता की मात्रा कितनी होगी इसका नियामक जनता का राजनीतिकरण समाजीकरण और राजनीतिक भर्ती ही होती है।

राजनीतिक समाजीकरण स्वयं में निवेश नहीं है। यह निवेशों की प्रकृति, उग्रता और मात्रा का नियामक है। राजनीतिक समाज में व्यक्तियों का जितना राजनीतिक समाजीकरण गेम उतनी ही उनकी राजनीतिक सक्रियता और सहभागिता घट या बढ़ जाएगी तथा उसी के अनुसार मांगों की प्रकृति में परिवर्तन आ जाएगा। उदाहरण के लिए, किसी राजनीतिक समाज में बेहूदा मांगे बहुसंख्या में पेश होती है तथा दूसरे समाज में ऐसा नहीं होता है इसको राजनीतिक समाजीकरण के आधार पर ही समझा जा सकता है।

राजनीतिक समाजीकरण और राजनीतिक भर्ती का सीधा सम्बन्ध राजनीतिक व्यक्ति से होता है, अर्थात् राजनीति में व्यक्तियों की सक्रियता का नियमन इन्हीं से होता है, राजनीतिक व्यवस्था में मांगों और समर्थनों का सम्बन्ध व्यक्ति की राजनीतिक सक्रियता से रहता है। अत: इसको हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं कि राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक भर्ती का प्रेरक होता है और इन दोनों से व्यक्ति का राजनीतिक और राजनीतिक व्यवस्था में उसकी सक्रियता का नियमन होता है जो अन्तत: मांगों, समर्थनों को प्रभावित करती है। इसलिए मांगों की मात्रा, उग्रता, तीव्रता और प्रकृति इसी तरह समर्थनों की मात्रा, उग्रता, तीव्रता और प्रकृति का निर्धारण बहुत कुछ राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित मानव-समुदाय के राजनीतिक समाजीकरण और भर्ती द्वारा होता है। यही कारण है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं के निवेश, हर व्यवसाय अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत होते हैं। यहां इस तथ्य का ध्यान रखना है कि राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक भर्ती तथा मांगों और समर्थनों की प्रकृति तथा राजनीतिक व्यवस्था के निवेशों में गहरा सम्बन्ध रहता है।

(ख) आमण्ड ने रूपान्तरण का ईस्टन का विचारबन्ध अपनाते हुए भी उसमें विशेषणात्मक और प्रत्ययी दोनों ही ढंग से बहुत अधिक विस्तार कर दिया है। आम रूपान्तरण प्रक्रिया को नया सूत्रीकरण दिया है। उसके नवीन रूपान्तरण प्रतिपादन का रूपान्तरण प्रक्रिया को प्रकार्यात्मक दृष्टि देना कह सकते हैं। उसका मत है कि रूपान्तरण प्रक्रिया दोहरी होती है। एक तरफ, रूपान्तरण में अनेक ऐसी क्रियाएं होती हैं, मांगों का ऐसा संसाधन किया जाता है कि वह निर्णय के लिए शासन द्वारा ध्यान लायक बनाई जाती है। दूसरी तरफ, विशिष्ट क्रियाएं हैं, जिनके माध्यम से शासन ध्यान देने योग्य बनाई गई मांगों पर वास्तव में ध्यान दिया जाता है जिससे उन आधिकारिक निर्णय किया जा सके। मांगो के संसाधन और रूपान्तरण को आमण्ड ने चार भागों में विभक्त करके, प्रकार्यात्मकता के प्रवर्गों में बाँटा है। उनमें एक मांगों के स्थानान्तरण का राजनीतिक प्रकार्य-प्रवर्ग है और दूसरा मांगों के रूपान्तरण का शासन प्रकार्य-प्रवर्ग है।

प्रथम में, मांगों को संसाधित करके रूपान्तरण योग्य बनाया जाता है। इसमें सरकार की संरचनाएं ही सम्मिलित नहीं होती है, अपितु राजनीतिक दृष्टि से गैर-सरकारी राजनीतिक संरचनाएं भी सम्मिलित होती हैं। आमण्ड तो यह मानते हैं कि इसमें मुख्यतया गैर-सरकारी राजनीतिक संस्थाएं ही प्रमुख भूमिका निभाती हैं। राजनीतिक दबाव समूह और हित समूह या अन्य ऐसे ही संगठन इस स्तर पर मांगों के संसाधन रूपान्तरण में सरकारी संरचनाओं के साथ अन्तःक्रियाशील रहते हैं। इस स्तर पर से सम्बन्धित पक्ष और सरकार के बीच मध्यस्थता करने

वाले निकाय भी सक्रिय रहते है। इसलिए आमण्ड इस प्रक्रिया को रूपान्तरण प्रक्रिया में सम्मिलित मानता है तथा विशेष महत्व देता है।

दूसरे में, मांगों को आधिकारिक निर्णयों की स्थिति तक पहुँचाने की औपचारिकता सम्मिलित होती हैं। इसमें प्रमुखतया शासन संरचनाएं सम्मिलित होती हैं। किन्तु, स्तर पर भी वे तत्व सक्रिय रहते हहैं, जिन्होंने मांगो को संसाधित करके शासकों के देने की स्थिति तक धकेला होता है। यह मांगों के रूपान्तरण का नाजुक स्तर होता है। मांग के बारे में, पक्ष या विपक्ष में, उसके संशोधित या परिवर्तित या वैसे ही रूप में अधिकारिक निर्णय होता है। इस कारण वे सब पक्ष जो मांग से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखते हैं, इस स्तर पर भी सक्रिय रहते हैं, जिससे मांग का रूपान्तरण उसी प्रकार हो जाए जिस प्रकार उन्होंने चाहा है। अत: आमण्ड के अनुसार रूपान्तरण दो स्तरीय मानी जा सकती है। आमण्ड ने एक को राजनीतिक रूपान्तरण स्तर तथा दूसरे को सरकारी रूपान्तरण स्तर कहा है। हर स्तर पर अनेक रूपान्तरण प्रवर्ग सम्मिलित हैं। इनका विस्तार से विवेचन करना ऊपर्युक्त होगा।

(1) राजनीतिक स्तर पर रूपान्तरण प्रक्रिया-राजनीतिक स्तर पर रूपान्तरण प्रक्रिया में आमण्ड और पावेल ने तीन प्रकार्यात्मक प्रवर्गों को प्रमुख माना है। यह तीन वर्ग हैं- (क) हित अभिव्यक्ति, (ख) हित- समूहीकरण, और (ग) राजनीतिक संचरण।

(क) हित- अभिव्यक्ति वह प्रकार्य है जिसमें व्यक्ति और समूह अपनी चाहो और सीमाओं को सरकार या राजनीतिक व्यवस्था के ध्यान योग्य बनाने के लिए प्रारम्भिक रूप प्रदान करके सत्ताओं को अपने उद्देश्यों के अनुरूप विधियों से सम्बोधित करते हैं। मांग के रूपान्तरण का प्रथम चरण है। आगे के चरण इस पर बहुत आश्रित हो सकते हैं। इस चरण में मांग को किस प्रकार का रूप प्रदान किया जाएगा, उसके साथ क्या शर्ते जोड़ी जाएंगी तथा किन विधियों का प्रयोग करके उसको राजनीतिक व्यवस्था में रूपान्तरण के दूसरे स्तर तक पहुँचाया जायेगा इत्यादि बहुत महत्व रखता है। इससे राजनीतिक व्यवस्था की सीमाओं का निर्धारण होता है। रूपान्तरण का यह अर्थ राजनीतिक व्यवस्था की सीमाओं पर अनेक संरचनाओं द्वारा निष्पादित होता है। हित समूह और स्वयं के प्रतिनिधित्व से लेकर संस्थाओं तक को सम्मिलित किया जाता है। संचार के साधनों के द्वारा भी यह किया जाता है। जिसमें प्रदर्शनों जन-सम्पर्क साधनों को लिया जा सकता है। इस स्तर पर संचार या संप्रेषण की शैलियों का भी महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। यह अनेक प्रकार की तथा विचित्र प्रकार की हो सकती हैं। विकासशील राज्यों में मांगों की सम्प्रेषण-शैलियाँ विचित्रतम रूपों में देखी गई हैं। उदाहरण के लिए, लेखक को श्रीलंका में एक विचित्र शैली का देखने का अवसर मिला। एक ट्रेड यूनियन के नेता द्वारा अपनी मांग को प्रभावी रूप से प्रस्तुत करने में सफलता नहीं मिलने के कारण वह एक बहुत ऊँचे नारियल के पेड़ पर चढ़ गया और वहाँ से कूदकर मरने की धमकी के द्वारा अपनी ट्रेड यूनियन की मांग को राजनीतिक व्यवस्था के पास संसाधन के लिए सम्प्रेषित करने में इस रूप में सफल हो गया कि सब लोग इस मांग के बारे में अचानक ही जान गए और मांग को व्यापक प्रचार व समर्थन मिल गया। आमण्ड ने हित-अभिव्यक्ति को मांगों का प्रतिपादन सूत्रीकरण कहा है, जो राजनीतिक व्यवस्था की रूपान्तरण प्रक्रिया का प्रथम चरण है।

(ख) हित-समूहीकरण को आमण्ड विकल्पों के रूप में, मांगों का संयुक्तीकरण कहता है। ईस्टन के मांगों के न्यूनीकरण को आमण्ड के हित-समूहीकरण के समान माना सकता है। इसमें अनेकों मांगों को एक सामान्य मांग में रूपान्तरित करके उसको सामान्य निर्णय के माध्यम से समाधान कर दिया जाता है। यह रूपान्तरण प्रक्रिया का दूसरा चरण है।

आमण्ड की यह मान्यता है कि हित-समूहीकरण सही अर्थो में निर्णय के लिए रूपान्तरण के लिए मांगों के संयुक्तीकरण के माध्यम से अनेक विकल्प प्रस्तुत करता है। इससे रूपान्तरण प्रक्रिया में बहुत समूहिकरण हो जाती है। क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था के सामने रूपान्तरण के लिए इससे अनेक विकल्प प्रस्तुत हो जाते हैं। इस कारण, रूपान्तरण प्रक्रिया में हित-समूहीकरण का विशेष महत्व माना जाता है। इन विकल्पों की राजनीतिक व्यवस्था के खुलेपन का सबूत मानी जाती है। इससे भी इसका महत्व अधिक हो जाता है।

(ग) राजनीतिक संचरण हर प्रकार की राजनीतिक अन्त:क्रियाओं में होता है। किसी भी प्रकार की मानव प्रक्रिया संचार के बिना संभव नहीं हो सकती है। राजनीतिक व्यवस्था की रूपान्तरण प्रक्रिया में संचार-प्रक्रिया का विशेष स्थान होता है। संचार प्रक्रिया की संरचनाएं ही समाज और अन्य व्यवस्थाओं को आपस में जोड़ती है। इन्हीं से राजनीतिक व्यवस्था में अन्त:क्रियाएं सम्भव होती हैं। आमण्ड और पावेल का कहना है कि रूपान्तरण प्रक्रिया को संचार सम्बन्धी तीन तथ्य प्रभावी ढंग से करते हैं। यह तथ्य हैं- (1) संचार की संरचनाओं की उपस्थिति या उनका अभाव (2) सूचना या जानकारी की मात्रा, जो संचार की संरचनाओं में से गुजरती हैं या द्वारा दी जाती है, तथा (3) संचार की संरचनाओं की स्वतन्त्रता या इसका अभाव।

संचार की संरचनाओं से ही रूपान्तरण प्रक्रिया के लिए मांगे और समर्थन राजनीतिक व्यवस्था में आते हैं और इन्हीं के माध्यम से राजनीतिक रूपान्तरण, राजनीतिक अवस्था में निर्गतों के रूप में पहुँचते हैं। अत: संचार की संरचनाएं निवेशों को रूपान्तरण के लिए ले जाने और रूपान्तरणों को निर्गतों के रूप में राजनीतिक व्यवस्था और अन्य व्यवस्थाओं तथा पर्यावरण में पहुँचाने का कार्य करती हैं। इस कारण रूपान्तरण प्रक्रिया, संचार संरचनाओं के ऊपर लिखे तीन लक्षणों से बहुत कुछ ओर नियमित होती हैं। संचार संरचनाओं का प्रभाव राजनीतिक रूपान्तरण के पर ही नहीं शासकीय रूपान्तरण के स्तर पर भी पड़ता हैं। इनसे निवेश और आपस में जुड़ते है। ईस्टन जिस प्रीतसम्भरण की वात करते हैं वह निर्गतों से निवेशों की तरफ ही माना जाता है। इस बात में आमण्ड ईस्टन से कहीं आगे निकल और यह प्रतिपादन करते हैं कि संचार निवेशों से रूपान्तरण की ओर या निर्गतों निवेशों की तरफ न होकर सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था की रूपान्तरण प्रक्रिया में रहता है और इस कारण सम्पूर्ण सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर आच्छादित हो जाता है। इसी के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न संरचनात्मक भाग अन्त:क्रियाशील होते हैं तथा राजनीतिक व्यवस्था और पर्यावरण में सम्बन्ध-सूत्रता स्थापित होती है। इसको आने एक रेखाचित्र में विशेष रूप से समझाने का प्रयास किया जाएगा कि किस प्रकार यह निवेशों, रूपान्तरण प्रक्रिया, निर्गतों तथा पर्यावरण को परस्पर जोड़ता है।

राजनीतिक स्तर पर रूपान्तरण प्रक्रिया के विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि राजनीतिक व्यवस्था में मांगों का संसाधन और रूपान्तरण केवल शासकीय संरचनाओं के द्वारा नहीं होता है। सही बात तो यह है कि रूपान्तरण प्रक्रिया का राजनीतिक स्तर ही विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है। वास्तविक रूपान्तरण इसी स्तर पर होता है। यह अनौपचारिक होने के कारण लचीलापन लिए

होता है तथा इसमें शासकों के मान-सम्मान के मुद्दे नहीं उलझे होते हैं। आमण्ड ने इसी कारण मांगों के संसाधन और रूपान्तरण का राजनीतिक स्तर पर अत्यधिक महत्व का माना है। यह ऐसी रूपान्तरण प्रक्रिया है जहाँ मांगों के बारे में सब कुछ निश्चित हो जाता है, जिससे शासकीय स्तर पर रूपान्तरण की प्रक्रिया केवल औपचारिक बनकर रह जाती है। शासकीय स्तर के रूपान्तरण, इन्हीं रूपान्तरणों को विधिक रूप देना मात्र हो जाते हैं। अत: आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में विशेषकर विभिन्नीकृत और विशेषीकृत व्यवस्थाओं में जहाँ संचार या सम्प्रेषण साधन स्वतन्त्र रहते हैं रूपान्तरण का राजनीतिक स्तर आधारभूत महत्व रखता है।

(2) शासकीय स्तर पर रूपान्तरण प्रक्रिया-सरकारी स्तर पर रूपान्तरण प्रक्रिया में आमण्ड ने तीन प्रकार्यात्मक प्रवगों को सरकार के परम्परागत तीन कार्यों के अनुरूप ही माना है। वे यह मानते हैं कि यह निर्गत नहीं हैं वरन् सरकारी रूपान्तरण हैं त्जिनको आधिकारिक रूपान्तरण कहा जा सकता है। उसका अभिमत है कि इन रूपान्तरणों से कुछ निर्गत सामने आते हैं। यह रूपान्तरण निम्नलिखित हैं-

(क) नियम-निर्माण,

(ख) नियम-प्रयुक्ति,

(ग) नियम- अधिनिर्णय।

सरकारी स्तर के रूपान्तरण वैधता की परिधि में निष्पादित होते हैं। इनमें औपचारिकता तथा विधिकता इतनी अधिक होती है कि इनका रूपान्तरण राजनीतिक स्तर के रूपान्तरण से बहुत अधिक बेमेल नहीं हो सकता है। इनमें भी राजनीतिक रूपान्तरण प्रक्रिया की तरह कम या एक निश्चित प्रतिमान-प्रक्रिया की प्रधानता होती है। नियम-निर्माण के बाद ही नियम-प्रयुक्ति और नियम-अधिनिर्णय की स्थिति आती है। आमण्ड यह मानते हैं कि जटिल व्यवस्थाओं में शासकीय रूपान्तरण में परम्परागत सरकारी कार्यों की औचित्यता नहीं रह गई है। शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं रह गया है और अब व्यवस्थापन, कार्यपालन और न्यायपालन के कार्य सुनिश्चित संरचनात्मक व्यवस्थाओं के द्वारा निष्पादित नहीं होते हैं। यही कारण है कि आमण्ड ने सरकार के तीन परम्परागत कार्य सरकारी स्तर पर निष्पादित माने हैं, किन्तु उसने इनको संरचनात्मक दृष्टि से न देखकर प्रकार्यात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। इसलिए ही वह परम्परागत सरकारी कार्यो को नये नाम देता है जो नया अर्थ रखते हैं तथा भिन्न प्रकार की संरचनाओं द्वारा निष्पादित होते हैं। उसने व्यवस्थापन कार्य के स्थान पर नियम-निर्माण का कार्य माना है, कार्यपालिका कार्य के स्थान पर नियम- प्रयुक्ति का माना है, और न्यायपालिका कार्य के स्थान पर नियम-अधिनिर्णय का कार्य है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण की व्याख्या करने वाले अधिकांश भारतीय लेखकों ने आमण्ड और पावेल के दारा विवेचित सरकारी स्तर के रूपान्तरणों को लेकर भ्रान्तिपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। प्रथम भ्रान्तिपूर्ण निष्कर्ष इन रूपान्तरणों को राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत मानना है। डॉ. एस.पी. वर्मा ने अभी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक पोलिटिकल थ्योरी (1975) में भी इन रूपान्तरणों को निर्गत माना है। इनके संबंध में दूसरा भ्रान्तिपूर्ण निष्कर्ष तो संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण को ही नकारना है। इसमें आमण्ड द्वारा सरकारी स्तर के रूपान्तरणों की तीन श्रेणियों या प्रकारों को के परम्परागत त्रिमुखी कार्यो-व्यवस्थापन, कार्यपालन और

न्यायपालन के मानना सम्मिलित है। आमण्ड और पावेल ने अपनी पुस्तक "कम्पेरेटिव पोलिटिक्स डेवलपमेन्टल अप्रोच" में इन दोनों के बारे में स्पष्ट रूप से लिखा है कि सरकारी स्तर पर रूपान्तरण निर्गत नहीं है। इसी तरह, व्यवस्थापन कार्य और नियम, निर्माण का पूर्णतया एक समान नहीं होकर व्यापकता की दृष्टि से बहुत कुछ भिन्न प्रकार के हैं। उन निष्पादन की संरचनात्मक व्यवस्था भी अलग-अलग प्रकार की कही जा सकती है। इसी तरह की तीसरी भ्रांति का संकेत हमने मांगों और समर्थनों के विवेचन में दिया। आमण्ड ने ईस्टन की ही तरह राजनीतिक व्यवस्था के निवेश, मांगों और समर्थनों को माना है, जबकि भारतीय लेखकों ने राजनीतिक समाजीकरण, हित-समूहीकरण और राजनीतिक भर्ती और संचरण को राजनीतिक व्यवस्था के निवेश मानकर विवेचित किया है। प्रोफेसर एस.पी. वर्मा ने भी इनको निवेश ही माना है तथा इसी तरह व्यवस्थापन, कार्यपालन और न्यायपालन कार्य को नियम-प्रयुक्ति और नियम-अधिनियम के सूमान मानकर उनका विवेचन करना तक आवश्यक नहीं माना है। जबकि आमण्ड और पावेल स्पष्ट रूप से इन तीन रूपान्तरणों में अन्तर करते हैं।

(ग) राजनीतिक व्यवस्था के निर्गतों को लेकर जो गलत धारणा बनी हुई है उसका विवेचन हम ऊपर कर चुके हैं। सरकारी या आधिकारिक रूपान्तरों-नियम-निर्माण, नियम-प्रयुक्ति और नियम-अधिनिर्णय को राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत कहना गलत है। इसको निर्गत मानना संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण को ईस्टन के निवेश-निर्गत विश्लेषण के अनुरूप बनाना है। आमण्ड ने स्पष्ट रूप से इन्हें रूपान्तरण तथा निर्गतों के इनसे भिन्न चार प्रकार माने हैं जो इस प्रकार हैं-

(1) उगाहने या लेने वाले निर्गत
(2) नियन्त्रक निर्गत,
(3) वितरक निर्गत,
(4) प्रतीकात्मक निर्गत।

आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था के निर्गतों के विवेचन में ईस्टन का मॉडल स्वीकार नहीं किया है। उनके अनुसार राजनीतिक व्यवस्था के निर्गतों का सम्बन्ध निवेशों की तरह ही राजनीतिक समाजीकरण और भर्ती से जुड़ा हुआ है। राजनीतिक व्यवस्था निर्गतों की दृष्टि से उपरोक्त चार प्रकार के कार्य-सम्पादनों की प्रक्रिया का सूत्रपात करती है। यह समर्थनों के समान ही, जिनका हम निवेशों में उल्लेख कर चुके हैं, माने जा सकते हैं। हर राजनीतिक व्यवस्था के निर्गतों का सीधा सम्बन्ध समर्थनों से इसलिए हो जाता है कि इन्हीं से समर्थन घटते या बढ़ते हैं। इनका रूपान्तरण पर भी प्रभाव पड़ता है। अत: निर्गतों की मांगों के साथ भी जुड़ा हुआ पाते हैं। किन्तु, यह मांगों के प्रति अनुक्रियात्मक हों यह आवश्यक नहीं है। यह मांगों के अनुरूप या प्रतिकूल या उनसे असम्बन्धित भी हो सकते हैं। यहां इनका मांगों से असम्बन्धित होना यह स्पष्टीकरण आवश्यक कर देता है कि बिना मांगों के निर्गत कहाँ से और कैसे आए? इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि रूपान्तरण स्तर पर कई बार ऐसे पहलू उभर आते हैं जिनका रूपान्तरण करने पर ही निवेश में आई किसी मांग को रूपान्तरण की अवस्था में लाया जा सकता है। अत: इनका (निर्गत) मांगों से असंबंधित होना अस्वाभाविक या असम्भव नहीं है। पर सामान्यतया अधिकांश निर्गत मांगों के प्रति अनुक्रियाशील ही माने जा सकते हैं।

निर्गतों में पहली श्रेणी का सम्बन्ध कर वसूली, व्यक्तिगत सेवाएं और सहयोग तथा योगदान से है। दूसरे में मानव व्यवहार को नियमित और नियन्त्रित करना सम्मिलित रहता है। वितरणात्मक निर्गतों में वस्तुओं, सेवाओं, लाभों, अवसरों, सम्मानों इत्यादि का आवन्दन सम्मिलित है। प्रतीकात्मक निर्गत मूल्यों की पुष्टि तथा राजनीतिक प्रतीकों का प्रदर्शन नीतियों और उद्देश्यों की घोषणा से सम्बन्धित होता है। आमण्ड द्वारा राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या के तीन चरणों को रेखाचित्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

आमण्ड की राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्याख्या का रेखाचित्र केवल निवेश रूपान्तरणों और निर्गतों के समझाने का सीमित उद्देश्य लेकर बनाया गया है। तथ्यात्मक दृष्टि से इस चित्र को सही बनाने से यह इतना जटिल बन जाता है कि फिर उससे यह सीमित उद्देश्य भी पूरा नहीं होता है। चित्र में पर्यावरण के अन्तर्गत, जिसको बाह्य पर्यावरण का नाम दिया गया है, जिसमें अन्य राजनीतिक व्यवस्थाएं और उनकी सामाजिक व्यवस्थाएं अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण आता है, उसके अन्दर सामाजिक व्यवस्था को दिखाया गया है। इस सामाजिक व्यवस्था से निवेश, मांगों और समर्थनों के रूप में गहरी रेखा से चित्रित राजनीतिक व्यवस्था में जाते हैं। वहाँ उनका राजनीतिक और फिर शासकीय रूपान्तरण होकर उत्पादनों के रूप में वे पुन:सामाजिक व्यवस्था में आते हैं। इसमें सम्पर्क राजनीतिक संचार से इस तरह रहता है कि सब संरचनाएं अन्त: सम्बन्धित बन जाती है। इसी तरह निवेशों से रूपान्तरणों और उत्पादनों या निर्गतों पर राजनीतिक समाजीकरण और राजनीतिक भर्ती का प्रभाव जो सब स्तरों पर प्रत्यक्ष पड़ता है दिखाया गया है।

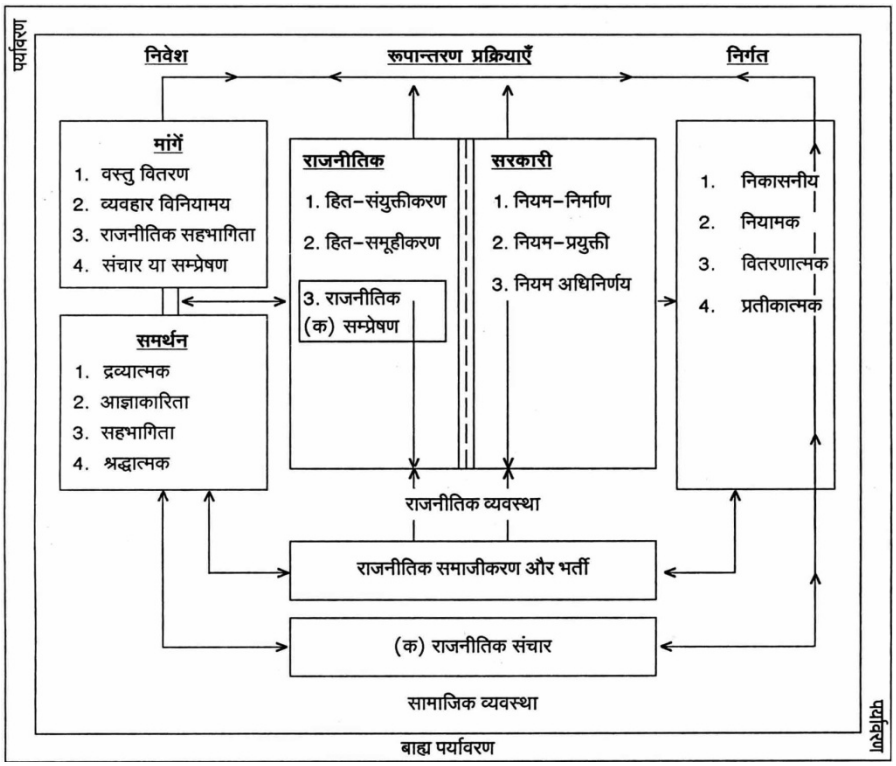

आमण्ड के राजनीतिक व्यवस्था मॉडल का रेखाचित्र

आमण्ड और पावेल के द्वारा दी गई राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्याख्या के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उन्होंने ईस्टन का ही मॉडल अपनाते हुए राजनीति व्यवस्था की व्याख्या राजनीतिक व्यवस्था के निवेश, इसकी रूपान्तरण प्रक्रिया और निर्गतों पर उससे भिन्न और अधिक व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है।

10.5 तुलनात्मक राजनीति का सरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

आमण्ड द्वारा प्रतिपादित संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण का सीधा सम्बन्ध तुलनात्मक राजनीति से जोड़ा जाता है। तुलनात्मक राजनीति का आधुनिक रूप ही राजनीति व्यवस्था की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्याख्या से बनाया जा सका है। व्यवस्था विश्लेषण का एक मॉडल ईस्टन द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इसको सामान्यतया राजनीतिक व्यवस्था की निवेश-निर्गत व्याख्या कहा जाता है। व्यवस्था विश्लेषण का दूसरा मॉडल आमण्ड के द्वारा प्रतिपादित किया गया है तथा इसको राजनीतिक व्यवस्था की 'संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक' व्याख्या कहा जाता है। अत: संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण व्यवस्था विश्लेषण का एक विशिष्ट रूप में प्रयोग है। इसमें राजनीतिक व्यवस्था को संरचनाओं और प्रकार्यों के रूप में परिभाषित करके समझने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु प्रमुख अवधारणा राजनीतिक व्यवस्था की ही रहती है। इसलिए ही इसे तुलनात्मक राजनीति में व्यवस्था विश्लेषण के विशेष प्रयोग की संज्ञा दी जाती है।

सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त के फलस्वरूप तुलनात्मक राजनीति में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण अस्तित्व में आया। यह अन्वेषण या विश्लेषण का एक ऐसा ढंग है जिसके माध्यम से इस बात की व्याख्या की जा सकती है कि राजनीतिक व्यवस्था में कौनसी राजनीतिक संरचनाएं कौनसे बुनियादी कार्य करती है? यही कारण है कि इसको तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए व्यापक रूप से अपनाया गया है। आमण्ड ने यह मत अभिव्यक्त किया है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अवधारणा से ही एक दूसरे से मेल न खाने वाली विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिए तुलना के प्रतिमान प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अत: संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण व्यवस्था विश्लेषण की परिधि में रहते हुए भी राजनीतिक व्यवस्था की विशेष रूप से व्याख्या और उसका तुलनात्मक राजनीति में उपयोग सम्भव बनाता है। तुलनात्मक. राजनीति में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता क्यों हुई इसके विवेचन से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी। अत: हम संक्षेप में इस दृष्टिकोण की तुलनात्मक राजनीति में आवश्यकता का विवेचन दे रहे हैं।

10.6 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता

तुलनात्मक राजनीति में व्यवस्था विश्लेषण का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण ईस्टन ने निवेश-निर्गत विश्लेषण से उत्पन्न असंतोष के कारण अस्तित्व में आया यह कहना तो अतिशयोक्ति होगी। फिर भी, इस उपलब्ध के प्रचलन का एक कारण व्यवस्था विश्लेषण को ईस्टन द्वारा अमूर्तीकरण के ऐरने स्तर तक पहुँचा देना है जहाँ उसका व्यावहारिक प्रयोग कठिन सा हो जाता है। किन्तु तुलनात्मक राजनीति में इसका उपयोग केवल इसी कारण से हुआ हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। व्यवस्था विश्लेषण राजनीति-विज्ञान में राजनीति का सामान्य सिद्धान्त खोजने में प्रमुख प्रयत्न माना जाता है। किन्तु ईस्टन के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था के

निवेशों और निर्गतों का विश्लेषण राजनीतिशास्त्र को सामान्य सिद्धान्त निर्माण में बहुत आगे तक नहीं ले जा पाया है। तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषणों में ईस्टन का मॉडल और भी सीमित उपयोगिता रखता है। अत: आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्थाओं को संरचनाओं और प्रकार्यों के रूप में समझने का प्रयत्न का विचार प्रस्तुत किया। उसका मत है कि राजनीतिक व्यवस्थाएं संरचनाओं और प्रकार्यों के आधार पर समझी जाएं तो परिवर्तन और विकास की दिशाओं का स्पष्टीकरण करना आसान हो जाएगा। अत: तुलनात्मक राजनीति में संरचनात्मक- प्रकार्यात्मक अवधारणा का प्रयोग आवश्यक माना जाने लगा।

तुलनात्मक राजनीति के विद्वान यह महसूस करते रहे हैं कि न केवल सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित किया जाए अपितु इसकी प्रमुख गतिविधियों की विभिन्न संरचनाओं के साथ सम्बन्ध सूत्रता का ज्ञान भी प्राप्त किया जाए। ईस्टन ने सम्पूर्ण राष्ट्रीय व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करने की बात तो की, किन्तु इस व्यवस्था की संरचनाओं और उनसे संबंधित प्रक्रियाओं में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास नहीं किया। इसलिए ऐसा प्रयास आवश्यक हो गया जो राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मकता और उसके प्रकार्यों का ज्ञान करा सके। इस दृष्टिकोण में ऐसा प्रयास सम्मिलित है। इस कारण यह उपागम तुलनात्मक विश्लेषण में आवश्यक बन गया।

राजनीतिक व्यवस्थाओं की सामर्थ्य या क्षमता ही एक ऐसा लक्षण है जो तुलनात्मक विश्लेषणों में विशेष तौर से जानना आवश्यक समझा जाने लगा है। ईस्टन ने इसकी बात तो की है किन्तु इससे अधिक उसकी चिन्ता व्यवस्था की सातत्य से थी और इसलिए ऐसे प्रवर्गों के आधार पर तुलना करने की जरूरत महसूस की जाने लगी तो राजनीतिक व्यवस्था की जीवित रहने की दशाओं तक ही सीमित न रहकर यह भी समझा सके कि इसको जीवित रखने के लिए किन-किन तत्वों की आवश्यकता है ? संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण, राजनीतिक व्यवस्था के ढाँचे अथवा संरचना के गठन और उसके कार्यो की प्रक्रियाओं के बीच तालमेल के कारणों तथा परिणामों को पहचानने का प्रयास करके उन तत्वों का ज्ञान कराने में, जिनसे व्यवस्थाओं में गत्यात्मकता और जीवित रहने की सामर्थ्य बनी रहती है, सहायता करता है। अत: ऐसे उपागम के रूप में यह आवश्यक माना जाने लगा।

तुलनात्मक राजनीति में भी राजनीति का सामान्य सिद्धान्त बनाने का लक्ष्य रहता है। अत: इसमें भी ऐसी अवधारणाओं की आवश्यकता महसूस की जाती रही है जो ऐसे सिद्धान्त के निर्माण में सहायता कर सकें। तुलनात्मक राजनीति में ईस्टन का 'निवेश-निर्गत' विश्लेषण सिद्धान्त निर्माण में बहुत सहायक न होने के कारण ऐसी वैकल्पिक अवधारणा की आवश्यकता महसूस की जाने लगी जो ईस्टन के विश्लेषण से अधिक उपयोगी और सिद्धान्त निर्माण में सहायक हो। आमण्ड का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण इस दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययनों में अधिक आवश्यक हो गया और यही कारण है कि इसका सबसे अधिक उपयोग तुलनात्मक राजनीति में किया जाने लगा है।

इस प्रकार संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण एक तरफ तो ईस्टन के द्वारा प्रयुक्त व्यवस्थाई विश्लेषण की व्याख्या में उभरी कमियों को दूर करने के लिए और दूसरी तरफ तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को अधिक यथार्थवादी ढंग से

प्रयुक्त करने के लिए आवश्यक माना गया। सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो इसकी आवश्यकता उन सब तथ्यों से भी स्पष्ट की जा सकती है जिनसे व्यवस्था विश्लेषण की राजनीतिक विश्लेषणों में आवश्यकता महसूस की गई थी। संक्षेप में इस दृष्टिकोण की आवश्यकता के बारे में यही कहा जा सकता है कि व्यवस्था की अन्तर्वस्तु से उसके कार्यात्मक पक्ष को अलग करके समझने के लिए संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण अधिक उपयुक्त दिखाई देता है।

10.7 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अवधारणा का तुलनात्मक राजनीति में प्रयोग

आमण्ड ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अवधारणा का तुलनात्मक विश्लेषण में प्रयोग करने के लिए ईस्टन का ही निवेश-निर्गत मॉडल स्वीकार किया है। इससे वह राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रकृति को समझकर अनेक संवर्गो के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना करने की बात कहता है। यह बात सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि आमण्ड के राजनीति विज्ञान का क्षेत्र तुलनात्मक राजनीति है। यह मानता है कि आधुनिक पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्थाओं के आज के रूप को एक ऐसा आदर्श माना जा सकता है जिसकी ओर सभी विकासशील देश आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। अगर इस बात को मान लिया जाए तो आमण्ड का अभिमत है कि इस आधार पर वर्तमान की सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है कि वे अपने परम्परागत स्वरूप से निकलकर आधुनिक बनने की प्रक्रिया में इस समय संक्रमण की स्थिति में है? इस स्थिति के ज्ञान से राजनीतिक व्यवस्थाओं के बारे में तुलनात्मक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और परिवर्तनों के विकास के संदर्भ में देखा जा सकता है।

आमण्ड की रूचि संस्थाओं से अधिक प्रक्रियाओं में होने के कारण वह राजनीतिक व्यवस्था के भीतर की संरचनाओं को उनके प्रकार्यों के माध्यम से समझने का प्रयत्न करता है। उसके अनुसार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को कुछ निश्चित कार्यो को पूरा करना होता है। वास्तव में राजनीतिक विकास के संदर्भ में किसी राजनीतिक व्यवस्था की क्या स्थिति है, इसका निर्धारण इसी आधार पर किया जा सकता है कि वह अपने कार्यो का कितनी कुशलता के साथ पूरा करती है। इस आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की व्यापक तुलनाओं का मार्ग खुल जाता है।

आमण्ड ने व्यवस्था विश्लेषण के संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग तुलनात्मक-अध्ययनों में इस तरह किया है जिससे वह राजनीतिक विकास का सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित कर सके। राजनीतिक विकास के स्तरों का निर्धारण भी उसने राजनीतिक व्यवस्था में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक परिवर्तनों के आधार पर किया है। इसके लिए उसने संरचनात्मक विभेदीकरण, जो उसकी संरचना की व्याख्या के अनुसार श्रमइका विभेदीकरण है, उप-व्यवस्थाओं की स्वायत्तता और संस्कृति के लौकिककिरण के तीन अन्तःसम्बन्धित पीरवत्यों का प्रयोग किया है। इस तरह आमण्ड राजनीतिक विकास के सिद्धान्त की खोज में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक प्रवर्गों के आधार पर विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण करने की बात करता आमण्ड राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना संरचनात्मक लक्षणों के आधार पर करने का प्रयत्न करता है। उसका मत है कि हर राजनीतिक व्यवस्था को अन्तर्वस्तु की दृष्टि

से देखने पर उसमें तीन घटक दिखाई देते हैं। यह राजनीतिक संरचनाओं, राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक अभिनेताओं के घटक हैं। इनके द्वारा राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति, उसके विकास के क्रम की दिशा और उसके राजनीतिक विकास के स्तर का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह ज्ञान इन तीनों घटकों से सम्बन्धित आनुभविक तथ्यों के तुलनात्मक विश्लेषण से ही संभव है।

संरचनात्मक पहलुओं की तरह ही राजनीतिक व्यवस्थाओं के प्रकार्यात्मक पक्ष होते हैं। यह राजनीतिक व्यवस्था के कार्यों से सम्बन्धित होते हैं। आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था के प्रकार्यों को विशेष महत्व दिया है। उसने संरचनाओं को इन्हीं के आधार पर परिभाषित किया है। वह मानता है कि राजनीतिक व्यवस्था के चार प्रकार्यात्मक पहलू होते हैं। राजनीतिक व्यवस्था की सामर्थ्य, उसकी रूपान्तर प्रक्रियाएं, अनुरक्षण तथा अनुकूलन ऐसे प्रकार्यात्मक प्रवर्ग हैं जो हर राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान होते हैं और यह राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलनाओं का सुनिश्चित और वैज्ञानिक आधार उपलब्ध कराते हैं।

इस तरह, आमण्ड संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक संवर्गो के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना का सुझाव देता है। उसका मानना है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं की संरचनाओं को प्रकार्यों के आधार पर परिभाषित करके ही उनको समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए व्यवस्थापिका केवल निर्वाचित सदस्यों के समूह को नहीं वरन् ऐसे समूह को कहा जायेगा जो व्यवस्थापन का प्रकार्य करता है। इसके अभाव में निर्वाचित सदस्य समूह मात्र औपचारिकरूप से ही व्यवस्थापन कार्य करने वाला समूह मात्र रह जाएगा। इससे वास्तविकताओं की तह में जाना सम्भव नहीं होगा और तुलनाएं राजनीति की समझ बढ़ाने या भविष्यवाणी करने की स्थिति नहीं आएगी। इसलिए आमण्ड व्यवस्था विश्लेषण के ईस्टन के 'निवेश-निर्गत' मॉडल से कहीं आगे आ जाता है। उसकी व्याख्या से व्यवस्था विश्लेषण यथार्थवादी बनकर तुलनात्मक अध्ययनों में विशेष रूप से उपयोगी हो जाता है। इस विवेचन से संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण के गुणों का संकेत मिलता है। अत: इनका विवेचन संक्षेप में प्रस्तुत है -

10.8 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की तुलनात्मक राजनीति में उपयोगिता

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण का एक विशिष्ट ढंग है। इसमें राजनीति व्यवस्था का ही विचारबंध अपनाया गया है। अत: राजनीतिक व्यवस्था दृष्टिकोण के गुण इस दृष्टिकोण के भी गुण माने जा सकते हैं। किन्तु इस उपागम में राजनीतिक व्यवस्था को संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक आधार पर प्रयुक्त किया गया है। इस कारण इसका महत्व व गुण भी कुछ विशिष्ट बन जाते हैं। यह दृष्टिकोण विशेष रूप से व्यवस्था विश्लेषण को तुलनात्मक राजनीति में प्रयुक्त करने का प्रयत्न ही नहीं करता वरन् राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलनाओं का सुसंगत और आनुभविक मानदण्ड भी प्रस्तुत करता है। तुलनात्मक राजनीति को परम्परागत जकड़नों से मुक्त कर एक नवीन व गत्यात्मक अनुशासन बनाने का सूत्रपात संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य के द्वारा ही हुआ है। इस अध्ययन दृष्टिकोण की तुलनात्मक राजनीति को विशेष देन रही है। संक्षेप में इस उपागम के गुण इस प्रकार हैं -

(क) यह सुसंगत और ऐसा समग्रवादी सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जिससे राजनीतिक व्यवस्था के सभी पहलुओं से सम्बन्धित स्पष्टीकारक प्राकल्पनाएं निकाली या प्रस्थापित की जा सकती हैं-इसका यही आशय है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं का कोई सामान्य सिद्धान्त बनाने की अवस्था तो इस परिप्रेक्ष्य से नहीं आ पाई है, किन्तु एक राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में ऐसी संकल्पनाएं इसके आधार पर कर सकना सम्भव हुआ है जौ उस व्यवस्था विशेष की विशिष्टताओं और सम्भावित विकास दशाओं का स्पष्टीकरण करने में सहायक हो सकती है।

(ख) यह राजनीतिक व्यवस्थाओं के सामान्य सिद्धान्त के अन्ततः निर्माण की सम्भावनाएं प्रस्तुत करता है-संरचनात्मक-प्रकार्यवादी यह स्वीकार करते हैं कि ज्ञान के वर्तमान स्तर पर वैज्ञानिक सामाजिक सिद्धान्त निर्मित करना सम्भव नहीं है। किन्तु इस परिप्रेक्ष्य से इस ओर आगे बढ़ने का मार्ग खुला है और शायद कुछ और सुधारों के बाद व्यवस्था विश्लेषण का यह उपागम किसी सामान्य सिद्धान्त के निर्माण को अन्ततोगत्वा सम्भव बना दे। यही इसकी बहुत बड़ी देन है कि इसने राजनीतिशास्त्र के अनुशासन में तुलनात्मक राजनीति को ऐसे मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए एक वैज्ञानिक और सुनिश्चित उप-अनुशासन बना दिया है।

(ग) यह तुलनात्मक विश्लेषणों को राजनीति और सामाजिक अनुलक्षणों की अन्तःसम्बद्धताओं की की पेंचीदगियों के प्रति संवेदनशील बनाता है-यह स्पष्ट करता है कि अन्य व्यवस्थाओं, उप-व्यवस्थाओं और पर्यावरण से राजनीतिक व्यवस्था प्रभावित होती है और साथ ही उन सबको यह भी प्रभावित करती है। इससे विभिन्न उपव्यवस्थाओं की अन्तर्निर्भरताओं और अन्तःक्रियाओं की पेचीदगियों का ज्ञान हो जाता है। इससे यह समझ में आ जाता है यों कहें तो ज्यादा ठीक रहेगा कि इससे राजनीतिक व्यवस्था की पीरचालनता की जटिलता के प्रति सचेत और सतर्क रहने की आवश्यकता का स्पष्टीकरण हो जाता है।

(घ) यह उपागम राजनीतिक अनुलक्षण के परिवेश के रूप में सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की ओर ध्यान आकर्षित करता है-यह इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि राजनीतिक अनुलक्षण या घटना अलग-थलग अकेले-अकेले या संकुचित परिवेश में नहीं समझ सकती है। इसको समझने के लिए व्यापक परिवेश का संदर्भ लेना आवश्यक है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण में इसलिए ही राजनीतिक व्यवस्था को सामाजिकता के अन्तर्गत रखकर राजनीतिक घटनाक्रमों को समझने का प्रयास किया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले विकासों की जड़ों को या उनके लिए उत्तरदायी कारणों को केवल राजनीतिक व्यवस्था में ही नहीं खोजा जाता है, बल्कि बेहतर परिवेश में भी उन कारकों को पहचानने का प्रयत्न किया जाता है।

(च) यह राजनीतिक व्यवस्था की कार्य शैली और सक्रियता में प्रवेश संभव बनाता है-संरचनात्मक कार्यात्मक विश्लेषण में राजनीतिक संरचनाओं को प्रकार्यों के रूप में परिभाषित कर उनके प्रकट और अप्रकट या अव्यक्त प्रकार्यों का भी ध्यान रखा जाता है। इससे यह, राजनीतिक व्यवस्थाएं वास्तव में कैसे कार्य करती है, इसमें झाँकने का अवसर प्रदान कर देता है।

(छ) यह राजनीतिक विश्लेषण के अनेक विचारबंध प्रस्तुत करता है-इससे हम राजनीतिक व्यवस्था और उप-व्यवस्था के रूप में या संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक प्रको के आधार पर विश्लेषित

कर सकते हैं। यह राजनीतिक व्यवस्थाओं की सामथ्यों, संरचनाओं के विभिन्नीकरण, उप-व्यवस्थाओं की स्वायत्तता और निवेश-निर्गत जैसे अनेक प्रत्यय तुलना के लिए प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार, तुलनात्मक राजनीति का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम राजनीतिक विश्लेषणों में विशेष उपयोगिता रखता है। इससे यथार्थवादी निष्कर्ष निकालने और राजनीतिक व्यवस्था की वास्तविक गत्यात्मक शक्तियों को समझने में सहायता मिलती है। कुल मिलाकर यह उपागम राजनीतिक व्यवस्थाओं की सक्रियता के सम्बन्ध में हमारी समझ और बढ़ाता और व्यवस्थाओं की वास्तविक सक्रियता में झाँकने व गहराई से उनको आँकने का मार्ग प्रशस्त करता है। इससे यह नहीं समझना है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों को सामान्य सिद्धान्त के निर्माण के कगार तक ले आया है। अभी इसमें अनेक कमियाँ है और इसकी अनेक आलोचनाएं होती रही हैं। अत: इनका मूल्यांकन करें और इससे पहले इस उपागम के विपक्ष में प्रस्तुत किये गये तथ्यों का परीक्षण करना आवश्यक है।

10.9 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की आलोचना

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम में अनेक गुण हैं। इनका ऊपर विवेचन किया गया है किन्तु इनमें अनेक कमियाँ भी परिलक्षित होती है। अगर तथ्यात्मक दृष्टि से देखा जाए तो इस दृष्टिकोण के विपक्ष में ही अधिक कहा गया लगता है। यहां हम इसकी आलोचना की बारीकियों में नहीं जाकर केवल कुछ सामान्य आलोचनाओं का उल्लेख कर रहे हैं। संक्षेप में इसकी आलोचनाएं इस प्रकार हैं -

(क) रूढ़िवादी और सामाजिक परिवर्तन के विरूद्ध पूर्वाग्रही है,

(ख) व्यवस्था के अनुरक्षण का कोई वस्तुनिठ मानदण्ड नहीं देता है,

(ग) संरचनाओं की अन्तःनिर्भरता की प्रकृति का सुनिश्चय नहीं करता है,

(घ) राजनीतिक व्यवस्था की प्रकार्यात्मक अपेक्षाओं को स्पष्ट करने की कठिनाई,

(ङ) संकल्पनाओं की संक्रियात्मक व्याख्या में कठिनाई,

(च) प्रकार्यों की निष्पादनता को जाँचने की कठिनाई,

(छ) स्वाभाविक संरचनाओं की पक्षधर और आरोपित के प्रति पूर्वाग्रही है।

(क) इस दृष्टिकोण में व्यवस्था के स्थायित्व और उसके बने रहने पर इतना बल दिया गया है कि यह तथ्य इस दृष्टिकोण के प्रमुख केन्द्र से लगते हैं। इससे अप्रकट रूप में इसकी रूढ़िवादिता झलकती है, क्योंकि इस उपागम में स्थायित्व और व्यवस्था अनुरक्षण की परिस्थितियों पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है। इसका अनेक लोग यह अर्थ लगाते हैं कि यह यथास्थिति का रक्षक, रूढ़िवादी और सामाजिक व अन्य प्रकार के पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति उदासीन है। यह आलोचना आंशिक रूप से ठीक कही जा सकती है। परन्तु इसको रूढ़िवादी और सामाजिक परिवर्तनों के विरूद्ध पूर्वाग्रही नहीं कहा जा सकता है। यह व्यवस्था को बनाये रखने और उसके स्थायित्व के साथ ही साथ उसकी गत्यात्मक शक्तियों की बात भी करता है जो इस आलोचना का प्रमुख आग्रह क्षीण कर देती है कि यह रूढ़िवादी है। व्यवस्था के अनुरक्षण व स्थायित्व की स्थितियों को ध्यान में रखने से ही तो यह दृष्टिकोण रूढ़िवादिता से दूर हट पाया है। अत: यह आलोचना सैद्धान्तिक है और व्यावहारिक दृष्टि से तर्कसंगत नहीं लगती है।

(ख) व्यवस्था के अनुरक्षण का कोई वस्तुनिठ मानदण्ड दे सकना वैसे ही कठिन है किन्तु संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण ने इस दिशा में विशेष ध्यान नहीं देकर व्यवस्थाओं के बारे में यह कहना कठिन बना दिया है कि स्थायित्व वाली व्यवस्था, जो पूरी तरह अनुरक्षित लगती है, वास्तव में फल-फूल रही है या पतन के खंदक में गिरती जा रही है। अगर किसी राजनीतिक व्यवस्था में दलीय व्यवस्था भंग हो जाती है या द्विदलीय पद्धति से एकदलीय पद्धति आ जाती है तो यह स्थिति व्यवस्था के अनुरक्षण को तो तुरन्त प्रभावित नहीं कर सकती पैर यह एक दृष्टि से व्यवस्था का पतन के मार्ग पर आगे चलना कहा जा सकता है। अत: वस्तुनिष्ठ कसौटी के अभाव में यह कहना कठिन हो जाता है कि व्यवस्था का ठीक प्रकार से अनुरक्षण हो रहा है या नहीं हो रहा है। विकासशील राज्यों के संदर्भ में यह आलोचना काफी तर्कसंगत बन जाती है। अत: प्रकार्यवादी इस दृष्टि से अपने विश्लेषणों में व्यवस्था के पतन या विकास के महत्वपूर्ण पक्ष पर इतना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाए जितना ध्यान उन्हें देना चाहिए था।

(ग) संरचनात्मक प्रकार्यवादी यह तो स्पष्ट करते हैं कि एक संरचना में परिवर्तन से कोई प्रकार्य किस प्रकार निष्पादित होता है। इसमें भी परिवर्तन आ जाता है तथा इसका सम्पूर्ण व्यवस्था और अन्य व्यवस्थाओं पर भी प्रभाव पड़ता है, किन्तु इस प्रकार से परिवर्तनों से अन्यत्र आने वाले परिवर्तनों और प्रभावों की प्रकृति, तीव्रता और का ज्ञान प्राप्त करने का कोई साधन सुलभ नहीं करा पाए हैं। उदाहरण के लिए व्यवस्था की संरचना में परिवर्तन से राजनीतिक व्यवस्था के निष्पादन में परिवर्तन की बात कह देना ही पर्याप्त नहीं है। इससे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि निष्पादन और वर्तनों की प्रकृति, उग्रता और इनकी हद क्या है? इस सम्बन्ध में भी आलोचकों की दलील वजनदार लगती है।

(घ) यह उपागम प्रमुखतया राजनीतिक व्यवस्था की प्रकार्यात्मक अपेक्षाओं के आधारस्तम्भ पर ही आधारित है। इसमें यह माना गया है कि हर राजनीतिक व्यवस्था में अपेक्षित प्रकार्यो की विविधता होती है। इससे हर राजनीतिक व्यवस्था के अपेक्षित प्रकार्य का एक अलग सेट हो जाता है जो अन्तत: हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए मजबूर करता है कि हर राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन में यह अपेक्षित प्रकार्यों का सेट विचित्र या अलग होगा। इस प्रकार प्रकार्यों के अभिज्ञान का कोई सुनिश्चित मानदण्ड ही नहीं रह जाता है, क्योंकि इसके अभाव में किसी अध्ययन में प्रकार्यों का सेट निष्पादन के आधार पर चुना जाए या कोई अन्य आधार लिया जाए यह भांति उत्पन्न हो जाती है। अत: इस आलोचना को भी तर्कसंगत कहना गलत नहीं होगा।

(ङ) ईस्टन, आमण्ड और पावेल ने अपने-अपने विश्लेषणों में प्रयुक्त अवधारणा की परिभाषाएं तो दी है किन्तु यह परिभाषाएं संक्रियात्मक दृष्टि से नहीं की गई है। इस कारण कौनसी संरचना कौनसे प्रकार्य निष्पादित करती है इसका निश्चय नहीं हो पाता है। ईस्टन और आमण्ड के बाद ऐप्टर, एक्सटीन, ब्लोच्न्डेल, जाग्वाराइव और मर्कल ने राजनीतिक व्यवस्था के संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त प्रत्यय की अलग-अलग संक्रियात्मक परिभाषाएं की हैं जिससे और अधिक भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गई हैं।

(च) आमण्ड और पावेल ने जिन कार्यों का विवेचन किया है वे कार्य राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा पूरी-पूरी तरह से निष्पादित होते हैं या नहीं होते हैं इसका निश्चय करने का कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है। आलोचकों का कहना है कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से यह कह सकना कठिन है कि कोई राजनीतिक व्यवस्था अपने कार्यों का निष्पादन पूरी तरह कर रही है, या आंशिक रूप से कर रही है या कर ही नहीं रही है? इसका निश्चय करने का कि किसी राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा अनेक कार्य में से कौन-सा कार्य निष्पादित नहीं हो रहा है, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम में कोई विश्लेषणात्मक व आनुभविक मापदण्ड नहीं दिया गया है। उदाहरण के लिए किसी व्यवस्था में हितों की अभिव्यक्ति हो रही है या नहीं, इसका निश्चय अप्रत्यक्ष ढंग से करने के अलावा कोई प्रत्यक्ष माध्यम नहीं प्रस्तुत किया गया है।

(छ) विकासशील देशों में से अनेक देशों में संरचनाएं स्वत: विकसित नहीं हो आरोपित की गई है। इसी तरह स्वेच्छाचारी और सर्वाधिकारवादी राजनीतिक अवस्थाओं में संरचनाओं के स्वाभाविक होने की परिस्थितियाँ बहुत कम होती हैं। यद्यपि इन व्यवस्थाओं में यह संरचनाएं संवैधानिक होती हैं फिर भी इनको स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता है। अत: इन देशों की व्यवस्थाओं को तुलनात्मक अध्ययनों की परिधि में इस दृष्टिकोण के आधार पर ला सकना कठिन है क्योंकि इसमें आरोपित संरचनाओं के स्थान पर केवल स्वाभाविक संचरनाओं पर ही बल दिया गया है। अनेक देश ऐसे हैं जहाँ पर आरोपित संस्थाओं के द्वारा व्यवस्थाओं का स्थायित्व व अनुरक्षण ही नहीं हो रहा है, अपितु उनमें विकास भी तेजी से होता पाया गया है। अत: इस दृष्टि से यह दृष्टिकोण बहुत कमजोर पड़ गया है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की उपरोक्त आलोचनाओं से स्पष्ट है कि यह उपागम पाश्चात्य जगत की लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थाओं की व्याख्या और तुलना करने के साधन से आगे नहीं बढ़ पाया है। इसमें राजनीति के अनेक ऐसे तथ्यों की अनदेखी कर दी गई है जिनकी व्यवस्था की सक्रियात्मकता में प्रमुख भूमिका रहती है। आमण्ड ने तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषणों में इस उपागम की सर्वव्यापक उपयोगिता की जो बात कही है वह तथ्यों द्वारा बहुत अधिक पुष्ट नहीं होती है। अत: इस बात से इंकार कर सकना कठिन लगता है कि यह दृष्टिकोण लोकतंत्र व्यवस्थाओं के प्रति पूर्वाग्रही है।

10.10 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम : एक मूल्यांकन

इस उपागम के गुण-दोषों के विवेचन के बाद इसका मूल्यांकन करना केवल औपचारिकता रह जाता है। इसके पक्ष और विपक्ष के विवेचन से एक तरह से इसका मूल्यांकन हो जाता है। फिर भी निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि इस दृष्टिकोण में ऐसे प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है जो परिभाषा की दृष्टि से कठिनाई अवश्य उत्पन्न करते है किन्तु विश्लेषण और आनुभविक दृष्टि से नापने योग्य हैं। इसकी आलोचना करने वालों ने इस दृष्टिकोण के उन पक्षों को लिया है जिनको इसके प्रतिपादक पहले ही इसकी परिधि से बाहर रखने की बात कर चुके हैं। उदाहरण के लिए संरचनाओं के आरोपित रूप को लेते ही कई कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। आरोपण कितना है, किन साधनों और शैली से किया जा रहा है-यह सब प्रश्न अध्ययनों में जटिलता लाते हैं। अत:

यह अध्ययन दृष्टिकोण जो स्पष्ट है उसको स्पष्ट करने में नहीं उलझकर उन पक्षों को लेता है जो वास्तव में महत्वपूर्ण हैं। वैसे भी अगर गहराई से देखा जाए तो संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम में आलोचकों द्वारा बताई गई सब कमियों की अप्रत्यक्ष रूप से पूर्ति हो जाती है। इसलिए अन्त में यही कहना उपर्युक्त होगा कि इससे एक ऐसा सैद्धान्तिक विचारबन्ध प्रस्तुत हुआ है जो विश्लेषणात्मक दृष्टि से संगत है और आनुभविक रूप से लाभप्रद प्रयोग की क्षमताएं रखता है।

10.11 ईस्टन के निवेश-निर्गत विश्लेषण और आमण्ड के संरनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण का तुलनात्मक अध्ययन

ईस्टन और आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए राजनीतिक व्यवस्था की आधारभूत अवधारणा को अपने-अपने अध्ययन दृष्टिकोण में स्वीकार किया है। किन्तु दोनों ने विश्लेषण ढाँचा एक रखते हुए भी विश्लेषण की शैली और उद्देश्य अलग-अलग रखे हैं। इन दोनों की हम चार शीर्षकों के आधार पर तुलना करने का प्रयत्न करेंगे। यह चार बिन्दु -

(क) राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या,

(ख) राजनीतिक व्यवस्था के निवेश,

(ग) राजनीतिक व्यवस्था की रूपान्तरण प्रक्रियाएं और

(घ) राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत व्याख्या के हैं।

(क) राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को राजनीतिक अध्ययनों और विश्लेषणों में प्रचलित करने का प्रमुख श्रेय ईस्टन को ही है। ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्थाओं के विश्लेषण के लिए सर्वव्यापी उपयोगिता का एक सामान्य विचारबन्ध प्रस्तुत करने का कार्य किया है। आमण्ड ने इसको आधार बनाकर इसको प्रत्ययी और विश्लेषणात्मक दृष्टि से अधिक बबेहतर बनाने का कार्य किया है। किन्तु इनके राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या या परिभाषा को लेकर मौलिक अन्तर दिखाई देता है। ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था की गत्यात्मक परिभाषा करते हुए इसे 'मूल्यों के आधिकारिक आवंटन की व्यवस्था' माना है जबकि आमण्ड ने वेबर की अवधारणा के अनुरूप राजनीतिक व्यवस्था को 'वैध बाध्यकारी भौतिक शक्ति के प्रयोग की एकाधिकारी व्यवस्थाएं' माना है। दोनों ही राजनीतिक व्यवस्था को एक विशेष दृष्टिकोण से देखते हैं। ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था को केवल मूल्यों के वितरण तक सीमित रखकर, व्यवस्था का सीमित लिया है। दूसरी तरफ, आमण्ड ने शक्ति की वैधता व उसके एकाधिकारी प्रयोग की बात करके यह बात भुला दी है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं में अवैध शक्ति और हिंसा का भी बड़े पैमाने पर प्रयोग होता है। इस प्रकार की गतिविधियों की अनदेखी नहीं की जा सकती है। आमण्ड द्वारा अवैध भौतिक शक्ति के प्रयोग और हिंसात्मक दमनों की अवहेलना से उसकी व्यवस्थाई व्याख्या भी अनेक विकासशील राज्यों पर अपूर्ण रूप से लागू होती है।

ईस्टन और आमण्ड में राजनीतिक व्यवस्था को लेकर एक समानता है और वह यह है कि दोनों ने ही राजनीतिक व्यवस्था को अत्यधिक स्वायत्तता प्रदान कर दी है। समाज की चार उप-व्यवस्थाओं राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अन्तीनर्भरता की अनदेखी होती है। यद्यपि आमण्ड इनके बीच सम्पर्कता के प्रति सचेत माना जा सकता है। उसकी राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा, राजनीतिक समाजीकरण और राजनीतिक भर्ती विभिन्न व्यवस्थाओं को

जोड़ने की कड़ियाँ प्रस्तुत करती है किन्तु राजनीतिक व्यवस्था की उसकी व्याख्या इस अन्तःक्रिया को बहुत कुछ सीमित बना देती है। इसी तरह ईस्टन ने प्रतिसम्भरण का विचार अप्रकट रूप से ही स्वीकार करके राजनीतिक व्यवस्था को इतनी स्वायत्त मान लिया है कि जैसे वह अन्य व्यवस्थाओं से पूर्ण स्वतन्त्र हो। अगर व्यक्तियों की किसी भी प्रकार अन्तःक्रियाओं को देखें तो यह स्पष्ट होगा कि व्यक्ति सामाजिक भूमिकाओं के माध्यम से ही अन्य सब प्रकार की भूमिकाओं में उलझते हैं जो राजनीतिक व्यवस्था को स्वायत्त मानने पर पूर्णतया पलटने वाली बात हो जाती है। राजनीतिक व्यवस्था की स्वायत्तता पर संकेत देती है कि व्यक्ति राजनीतिक भूमिकाओं के माध्यम से अन्य सब प्रकार की भूमिकाओं में सक्रिय होता है। अत: इनका राजनीतिक व्यवस्था की स्वायत्तता का विचार पूर्णतया स्वीकार करना तथ्यसम्मत नहीं माना जा सकता है।

(ख) राजनीतिक व्यवस्था के निवेशों को दोनों ने ही मांगों और समर्थनों के रूप में विभक्त किया है। दोनों मोटे रूप से राजनीतिक व्यवस्था के निवेशों पर एक समान ही विचार रखते हैं। प्रकार्यवादी होने के कारण आमण्ड ने मांगों और समर्थनों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है जबकि ईस्टन ने इनकी भूमिकाओं व राजनीतिक व्यवस्था में प्रवेश पर अधिक बल दिया है।

(ग) ईस्टन और आमण्ड ने रूपान्तरण प्रक्रियाओं के विवेचन में विशेष अन्तर है। आमण्ड और पावेल ने रूपान्तरण प्रक्रिया के दो स्तर करके राजनीतिक संस्कृति को राजनैतिक रूपान्तरण स्तर पर सक्रिय माना है। उसका राजनीतिक समाजीकरण व राजनीतिक भर्ती का विचार वास्तव में राजनीतिक संस्कृति को राजनीतिक रूपान्तरण प्रक्रिया की उर्वरक और नियामक शक्ति बना देता है। राजनीतिक रूपान्तरण के स्तर के साथ ही सरकारी रूपान्तरण प्रक्रिया की संक्रियता सम्पूर्ण रूपान्तरण प्रक्रिया को गत्यात्मक बना देती है। इस सत्त्व में ईस्टन ने इस दोनों को अन्तर नहीं किया है क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था की उसकी व्याख्या से इसका अन्तर करना वास्तव में कठिन होता है। अगर राजनीतिक व्यवस्था को संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए और संरचनाओं की प्रकार्यो या भूमिकाओं के रूप में व्याख्या की जाए तब ही यह रूपान्तरणों का सरकारी और राजनीतिक स्तर अलग करना सम्भव है। अत: ईस्टन का दृष्टिकोण व्यवस्थाई होने के कारण वह रूपान्तरण प्रक्रिया में यह भेद नहीं कर पाया जबकि आमण्ड इसको पृथक करके ही समझना उपयुक्त मानता है।

(घ) निर्गतों की दृष्टि से आमण्ड ईस्टन के निर्गतों के सिद्धान्त की महत्वपूर्ण देन, इसको अधिक व्यापक बनाना राजनीतिक व्यवस्था के सामान्य प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के साथ समंजनीय करना ही नहीं है, अपितु विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं की उनकी सापेक्ष विकास मात्रा के आधार पर तुलना कर वस्तुनिष्ठ और करीब-करीब नापने योग्य मानदण्ड प्रस्तुत करना है। आमण्ड के द्वारा बताए गए निर्गतों से विकास के महत्वपूर्ण पीरवर्त्यो-संरचनात्मक-विभेदीकरण, सास्कृतिक-लौकिककिरण और उप-व्यवस्था स्वायत्तता को मापना और उस आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं के विकास के स्तरों पर निर्धारण करना सरल हो जाता है। ईस्टन ने निर्गतें में प्रति-सम्भरण का विचार प्रस्तुत करके राजनीतिक व्यवस्था और अन्य व्यवस्थाओं तथा निवेशों में अन्तक्रिया को करके व्यवस्थाओं की अन्तक्रियात्मकता को स्पष्ट किया है।

10.12 सारांश

ईस्टन और आमण्ड-पावेल के द्वारा राजनीतिक व्यवस्थाओं की व्याख्या का तुलनात्मक मूल्यांकन यह स्पष्ट करता है कि दोनों ही ने राजनीतिक व्यवस्था का विचारबंध अपनाकर राजनीति के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त निर्माण का प्रयत्न किया है। किन्तु दोनों में समानताएं कम और असमानताएं ही अधिक है। दोनों की राजनीतिक व्यवस्था की भाषा में मौलिक अन्तर होने के अलावा दोनों व्यवस्था विश्लेषण के अलग-अलग उद्देश्य लेकर चलते हैं। ईस्टन राजनीति का सामान्य सिद्धान्त निर्मित करना चाहता है, जब आमण्ड-पावेल राजनीतिक व्यवस्थाओं में तुलना करने और उनके विकास के स्तरों पर तुलनाओं को आधारित करने के लिए संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक प्रवर्गों का प्रयोग इस तरह करना चाहते हैं कि राजनीतिक विकास का सामान्य सिद्धान्त निर्मित हो सके। असमानताओं के बावजूद यह तथ्य तो स्वीकार करना ही होगा कि इन्होंने एक सैद्धान्तिक विचारबंध प्रस्तुत किया है जो विश्लेषणात्मक दृष्टि से सुसंगत है और अनुभाविक रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है।

10.13 अभ्यास प्रश्न

1. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से आप क्या समझते है?
2. आमण्ड के संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
3. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिए।

10.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आमण्ड, जी.ए. एण्ड कॉलमैन दी पालिटिक्स ऑफ डवलपिंग एरियाज, प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1960
2. वर्मा, एस.पी. आधुनिक राज. सिद्धान्त पब्लिकेशन विकास, दिल्ली, 1976
3. गैना, सी.बी तुलनात्मक राजनीति विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1988

इकाई- 11

राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन का व्यवहारवादी उपागम

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 अनुभववाद और व्यवहारवाद

11.3 व्यवहारवाद का विकास

11.4 व्यवहारवाद का स्वरूप और व्याख्या

11.5 डेविड ईस्टन के अनुसार व्यवहारवाद की सामान्य विशेषताएं

11.6 व्यवहारवाद का राजनीति विज्ञान पर सामान्य प्रभाव

11.7 व्यवहारवाद का परम्परागत राजनीति विज्ञान पर प्रभाव

11.8 व्यवहारवादियों का कार्यक्षेत्र

11.9 व्यवहारवाद की सीमाएं

11.10 व्यवहारवाद की समालोचनात्मक विश्लेषण

11.11 व्यवहारवादियों द्वारा प्रत्युत्तर

11.12 व्यवहारवादी समस्याएं

11.13 व्यवहारवाद का मूल्यांकन

11.14 उत्तर-व्यवहारवादी पुनरावलोकन

11.15 सारांश

11.16 अभ्यास प्रश्न

11.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

इस के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे -

- व्यवहारवाद का अर्थ
- व्यवहारवाद की विशेषताएं
- राजनीति विज्ञान पर व्यवहारवाद का प्रभाव
- व्यवहारवाद की सीमाएं

11.1 प्रस्तावना

व्यवहारवाद या व्यवहारवादी उपागम राजनैतिक तथ्यों की व्याख्या एवं विश्लेषण का एक विशेष तरीका है, जो द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अमेरिकी राजवैज्ञानिकों ने विकसित किया है। उसकी जड़ें प्रथम महायुद्ध के पूर्व ग्राहम वालार्स, आर्थर बेंटले आदि में भी देखी जा सकती हैं। यह उपागम राजविज्ञान के संदर्भ में, मुख्यत: अपना ध्यान "राजनैतिक व्यवहार" पर केन्द्रित करता है। "राजनैतिक व्यवहार" के अध्ययन से यह राजनीति, उसकी संरचनाओं, प्रक्रियाओं आदि के बारे में सत्यापनीय वैज्ञानिक व्याख्याएं और उनकी परिमाणन तथा सक्रियात्मक परिभाषायें विकसित

करना चाहता है। यह खुले दिमाग और दिल से दूसरी अनुशासनात्मक अवधारणाओं, सिद्धान्तों व उपागमों को ग्रहण करने तथा अन्तरअनुशासनात्मक शोध को अपनाने के लिए तैयार रहता है। व्यवहारवाद अनुभवात्मक शोध तथा प्रविधियों के निरन्तर सुधार में विश्वास रखता है। व्यवहारवाद अनुभवात्मक एवं क्रियात्मक है तथा उसमें व्यक्तिनिष्ठ मूल्यों, मानवीय विवरणों, कल्पनाओं आदि का कोई स्थान नहीं है। इस दृष्टि से वे परम्परावादियों के बिलकुल विरूद्ध है। वे राजविज्ञान को राज्य की कानूनी और दार्शनिक सीमाओं से बाँधने के लिए तैयार नहीं हैं। राबर्ट ए.डहाल के अनुसार व्यवहारवादी क्रान्ति "परम्परागत राजनीति विज्ञान की उपलब्धीयों के प्रति असंतोष का परिणाम है इसका उद्देश्य राजनीति-विज्ञान को अधिक 'वैज्ञानिक' बनाना है किन्तु व्यवहारवाद के अर्थ के बारे में सभी का दृष्टिकोण समान नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह केवल एक मनोदशा या मनोवृत्ति है, तो कुछ अन्य विचारकों की दृष्टि से इसके अपने निश्चित विचार, सिद्धान्त और कार्यविधियां हैं। द्वितीय महायुद्ध और सन् 1960 के बीच में 'व्यवहारवाद' के एक साथ ही एक उपागम और एक चुनौती, एक अभिनवीकरण और सुधार-आन्दोलन, एक विशेष प्रकार का अनुसंधान और एक जमघट जमाने वालों की पुकार और एक जयनाद और "छी छी" के शब्द के रूप में जाना जाता रहा है, जिसने राजवैज्ञानिकों को दो सशक्त गुटों में बांट दिया। इन्हें इस अनुशासन का 'युवा-तुर्क' कहा जा सकता है। इन्होंने इसे एक अनुभावात्मक-विज्ञान बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही राजनीति-विज्ञान की जड़े शास्त्रीय राजनीतिक सिद्धान्तों की महान परम्परा तक रही हो, एक अनुभवात्मक अध्ययन के रूप में वह अति अल्पवयस्क अनुशासन है।

वास्तव में इस शैक्षिक शीत युद्ध और संघर्ष का कारण प्रारम्भिक व्यवहारवादियों द्वारा अन्य परम्परावादियों से अपने को पृथक रखकर आत्ममूल्यांकन करने की प्रवृत्ति थी। उसमें प्रत्याक्रमण और कटुता की भावना का आधिक्य था। प्रारम्भ में राजनैतिक व्यवहारवादियों में कोई स्पष्टता नहीं थी। इस शब्द का प्रयोग उन लोगों को अपने गुट में मिलाने के लिए किया जाता था जो परम्परागत राजविज्ञान से असंतुष्ट थे। वे स्वयं विभिन्न विचारधाराओं के लोग थे, लेकिन इस विरोध की आधी के शान्त हो जाने के बाद कुछ न कुछ करना ही था। इस शब्द की अर्थ सम्बन्धी अनिश्चितता काफी समय तक चलती रही। जितने टीकाकार है उतने ही अर्थ हैं। कतिपय व्यवहारवादियों के अनुसार यह एक ऐसा उपागम है जिसका उद्देश्य विश्लेषण की नयी इकाईयों, नयी पद्धतियों, नयी प्राविधियों, नये तथ्यों और एक व्यवस्थित सिद्धान्त के विकास को प्राप्त करना है। इसी प्रकार और भी विचारक इसे एक आगमनात्मक या वैज्ञानिक पद्धति भाव से कुछ अधिक मानते हैं। एब्रोन एम. किर्कपैट्रिक ने स्पष्ट किया है कि यह अब ऐसा नहीं रह गया है, जिसके अर्थ जो चाहे लगा लें। अब शब्द पर्याप्तरूपेण निश्चित हो चला है और इसके संदर्भ में पर्याप्त रूप से सतत हो चले हैं। राजनीतिक जीवन के अध्ययनार्थ इस उपागम के अन्तर्गत आने वाली पूर्वमान्यताओं, क्रियाविधियों, प्रविधियों और लक्षणों को पहचानना सम्भव है। इस दृष्टिकोण को लेकर यहां व्यवहारवादी क्रान्ति, उसके स्वरूप और प्रभाव का विश्लेषण किया जा रहा है।

11.2 अनुभववाद और व्यवहारवाद

अनुभववाद राजविज्ञान के इतिहास में काफी पुराना है। इसका आधुनिक संस्थापक जॉन लॉक माना जाता है। उदारवादी प्रजातंत्र की विचारधारा उसी के अनुभववादी दृष्टिकोण पर

आधारित है। आधुनिक अनुभववाद की जड़ें बहुलवाद ने गहरी की और कार्लमार्क्स, मैक्स वैबर, डरखीम आदि ने उसे गति दी। व्यवहारवाद की ओर झुकाओं का प्रारम्भ समाज-मनोविज्ञान के प्रभावों से होता है जबकि सन् 1908 में ग्राहम वालास की "राजनीति में मानव-प्रकृति" तथा ए.एफ. बैटले "शासन की प्रक्रिया" पुस्तकें प्रकाशित हुई। वालास ने राजनीति के अध्येताओं द्वारा संस्थाओं का विश्लेषण करने और मानव का विश्लेषण करने से बचने की प्रवृत्ति के प्रति असंतोष व्यक्त किया। बैटले ने प्रकार्यात्मक सम्बन्धों और विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में तथा समूह प्रक्रियाओं के अध्ययन पर एक वैज्ञानिक की तरह ध्यान केन्द्रित करने का तर्क प्रस्तुत किया। उसके पश्चात् चार्ल्स ई. मेरियम ने "अमेरिकन पोलिटिकल साइन्स एसोशियेशन" की एक समिति के अध्यक्ष होने के नाते सन् 1923 में इस नवीन विचारधारा को बल दिया। उसकी पुस्तक 'राजनीति के नये दृष्टिकोण' अनुभववादियों की बाइबिल बन गयी और इसी प्रेरणा को लेकर 'शिकलो-सम्प्रदाय' मनोवैज्ञानिक आयामों के भीतर राजनीतिविज्ञान के अध्ययन-अध्यापन का कार्य करता रहा। वह इस सम्प्रदाय का जन्मदाता था और उसने सन् 1921 में ही इस बात पर जोर दिया कि समाजशास्त्र, समाज-मनोविज्ञान, भूगोल, मानवजाति-विज्ञान, जीवशास्त्र और सांख्यिकी की उपलब्धियों एवं पद्धतियों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। तीन वर्ष पश्चात् ही स्तुअर्ट राइस की 'राजनीति में परिमाणात्मक-पद्धतियाँ' पुस्तक आयी। ग्रेट ब्रिटेन में यही विचार जी.ई.जी कैटलिन के 'राजनीति का विज्ञान और पद्धतियाँ' तथा राजनीति के अध्ययन के नियम में प्रकट होता है, जिसमें उसने शक्ति-सम्बन्धों को राजनीति-विज्ञान के अध्ययन का मुख्य विषय माना। 'शिकागो-सम्प्रदाय' के ही हैरोल्ड डी.लालवैल ने एक साथ अनुभववाद, व्यवहारवाद तथा मूल्यात्मक लक्षणों का प्रतिनिधित्व किया है। उसने अपनी कृतियों में मनोविज्ञान का प्रभाव, व्यवहारवादी विज्ञानों में एकता, प्रकृति के तथा सामाजिक विज्ञानों में ज्ञान-गुणात्मक निरन्तरता के पक्ष को प्रबल किया है। लासवैल और कैटलिन अपने चरण दोनों में रखे हुए हैं, किन्तु वर्तमान स्थिति में वे व्यवहारवादी-युग के प्रतिनिधि राजवैज्ञानिक हैं।

किन्तु अनुभववाद और व्यवहारवाद में अन्तर पाया जाता है। सिब्ली के अनुसार ' अनुभवात्मक अध्ययन व्यवहारवादी विज्ञान से कुछ अधिक है। अनुभववादी अध्ययन में हम इतिहासात्मक राजनीति, संस्कृति का विश्लेषण एवं वैयक्तिक अनुभव जैसे तत्वों को भी शामिल करते है-जबकि व्यवहारवादी अपने आप को विशुद्ध वैज्ञानिक बनाने और सिद्ध करने में प्रवृत्त हैं। इनका समस्त आन्दोलन समाज विज्ञानों पर प्राकृतिक विज्ञानों के प्रभाव का परिणाम है। वह प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों के बीच में एक गुणात्मक निरन्तरता की पूर्व धारणा लेकर चलता है। उसकी मूल मान्यता यह है कि समाजविज्ञानों की अवधारणाएं एवं सिद्धान्त प्राकृतिक विज्ञानों के समान हो सकते है और होने चाहिए। प्राकृतिक विज्ञानों के अतिरिक्त इन अन्य समाजविज्ञानों, संस्थाओं और व्यक्तित्वों का योगदान भी व्यवहारवादी क्रांति को मिला है। राजनीतिविज्ञान पर प्राकृतिक विज्ञानों के प्रभाव को ही 'क्रांति' कहा जाता है जिसने राजनीतिक विज्ञान में विषयवस्तु, अन्य विषयों से संबन्ध, पद्धतियों और प्रविधियों एवं मूल्यों आदि की दृष्टि से आमूल परिवर्तन कर दिये। सभी दृष्टियों से व्यवहारवादी राजवैज्ञानिको ने अपने आप को प्राकृतिक विज्ञानों से जोड़ लिया और तादात्म्य स्थापित करने लगे। ज्ञान की गुणात्मक निरन्तरता तथा एक सार्वकालिक अनुप्रयोज्य वैज्ञानिक-विधि में उनके विश्वास ने उन्हें प्राकृतिक

विज्ञानों की पद्धतियों एवं प्रविधियों को अन्धाधुन्ध अपनाने की ओर प्रेरित किया। व्यवहारवादियों की दूसरे समाजशास्त्रों से उधार ली हुई प्रविधियां पहले से ही प्राकृतिक विज्ञानों से इस आशा में उधार ली हुई थी कि समान पद्धतियां समान वैज्ञानिक सफलताएं प्रदान करेंगी। उन्हें अपनी इस सफलता के बारे में दृढ़ विश्वास रहा है।

व्यवहारवाद और व्यावहारिता-दो मिलते-जुलते शब्द हैं, किन्तु दोनों एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। 'व्यावहारिता' एक बदनाम और घृणास्पद शब्द रहा है जिसको जे.डब्ल्यू वाटसन ने मानव व्यवहार की शारीरिक एवं भौतिक व्याख्या करने के लिए प्रयुक्त किया। मूल रूप में यह एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा था, जिसका उद्देश्य वैज्ञानिक शोध से समस्त व्यक्तिनिठ सामग्री, जैसे-प्रयोजनों, भावनाओं, इच्छाओं या विचारों को निकाल फेंकना था। वाटसन अपनी आधार-सामग्री में उन्हीं पर्यवेक्षणों को शामिल करता था, जो इन्द्रियों या यान्त्रिक उपकरणों के माध्यम से प्राप्त हो। शोध-सामग्री के विषय उसके अनुसार बाह्य प्रेरकों से उत्पन्न पर्यवेक्षणीय व्यवहार ही हो सकते हैं, न कि पर्यवेक्षित व्यक्ति के मन की व्यक्तिनिष्ठ स्थिति के बारे में अनुमान उनका मौलिक व्यावहारिक विचारचित्र एस.आर. प्रेरक-अनुक्रिया था, अर्थात् वे मानव-व्यवहार या अनुक्रिया को सीधे प्रेरकों के माध्यम से पर्यवेक्षित करते थे। बाद में उन्होंने 'व्यक्ति' या (Organism) को भी शामिल किया और उनका नया विचारपुंज S--O--R या एस.ओ.आर. या प्रेरक-अवयवी-अनुक्रिया (Stimulus-Organism-Response) बना, अर्थात् उन्होंने अवयवी की भावनाओं, अभिप्रेरणाओं तथा दूसरी मानसिक अवस्थाओं एवं प्रतिक्रियाओं को भी लाभदायक आधार-सामग्री मानना शुरू कर दिया। इस नये विचारपुंज ने पुराने व्यावहारिकत्व को समाप्त कर दिया। पुराना व्यावहारिकत्व मजाक, मृणा, मूर्खता आदि का पर्याय बन गया था। उदाहरण के लिए वे क्रोध, हास्य या प्रेम को भी बाह्य भौतिक प्रेरकों एवं शारीरिक अंग संचालनों की भाषा में वर्णन करते थे। वे मानव को मूल रूप में एक जानवर मानते थे और उनके लिए मस्तिष्क जैसी कोई चीज नही थी ऐसे ही अनेक प्रयोग मनोवैज्ञानिकों जैसे-इवान पावलाव आदि ने किये हैं।

अनुभववादी तथा अन्य समाजशास्त्री अपने आपको ऐसे व्यावहारिकों के समूहों में शामिल किए जाने को तैयार न थे। वे उनसे घृणा करते थे और दूर रहते थे। व्यवहारवाद व्यावहारिकता से बिलकुल भिन्न है। ऐसी परिस्थितियों में इस नवीन वैज्ञानिक-अनुभववाद को 'व्यवहार' से संयुक्त करना आश्चर्यजनक है, क्योंकि व्यवहारवाद वाटसन के साथ जुड़कर बदनाम हो चुका था।

11.3 व्यवहारवाद का विकास

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में व्यवहारवाद शब्द के प्रचलन की समाजशास्त्रों में संभावना न थी, फिर भी इसकी व्यापकता अपने आप में एक रहस्यात्मक घटना है। संयुक्त राज्य में अनेक सीनेटर "समाज-विज्ञान" के नाम से ही चिढ़ते थे, क्योंकि उसमें उनको "समाजवादी-विज्ञान" होने की गंध आती थी। इधर समाजविज्ञानों के विद्वान आर्थिक सहायता प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। जबकि सीनेट की एक समिति के समक्ष एक राष्ट्रीय-विज्ञान-संस्थान को उच्चस्तरीय शोध को सहायता और बढ़ावा का प्रश्न आया, तो उन सीनेटरों की सनक को देखते हुए उन्होंने समाज-विज्ञानों को 'व्यवहारवादी विज्ञान' की संज्ञा दी, ताकि वह शब्द प्राणिशास्त्रीय एवं सामाजिक दोनों

प्रकार के विज्ञानों को समाहित कर सके। उसी समय, फोर्ड-संस्थान की स्थापना समय एक सामाजिक ज्ञान के वैज्ञानिक विकास के लिए एक शाखा गठित की गई, उसका नाम भी "व्यवहारवादी-विज्ञान सम्भाग" रखा गया। इन दो अप्रत्याशित शक्तियों ने इस नाम को लोकप्रिय बना दिया। यह एक तरह से अच्छा हुआ, क्योंकि इससे उसे अनुभविक सिद्धान्त निर्माण करने तथा समाज विज्ञानों में एक मौलिक एकता स्थापित करने की प्रेरणा मिली। अब अमेरिका में यह एक बौद्धिक प्रवृत्ति के रूप में एक प्रभावशाली आन्दोलन का रूप धारण कर चुका है। इस विचारधारा के प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक शोध-पत्र प्रकाशित होते हैं, जैसे- (Public Opinion Quarterly, World Politics Behavioural Scientist Behavioural Science) आदि। वहां की 'सोशल साइन्स रिसर्च कौंसिल' ने 'राजनीतिक-व्यवहार' तथा 'तुलनात्मक-राजनीति' पर दो समितियां बना रखी है। इसे अब सभी प्रमुख राजवैज्ञानिक-जैसे डेविड ईस्टन, लासवैल आमण्ड, कौलमैन, हीज यूलाउ, कार्ल डॉयश, एडवर्ड शील्स, पावेल आदि अपना चुके हैं।

यहां व्यवहारवाद के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का ही विवेचन किया गया है, समस्त 'व्यवहारवाद' का नहीं। राजनीतिक व्यवहारवाद एक मानसिक प्रवृत्ति या सैबाइन के शब्दों में एक मनोदशा बन चुका है। राजविज्ञान ने उसे लगभग आत्मसात कर लिया है। कुछ टीकाकारों और व्यवहारवादियों ने उसे पद्धति मात्र माना है तथा कुछ उसे एक उपागम या वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में स्वीकार करते हैं। कुछ राजवैज्ञानिक उरने इससे भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान देना चाहते हैं।

व्यवहारवाद के विकास को समझने के लिए उसे तीन भागों में बाँटा जा सकता है - 1. अनुभववाद, जिसे हम पूर्व अवहारवाद कह सकते हैं। 2. व्यवहारवाद, द्वितीय महायुद्ध के समय से लेकर दो दशाब्दी तक का विकास-काल तथा 3. उत्तर व्यवहारवाद, सन् 1965 के बाद का विकास है, इसलिए उसे अलग से पाठ के अन्त में दिया गया है।

व्यवहारवाद का ऐतिहासिक विकास संयुक्त राज्य में राजविज्ञान की यथार्थवादी एवं अनुभववादी अध्ययनों के साथ जुड़ा है, जिसका समारम्भ ग्राहम वालास (Graham Wallas: Human Nature in politics), आर्थर बैन्टले (Arthur Bentley : The Process of Government : 1908) तथा चार्ल्स ई.मेरियम (Charls E. Merriam : New Aspects of Politics : 1925) आदि से हुआ और अमेरिका में मेरियम की प्रेरणा से यथार्थवादी एवं परिमाणात्मक अध्ययन किये गये। सुप्रसिद्ध "शिकागो-सम्प्रदाय" व्यवहारवाद का प्रमुख गढ़ बन गया। इसको सहारा और शक्ति नव स्थापित "अमेरिकन पोलिटीकिल साइन्स एसोसियेशन" और "सोशल साइन्स रिसर्च कौंसिल" के माध्यम से मिली। उसके बाद अनेक प्राईवेट संस्थानों जैसे-फोर्ड कारनेगी, राकफैलर आदि ने करोड़ों डालर सामाजिक विज्ञानों के विकास पर व्यय किये, जिससे व्यवहारवादी दृष्टिकोण सर्वव्यापक बन गया।

व्यवहारवादी विचारधारा को यूरोप से भागे हुये समाजशास्त्रियों ने भी काफी योग दिया। जर्मनी और फ्रांस में समाजशास्त्रियों ने उसे वैज्ञानिक बनाने के लिए सशक्त अवधारणाएं, पद्धतियाँ तथा अध्ययन-सामग्री दी। मैक्स वैबर, कार्ल मार्क्स, डुरखीम, फ्रायड, पैरेटो, मोस्को आदि यूरोपीय विद्वानों ने समाजशास्त्रों के वैज्ञानिक अध्ययन का दृष्टिकोण प्रस्तुत करके वैचारिक दिशा प्रदान की थी। द्वितीय महायुद्ध के पहले तथा मध्य में अनेक विचारकों को भागकर संयुक्त राज्य आना पड़ा। महायुद्धकालीन वास्तविकताओं ने उन्हें अनुभववादी तथा मूल्य-निरपेक्ष बना

दिया। राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र सभी कुछ जीवन के निकट आकर प्रभावित करने लगे। अनेक समाजशास्त्रियों एवं राजवैज्ञानिको को प्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर कार्य करने का अवसर मिला, जिनसे इन्हें अपनी प्राकल्पनाओं को पुष्ट करने का अवसर मिला। इन्होंने मिलकर इस व्यवहारवादी आन्दोलन को जन्म दिया। राजविज्ञान के लिए यह एक ऐतिहासिक कृति है। व्यवहारवादी उपागम, परम्परागत राजविज्ञान की, राज्य सम्बन्धी कानून दार्शनिक सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। यह राजनीतिक व्याख्या कर सकने वाले व्यापक सिद्धान्त की सम्भावनाओं में विश्वास तो करता है, किन्तु उसके अनुसार ऐसा तभी संभव है जबकि पहले सामान्यता के निम्न-स्तर पर विश्वसनीय व्याख्याएं उपलब्ध कर ली जाये। वर्तमान अवस्था में, व्यवहारवाद ऐसे ही निम्न या मध्यम स्तरीय अनुभवात्मक सिद्धान्तों के विकास में विश्वास करता है। उपर्युक्त व्यवहारवादी दृष्टिकोण एवं विश्वास लगभग सभी राजवैज्ञानिकों द्वारा आत्मसात कर लिए गए हैं। अब व्यवहारवाद एक क्रांति या आन्दोलन नहीं रहा, क्योंकि सभी ने इसे अपना लिया है। डहाल के अनुसार यह आन्दोलनात्मक मृत्यु उसकी विजय की प्रतीक है।

11.4 व्यवहारवाद का स्वरूप और व्याख्या

हीन्ज यूलाउ के अनुसार राजनीतिक व्यवहार का तात्पर्य केवल प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यवेक्षणीय राजनीतिक क्रियाओं से ही नहीं है अपितु व्यवहार के उन बोधात्मक, अभिप्रेरणात्मक तथा अभिवृत्यात्मक घटकों से भी है जो कि मनुष्य के राजनीतिक अभिज्ञानों, मांगों और आशाओं तथा उसके राजनीतिक विश्वासों, मूल्यों एवं लक्ष्यों की व्यवस्था का निर्माण करती है। उसमें संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न स्तर भी शामिल है। इन सबका अभिनवीकरण बहु कारणात्मक तथा बहु आयामीय तत्वों से होता है इसलिए स्वभावत: राजनैतिक व्यवहार का अध्ययन अन्तःअनुशासनात्मक होता है।

किर्कपैट्रिक ने इस शब्द में चार विशेषताओं को ग्रहण किया है, (1) यह शोध में राजनीतिक संस्थाओं को मौलिक इकाई के रूप में अस्वीकार करता है और राजनैतिक परिस्थितियों में स्थिर व्यक्तियों के व्यवहार को विश्लेषण की मौलिक इकाई के रूप में स्वीकार करता है। (2) सामाजिक विज्ञानों को "व्यवहारवादी विज्ञानों" के रूप में देखता है और राजनीति विज्ञान की अन्य सामाजिक-विज्ञानों के साथ एकता पर बल देता है। (3) यह तथ्यों के पर्यवेक्षण, वर्गीकरण व माप के लिए अधिक परिशुद्ध प्रविधियों के विकास और उपयोग पर बल देता है, और जहां तक संभव हो सांख्यिकीय या पीरणात्मक सूत्रीकरणों के उपयोग का आग्रह करता है तथा (4) राजनीति-विज्ञान के लक्ष्य को एक व्यवस्थित आनुभविक सिद्धान्त के रूप में परिभाषित करता है।

व्यवहारवादियों का चालर्नवर्थ (James C. Charleworth : Contemporary Political Analysis 197) के अनुसार विश्वास है कि हम आगमनात्मक (inductive) तथा वस्तुनिठ ढग से 'क्या', 'कहां', 'कैसे' और ' कब' को तो खोज सकते हैं, किन्तु 'क्यों' को नहीं। डहाल के अनुसार इनका लक्ष्य शासन की समस्त घटनाओं का मानव के पर्यवेक्षित और पर्यवेक्षणीय व्यवहार के रूप में वर्णन करना है। ये एक ऐसा व्यवहारात्मक विज्ञान विकसित करना चाहते है जो बिना किसी अनुशासन छत्रछाया के समाज में मनुष्य को वैज्ञानिक ढंग से समझने से सम्बन्धित किसी भी सामाजिक अनुसंधान में प्रयोग किया जा सके। सिब्ली के मत में अमेरिकी-वैज्ञानिक, व्यवहारवाद के संदर्भ में, परीक्षणीय 'वैज्ञानिक' सिद्धान्त तथा उसकी सत्यापन प्रक्रिया दोनों का निर्माण करने

पर जोर देते हैं ताकि, जैसा कि ईस्टन ने समीक्षा की है, कि प्राकृतिक विइतनों की पद्धति विज्ञानात्मक पूर्वमान्यताओं के समरूप एक राजनीति का विज्ञान बन जाये । उनकी दृढ़ धारणा है कि अवधारणाएं, पद्धतियाँ, सिद्धान्त आदि सभी कुछ प्राकृतिक विज्ञानों के स्तर पर लाये जा सकते हैं।

व्यवहारवाद अपने संशोधित परिप्रेक्ष्य में, मनुष्य के केवल बाह्य कार्यों से ही सम्बन्ध नहीं रखता, अपितु वह उसकी भावनात्मक, ज्ञानात्मक तथा मूल्याकनात्मक प्रक्रियाओं से भी सम्बद्ध है। उसके राजनैतिक व्यवहार में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यवेक्षणीय राजनीतिक कार्यो के अतिरिक्त व्यवहार के अवबोधनात्मक, अभिप्रेरणात्मक तथा अभिवृत्यात्मक घटक भी आते हैं अर्थात् वे सभी व्यवहारात्मक प्रक्रियाएं, जो मनुष्य के राजनैतिक अभिज्ञान मांगों, अभिलाषाओं और उसके लक्ष्यों, मूल्यों और राजनैतिक विश्वासों की व्यवस्थाओं का निर्माण करती है, राजनीतिक व्यवहारवाद का अध्ययन-क्षेत्र बन जाती है। ये अध्ययन विभिन्न स्तरों वैयक्तिक, समाज व्यवस्थापक, सांस्कृतिक आदि पर किए जा सकते हैं।

11.5 डेविड ईस्टन के अनुसार व्यवहारवाद की सामान्य विशेषताएं

ईस्टन ने एक लेख (The Current Meaning of Behaviouralism) में व्यवहारवादी आधारों, पूर्वमान्यताओं एव लक्ष्यों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

1. **नियीमततायें :** राजनैतिक व्यवहार में खोज किये जाने योग्य समानताएं पायी जाती है। इन्हें व्याख्यात्मकता एवं पूर्वकथनीयता के लिए सामान्यीकरणों अथवा सिद्धान्तों के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है । ये नियीमततायें व्यवहारवादियों के लिए महत्वपूर्ण हैं।

2. **सत्यापन :** सामान्यत सम्बद्ध व्यवहार के संदर्भ में ऐसे सामान्यीकरणों की प्रामाणिकता परीक्षणीय होनी चाहिए। सत्यापन-विधि वैज्ञानिकता का आधार है।

3. **प्रविधियां :** आधार सामग्री को प्राप्त करने एवं उनका निर्वचन करने के साधनों को स्वयं सिद्ध नहीं माना जा सकता। वे समस्यात्मक होते हैं और उनको सावधानी से शुद्ध एवं परिलक्षित किये जाने की आवश्यकता है तथा उन्हें प्रमाणित किया जाना चाहिए ताकि व्यवहार को पर्यवेक्षण, लेखबद्ध एवं विश्लेषण करने के लिए परिशुद्ध साधनों को ढूंढा जा सके। पीरशुद्धीकरण की प्रक्रिया विकासशील है।

4. **परिमाणनिकरण :** उपलब्धियों के विवरण तथा आधार-सामग्री को लेखबध करने में यथातथ्यता लाने के लिए, उनके अपने लिए नहीं लेकिन जहाँ सम्भव, सम्बद्ध और अर्थपूर्ण हो, दूसरे प्रयाजनो के प्रकाश में मापन एवं परिमाणनीकरण की आवश्यकता पड़ती है, यह किया जाना चाहिए।

5. **मूल्य :** स्पष्टता के लिए नैतिक मूल्यांकन एवं आनुभविक ष्याख्या दो भिन्न प्रकार की प्रस्तावनाएं हैं जिन्हें विश्लेषणात्मक रूप से पृथक रखना चाहिए। फिर भी राजनैतिक व्यवहार के अध्येता को दोनों में से किसी एक प्रकार की प्रस्तावनाओं को बलपूर्वक कहने से, चाहे वह उनका अलग-अलग कथन करे, संयुक्त रूप से तब तक नहीं रोका जाता जब तक वह एक को दूसरे के लिए समझने की त्रुटि कर बैठता अर्थात् निजी मूल्यों को स्पष्ट रखना चाहिए।

6. **क्रमबद्धीकरण :** अनुसंधान अवश्यमेव क्रमबद्ध होना चाहिए अर्थात् सिद्धान्त एवं अनुसंधान को ज्ञान के सम्बद्ध और अनुक्रमित निकाय के घनिष्टरुपेण अन्तर्ग्रसित भागों के रूप में देखा जाना चाहिए। सिद्धान्त से अदीक्षित शोध के नगण्य होने की संभावना रहेगी और आकड़ों से असमर्थित सिद्धान्त निरर्थक रहेगा।

7. **विशुद्ध विज्ञान :** ज्ञान के प्रयोग का वैज्ञानिक उद्यम उतना ही महत्वपूर्ण भाग है, जितना कि सिद्धान्तात्मक बोध का, लेकिन तर्क की दृष्टि से राजनीतिक व्यवहार का बोध और व्याख्या पहले आते है ताकि वे समाज की महत्वपूर्ण प्रायोगिक समस्याओं को सुलझाने के लिए राजनीतिक ज्ञान का उपयोग करने के प्रयासों का आधार बन सके।

8. **एकीकरण :** चूंकि सामाजिक-विज्ञान समस्त मानव परिस्थिति से सम्बन्ध रखते हैं, राजनीतिक अनुसंधान अपने परिणामों की सामान्यता को कम करने या प्रमाणिकता को दुर्बल बनाने का खतरा मोल लेकर ही अन्य अनुशासनों की उपलक्रिधयों की अवहेलना कर सकता है। इस अन्तर्सम्बद्धता का अभिज्ञान राजनीतिविज्ञान को प्रारम्भिक शताब्दियों वाली प्रस्थिति को दिलाने में तथा उसे समाजविज्ञानों के मुख्य समुदाय में पुनर्पदार्पण करने में सहायता देगा। इसी धारणा के आधार पर वह एक मौलिक सामाजिक विज्ञान बन सकता है।

इस प्रकार राजनीति में व्यवहारवाद का अर्थ केवल विज्ञान की परिशुद्ध प्रतिविधियों मात्र के प्रयोग से कुछ अधिक है। वह केवल वैज्ञानिक अन्वेषण की रीतियों के प्रति सतर्क होना मात्र नहीं है। यह कहा जा सकता है कि पहली बार व्यवहारवादियों ने अपने आपको वैज्ञानिक ज्ञान की व्यापक एव महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की दिशा में प्रतिबद्ध प्रदर्शित किया है। अब यह स्पष्ट है कि व्यवहारवाद केवल मात्र एक उपागम या दृष्टिकोण मात्र नहीं है। उसे एक उपागमन या विशेष-पद्धति मानना लक्ष्यों को साधनों से मिलाकर भ्रम पैदा करना है। व्यवहारवाद ने केवल सुधार नही, बल्कि पुनर्निर्माण किया है तथा राजविज्ञान को नये मूल्य, नई भाषा, नई पद्धतियाँ, उच्चतर प्रस्थिति, नवीन दिशाएं और सबसे बढ़कर अनुभवात्मक वैज्ञानिकता प्रदान की है। उसने आधुनिक मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, नृवंशशास्त्र और अर्थशास्त्र को राजनीतिक अध्ययनों के समीपस्थ लाकर उनको इन समाजशास्त्रों की पद्धतियां, सिद्धान्त, उपलब्धियां और दृष्टिकोण दिये हैं।

ईस्टन द्वारा उल्लिखित व्यवहारवाद के लक्षण उस शीतयुद्ध का परिचय नहीं देते जिसके कारण परम्परावादियों और व्यवहारवादियों के बीच युद्ध जैसी स्थिति बनी रही। वास्तव में उक्त सूची में वे संशोधन और सुधार भी शामिल हैं जिन्हें व्यवहारवादियों ने अपने व्यवहारवाद में परम्परावादियों की प्रारम्भिक प्रतिक्रिया एव आलोचनाओं के पश्चात् करने शुरू कर दिये थे। ये लक्षण उस व्यवहारवाद के हैं, जो पूर्वकाल से उत्तरकाल की ओर बढ़ रहा था। परम्परावादियों के मुख्य आक्षेप प्रथम छः लक्षणों एवं लक्ष्यों के विरूद्ध थे। शेष दो विशेषताओं के विषय में वे सहमत थे कि ये तो समस्त राजनीतिविज्ञान के एक अनुशासन के रूप में सदैव वर्तमान रही हैं।

11.6 व्यवहारवाद का राजनीतिविज्ञान पर सामान्य प्रभाव

सामान्य दृष्टिकोण से डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवहारवाद की विशेषताएं, इस बात का प्रतीक है कि उसने राजीवज्ञान के लिए कितना महत्वपूर्ण कार्य किया है और उसके भावी लक्ष्य क्या हैं उसने व्यापकता के सभी स्तरों-मध्य स्तरीय तथा सामान्य स्तर पर एक अनुभविक सिद्धान्त-निर्माण की आत्मचेतना पूर्ण मांग को जन्म दिया है। व्यवहारवाद ने विश्लेषण की नवीन

इकाईयों को निर्धारित करने की समस्या का समाधान करने के लिए राजवैज्ञानिको को विवश किया है। इससे यह सम्भावना स्पष्ट प्रतीत होने लगी है कि समाज में रहने वाले मनुष्य को समझने के लिए ज्ञान की मात्रा असीम हो जायेगी, यदि किसी तरह सामाजिक-विज्ञानों में एकता स्थापित कर दी जाये। किन्तु अभी तो ऐसा अनुशासनात्मक एकीकरण केवल एक सुखद कल्पना मात्र है। इसके लिए बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

उक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु विश्लेषण एव आकड़ों की नवीन प्रविधियों का प्रशिक्षण महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान अवस्था में प्रत्येक अध्येता को कम से कम दो या तीन विषयों का ज्ञान उसकी अन्तः अनुशासनात्मक क्षमता को सीमित रूप से बढ़ाने के लिए अत्यावश्यक है। इससे विशेषीकरण और कार्य विभाजन की प्रवृत्ति बढ़ेगी। विशेषीकरण का भावार्थ यह है कि वह कम से कम के बारे में अधिक से अधिक जाने, जिसके परिणामस्वरूप ज्ञान का विस्तार होगा और उससे ज्ञान का संकर उर्वरण या विनिमय होगा, जिससे अनुशासनों का विशुद्ध संश्लेषण सम्भव होगा। दूसरे शब्दों में, उसका लक्ष्य एक नई नींव पर व्यवहार के मौलिक विज्ञान की प्रतिप्ता करना है, जो कि सबके लिए एक विषय-परिधि या सामान्य समष्टि-सिद्धान्त का कार्य कर सके जैसे-क्रिया, निर्णय, प्रकार्य, व्यवस्था आदि इकाईयों पर विकसित संश्लेषण जो कि अनुशासन की चारदीवारो को लांघ कर सामान्य सामाजिक सिद्धान्त सम्भव बना सके। "व्यवहारवादी विज्ञानों" का लेबल उस आशा का प्रतीक है जो कि अन्ततः ऐसे समान पीरर्वत्यों को खोज निकालेगा जिनसे सभी अनुशासनात्मक क्षेत्रों में मानवीय व्यवहार को श्रेसतर प्रकार से समझने के लिए एक उपयोगी सिद्धान्त का मूल आधार बन सके। अरस्तु की भाषा में उसे 'स्वामी-विज्ञान' कहा जा सके।

विशेष प्रभाव - इस सामान्य उपयोगितावादी दृष्टिकोण के अतिरिक्त, राजविज्ञान के संदर्भ में व्यवहारवाद का विशिष्ट योगदान भी रहा है। यथा, (1) इससे वैज्ञानिक पद्धति को प्राप्त कर राजविज्ञान ने सारभूत सामाजिक विज्ञानों से नये प्रकार के आकड़े लेना प्रारम्भ कर दिया है जिनको प्रत्येक राजनैतिक विश्लेषक अपना स्वपक्षीय महत्व दे सकता है, जैसाकि शक्ति सिद्धान्तियो का प्रकार्यवादियो ने किया है। (2) जैसा कि बताया गया है कि व्यवहारवाद एक पद्धति से कुछ अधिक है, अतएव राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में, मानवीय व्यवहार के अभिज्ञान के लिए स्थिर इकाईयों की सिद्धान्तात्मक खोज निरन्तर जारी है। (3) राजवैज्ञानिकों में उसने अनुशासनों के एकीकरण के प्रति उसने तीव्र रूचि उत्पन्न कर दी है। मानवीय व्यवहार से सम्बद्ध सामान्य-सिद्धान्त की आवश्यकता, दो प्रकार की क्रांतियों-वैज्ञानिक पद्धति एव सिद्धान्त विषयक को समाहित किए हुए हैं। यद्यपि तार्किक दृष्टि से दोनों तकनीकी एव सिद्धान्तात्मक दृष्टिकोण, ईस्टन के अनुसार वैज्ञानिक-पद्धति के ही अंग हैं। लेकिन अनुभवात्मक सिद्धान्त के विकास पर ध्यान केन्द्रित किये बिना तकनीकी संसाधनों वैज्ञानिक व्हति सम्बन्धी प्रक्रियाओं को नष्ट करने के समान है। (5) अब अनुसंधान की इकाईयों के रूप में राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन अस्वीकार कर दिया गया है, क्योंकि (6) समाजविज्ञानों को व्यवहारात्मक विज्ञानों के रूप में देखा जाने लगा है। (7) तथ्यों के पर्यवेक्षण, वर्गीकरण आदि की यथातथ्यात्मक प्रविधियों के विकास एव उपयोग के प्रतिपादन के कारण, राजनीतिविज्ञान। (8) राजनीति का विज्ञान बनने का लक्ष्य निर्धारित किये हुए है, जिसके लिए स्वय सयुक्त राज्य में 5,000 से भी अधिक उच्चस्तरीय राजवैज्ञानिक लगे हुए हैं। इस कार्यक्रम में अन्य प्रदेशों के राजवैज्ञानिक भी आगे बढ़ रहे हैं। (9) किन्तु इस प्रयास में मूल्यों का विवाद उभरकर सामने आ गया है जिसने अनेक समस्याएं प्रस्तुत

कर दी हैं। मूल्यों के इस विवाद से ही अन्तर्गठित विषय राजनीतिक के क्षेत्र-निर्धारण, वैज्ञानिक-पद्धति का औचित्य तथा उसके प्राकृतिक विज्ञानों के समान विज्ञान बन सकने की सभावना-असम्भावना के हैं। इन संभावनाओं के चिन्तन, अन्वेषण पर्यवेक्षण तथा निष्कर्षीकरण से व्यवहारवाद की वस्तुस्थिति, सीमाएं और सम्भावनाएं स्वत: प्रकट होती चलती है।

11.7 व्यवहारवाद का परम्परागत राजनीति-विज्ञान पर प्रभाव

व्यवहारवाद ने मूल्यों, पद्धतियों, अध्ययन अपितु परम्परागत राजविज्ञान को भी प्रभावित किया है। उसने नवीन मूल्यों और लक्ष्यों ने नूतन अध्ययन इकाइयों को खोज निकालने का कार्य किया तथा नवनवीन पद्धतियों और प्रविधियों को अपनाने और आविष्कृत करने पर बल दिया, जिसका परिणाम पुरातन राजनीति विज्ञान के अध्ययन के पुनर्मूल्यांकन के रूप में प्रकट हुआ है। प्रथम-व्यक्ति के व्यवहार के व्यवस्थित पर्यवेक्षण ने व्यक्तित्व के व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों को जानने के लिए साक्षात्कार, मुक्त प्रश्नावलियों, विषयवस्तु विश्लेषण, सांख्यिकी प्रविधियों आदि को अपनाने की ओर प्रवृत्त किया। इस सर्वेक्षण प्रविधियों एवं सत्यापन पद्धतियों ने अभिवृत्ति-मापन, अनुमाप-निर्माण, विश्वसनीयता तथा प्रमाणिकता परीक्षणों एव निर्देशनों की प्रतिनिधित्व की समस्याओं की ओर ध्यान खींचा, जिसका दृष्टान्त 'मतदान-व्यवहार' सम्बन्धी अध्ययन हैं, जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव परम्परागत रूप से किये जाने वाले राजनैतिक दलों, विधि निर्माण, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, लोक-प्रशासन आदि के अध्ययनों पर देखा जा सकता है। द्वितीय-राजनैतिक व्यक्तित्वों के अध्ययन की परम्परा प्लेटो, अरस्तु और रूसो के शास्त्रीय-युग से ही चली आ रही थी। इनके नवीन रूपों में विश्लेषण करने की जो प्रेरणा ग्राहम वालास, चार्ल्स ई. मेरियम आदि ने दी, वह लासवैल के "मनोविश्लेषणात्मक विज्ञान और राजनीति", "राजनीति कौन प्राप्त करता है, क्या, कब और कैसे?" विश्व राजनीति एव वैयक्तिक असुरक्षा शक्ति तथा व्यक्तित्व आदि एम्बो के रूप में अभिव्यक्त हुई। कुछ वर्षो के पश्चात् टी डब्लू अडोर्नो ने "सत्तात्मक व्यक्तित्व (The Autoritarision Personality 1950)" में लिखा है तथा इसी प्रकार की अन्योय कृतियां प्रकाश में आई जिनमें अधिक पद्धति-वैज्ञानिक सूक्ष्मतायें प्रेक्षित हुई। इनमें राजवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, नृवंश विज्ञान आदि से व्यक्तित्व, संस्कृति और समाज विश्लेषणात्मक पद्धतियां व प्रविधियाँ मुक्तता पूर्वक ग्रहण की। परम्परात्मक संवैधानिक कारकों का अन्वेषण किया गया। यही कार्यशैली तुलनात्मक सरकारों, स्थानीय शासन, लोकप्रशासन, स्थत्तर्राष्ट्रीय राजनीति, विदेशनीति आदि क्षेत्रों में अपनायी गयी। हीज यूलाउ ने अन्तर्राष्टीय सम्बन्धों के विषय में भी अवलोकित किया कि उस क्षेत्र में जो विषय पहले परम्परावादियों के माने जाते थे, अब उन्हीं में प्रभावकारी व्यवहारवादात्मक शोध किये जा रहे हैं।

किन्तु इन परीक्षण उपकरणों, सर्वेक्षण पद्धतियों, सांख्यिकीय विश्लेषणों, लघु-समूह-स्तरीय प्रयोगशालाओं के प्रयोगों, गणितीय, प्रतिरूपों आदि नवीनताओं को देखकर व्यवहारवाद को पद्धति-विशेष मानना भूल होगी, क्योंकि ये प्राविधिक नवीनतायें अवधारणात्मक शून्य में प्रगट नहीं होती। ये राजनीति, राजनैतिक प्रक्रिया तथा राजनीतिक व्यवस्था की नवीन अवधारणाओं का अनुगमन करती है, जिनके अनुसार संस्थाएं मनुष्यों की तरह आचरण करती हैं। इस आचरण का विश्लेषण करने के लिए नवीन उपकरणों, पद्धतियों आदि की आवश्यकता पड़ती है जिनसे नये तथ्य और आकड़े प्रकट होते हैं। तृतीय-मनोवृत्तियों, भावनाओं, अवबोधनों, मूल्यों तथा व्यक्ति की

अभिप्रेरणाओं आदि के परम्परागत चिन्तन के विषय रहे है, किन्तु निर्देशन, सर्वेक्षण तथा सांख्यिकी के नये विज्ञान के विकास ने इन विषयों को भी चिन्तन के क्षेत्र से बाहर निकाल कर उनका अन्वेषण करना आरम्भ कर दिया है। अब उनका वस्तुनिह विश्लेषण संभव हो चुका है, जबकि पहले वे व्यक्तिनिष्ठ प्रभावों के क्षेत्र में माने जाते थे।

इन सबके परिणामस्वरूप राजनैतिक विश्व के बारे में "व्यवस्थित और क्रमबद्ध ज्ञान भण्डार में अभिवृद्धि के लक्ष्य" और व्यापक प्रगति हुई है, जो सभी राजवैज्ञानिको का ध्येय रहा है। व्यवहारवादियों के प्रयत्नों से हमारी उपलब्धियों की विश्वसनीयता में, उनसे अधिक यथा तथ्यात्मक, अधिक परिशुद्ध और प्रभावात्मिकता में कमी से वृद्धि हुई है। इस उद्देश्य की प्राप्ति में सभी प्रविधियों के विकास और उपयोग ने यतेदान किया है। उन्होंने राजवैज्ञानिकों को अपने लक्ष्यों के क्रियाविधियों और उपलढिधयों के प्रति अधिक जागरूक बनाया है। अन्तअर्नुशासनात्मक दृष्टिकोण ने उन्हें अन्य अनुशासनों से सभी विकल्पात्मक उपागमों, अभिनवीकरणो, लक्ष्यों और विधियों को ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया है। व्यवहारवादियों दारा सिद्धान्तात्मक बल दिये जाने से राजनैतिक नियीमतताओं एवं समरूपताओं की खोज के प्रयास राजवैज्ञानिकों द्वारा निरन्तर किये जा रहे हैं। शायद निकट भविष्य में "मनुष्य का विज्ञान" भी इसी अनुक्रम में तैयार हो सके।

11.8 व्यवहारवादियों का कार्यक्षेत्र

हीज युलाउ के अनुसार कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, यदि विशिष्ट सीमाएं और बाधाएं दूर की जा सके, जो व्यवहारवादी कार्यक्षेत्र के भीतर न आ सकता हो, फिर भी व्यवहारवादियो ने निम्नलिखित क्षेत्रों को अपनी अध्ययन इकाई बनाया है, यथा-

1. मुख-प्रतिमुख सम्बन्धों से निरत व्यक्ति।
2. छोटे समूहों एय संगठनों के व्यष्टि तथा समष्टि रूप।
3. राजनीतिक व्यवस्थाएं तथा उनकी उपव्यवस्थाएं, जैसे-राजनैतिक दल, दबाव समूह, व्यवस्थापिकाएं आदि।
4. मतदान व्यवहार।
5. अवधारणाएं, जैसे-संकलन, शक्ति, प्रक्रियाएं, निर्णय, समूह, संरचनाएं आदि।
6. प्रक्रियाएं और क्रियाविधियाँ।
7. नीतियाँ और मूल्य।
8. तुलनात्मक राजनीति।
9. नवीन उपकरण एवं प्रविधियाँ।
10. राजनीतिक सिद्धान्त उपागम आदि।

यद्यपि उपर्युक्त विषय परम्परागत विषयों से अधिक और व्यापक हैं, परन्तु वे इतने ही नहीं हैं। व्यवहारवाद की व्यापकता को देखते हुए, 'राजनैतिक' को स्पष्ट करना जरूरी है। उक्त सूची को देखते हुए, फिर भी यह सुस्पष्ट है कि यदि कुछ शर्ते पूरी कर दी जावें और शोध-दुविधायें सुलझा दी जावें तो राजीवज्ञान के सभी समस्याग्रस्त क्षेत्रों में राजनैतिक व्यवहारवादी शोध किये जाने की सम्न्दुभावना है। दुर्भाग्य से राजनैतिक, शब्द की व्याख्या करना इतना सरल नहीं है। उसका स्पष्टीकरण एक कठिनाई बनी हुई है।

11.9 व्यवहारवाद की सीमाएं

हीज यूलाउ (Heinz Eulau) अपने लेख (Segment of Political Sceince Most Susceptible to Behaviourisic Treatment) व्यवहारवाद निरूपण के लिए सर्वाधिक सुप्रभाव्य राजनीति-विज्ञान के भाग में राजनीतिक-व्यवहार के सभी क्षेत्रों को व्यवहारवादी अध्ययन के योग्य माना है किन्तु सिबली ने स्वयं व्यवहारवाद की सीमाओं और प्रतिबन्धों की चर्चा की है जिन्हें अपने परिणामों को प्राप्त करते समय ध्यान रखना चाहिए। यथा, (1) व्यवहारवाद अपने आपको मूल्य-निरपेक्ष मानता है, लेकिन स्वयं व्यवहारवादी व्यक्तित्व, उसका आचरण, उसके ज्ञान की सीमाएं, साधन, राग-द्वेष, झुकाव, पक्षपात आदि उसके व्यवहारात्मक अध्ययन के महत्वपूर्ण पीरवत्यर्य हैं। उसके द्वारा विषयों को जो चयन किया जाता है, वह उन मूल्यों और विचारधाराओं से प्रभावित होता है जो कि अन्वेषण में उत्पन्न नहीं होते। (2) वे अवधारणाएं तथा मूल्य जो अध्ययन के 'क्या' और 'कैसे' को निर्धारित करते हैं, वे ही उसके लक्ष्यों के निर्णयन से सभी सम्बन्धित होते हैं। ये लक्ष्य उन व्यक्ति के सामान्य 'जीवन के अनुभव' या उसको समाज विषयक के समग्र दृष्टि से प्रभावित होते हैं। उसके निर्णयन स्ट्रॉस द्वारा प्रतिपादित पूर्व-वैज्ञानिक ज्ञान तथा उत्तर-वैज्ञानिक ज्ञान द्वारा रंगे रहते हैं। पोलकी के अनुसार समस्त ज्ञान व्यक्ति के सभी स्तरों पर वैयक्तिक-सहभाग से रंजित होता है। (3) ज्यों ही अन्वेषण का श्रीगणेश कर दिया जाता है, तब व्यवहारवादी अध्ययन से "क्या आशा की जा सकती है" - कि निश्चित सीमाएं अवगत होने लगती हैं, जैसे (क) नियन्त्रित परिस्थितयों तथा विशिष्ट मान्यताओं के अन्तर्गत ही राजनीति में मनुष्य के व्यवहार की व्याख्या की जा सकती है, (ख) "मनुष्य भविष्य में किस प्रकार का आचरण करेंगे", यह पूर्वकथन समान परिस्थितियों के होने पर ही किया जा सकता है। (ग) ऐसी अवधारणाओं को प्राप्त करना कठिन है जो कि पर्यवेक्षक और पर्यवेक्षित दोनों के लिए अर्थपूर्ण हों, कभी कभी ऐसी अवधारणाएं प्रस्तुत की जाती है, जिनको व्यवहारवादी तरीकों से प्राप्त नहीं किया गया है, (घ) यह भुला दिया जाता है कि तथ्य, मूल्य और पर्यवेक्षक परस्पर सम्बद्ध है और विज्ञान के स्वयं के भी अपने मूल्य है। पर्यवेक्षक को अपना पर्यवेक्षण उपयुक्त विवेचन के संदर्भ में, अव्यवहारवादी ढंग से व्युत्पन्न विचारबंध के भीतर रह कर करना पड़ता है। (4) व्यवहारवाद से अभिनवित अध्ययन अध्येता को समसामयिक राजनीति के उपादानों से अलग कर देता है। वह अध्ययन उन उपादानों से व्यवहारवादेतर विधियों से ही संयुक्त किया जा सकता है। (5) नीति निर्माण के मामलों में राजनीतिज्ञ के लिए व्यवहारवादियों का उपयोग सीमित है, क्योंकि नीति निर्माण के अनेक कारक महत्वपूर्ण होते हैं। (6) राजनैतिक जीवन में हमें किसे श्रेष्ठ समझना चाहिए? इस विषय में व्यवहारवादी काफी प्रकाश डाल सकता है और उन परिस्थितियों, उस (मूल्य) की सफलता-असफलता के बारे में पूर्वकथन कर सकता है किन्तु कोई भी व्यवहारवादी सभी परिस्थितियों के लिए अन्तिम मूल्य का चुनाव नहीं करा सकता अर्थात् वह द्वितीय, तृतीय (साधनात्मक) स्तरों तक ही बोल सकता है न कि प्रथम-स्तरीय मूल्यों के विषय में (7) वह 'यदि..... तब, "या तो..... या' की प्रतिबन्धित भाषा या विशेष परिस्थितियों के लिए ही पूर्वकथन कर सकता है, जो कि अवैधानिक भविष्यवाणी से भिन्न है। पूर्वकथन समाज विज्ञानों के विश्लेषण एवं व्याख्याओं का महत्वपूर्ण उद्देश्य है, किन्तु 'उच्चस्तरीय परिशुद्धता' और सत्यता के साथ पूर्वकथन बहुत कम क्षेत्रों जैसे मतदान विज्ञान में ही किये जा सकते है, व्यवहारवादी

सीमाओं के अतिरिक्त अन्य कारण जैसे ऐतिहासिक धारा, चिन्तन का प्रकार, भूगोल, संस्कृति और राजनीति के पारस्परिक सम्बन्ध मूल्यों का पदक्रम तथा व्यक्ति की दृष्टि आदि तत्व व्यवहारवादत्मिक विश्लेषण को प्रभावित करते है। जोसेफ आर. रॉयस का कथन है कि राजनीतिक जीवन के अंशों के अध्ययनों को अन्तिम रूप से संयुक्त करने का कार्य सदैव व्यक्तिनिष्ठ और वैयक्तिक कार्य होगा, जिसे विज्ञानीवृत नहीं किया जा सकता। यही नहीं, जैसा कि सिबली ने कहा है, व्यवहारवादी वैज्ञानिक का विशुद्ध दृष्टिकोण प्राथमिक मूल्यों एवं इतिहास के विज्ञानेतर अभिनिर्णयों द्वारा शोधित किया जाना चाहिए। उपर्युक्त सीमाओं की समीक्षा करने का निदृष्टार्थ यही है कि एक व्यवहारवादी के लिए केवल यह जानना ही पर्याप्त नहीं है कि क्या हो सकता है, लेकिन यह भी एक निर्दिष्ट संस्कृति के सम्पूर्ण संदर्भ में क्या हो चुका है और क्या सम्भवत: हो सकता है। इसका जानना साधारणजन एवं राजनीतिज्ञ, साथ ही साथ एक राजवैज्ञानिक और क्रियाशील दार्शनिक के लिए भी महत्वपूर्ण है।

11.10 व्यवहारवाद का समालोचनात्मक विश्लेषण

(1) व्यवहारवादी एक साथ ही मर्यादित और एक साथ ही अहंकारी हैं। एक ओर अपने निष्कर्षी मान्यताओं आदि को सापेक्ष मानते हैं दूसरी ओर वे किसी के अस्तित्व को महत्व देने के लिए तैयार नहीं है, यदि उसे गिना, तोला या मापा नहीं जा सकता। इस दृष्टि से वे धार्मिक कट्टरपंथियों के समान है।

(2) रेमनी, किलैट्रिक, डहाल, डॉयल, यूलाउ आदि सभी ने बार-बार आलोचना की है कि व्यवहारवादियों ने अभी तक' मानव व्यवहार का विज्ञान' प्रस्तुत नहीं किया जबकि वे लाखों कारोड़ों डालर इस व्यवसाय लक्ष्य के लिए खर्च करा चुके हैं। एक विश्वसनीय, व्यापक, प्रमाणिक, संस्थापित और संतोषप्रद 'राजनीति का विज्ञान' अभी तक मृगतृष्णा बना हुआ है।

(3) दुर्भाग्य से वे इस बात को भुला देते है कि प्राकृतिक विज्ञानों एवं राजनीति विज्ञान के तथ्यों में बड़ा गम्भीर अंतर है। इस दृष्टि से प्रविधियों और मूल्यांकन विधियों में अन्तर होना चाहिए। राजनैतिक तथ्य (अ)अधिक संश्लिष्ट (ब) न्यून मात्रा में प्रत्यक्षत: पर्यवेक्षणीय (स) अधिक परिवर्तनशील, (द) कम समरूप (इ) विशिष्ट समय में किसी भी एक कारक को पृथक करने में अधिक कठिन कार्य की प्रयोजनीयता में परिपूर्ण या साभिप्राय होते हैं। इसी प्रकार राजविज्ञान को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का प्रयास अत्यन्त कठिन है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन ने ठीक कहा था कि राजनीति का अध्ययन भौतिक शास्त्र के अध्ययन से अधिक कठिन है।

(4) व्यवहारवादियों की कमजोरी उनके पद्धतियों पर अत्यधिक जोर देने के कारण है। एवरी लीसरसन ने यह पाया है कि ये महत्वपूर्ण को छोड़कर प्राय: अमहत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में तथ्य और आकड़े एकत्रित करने में लगे रहते हैं।

(5) क्रिश्चयन बे के मतानुसार इनकी 'विज्ञान' स्थापना की धुन का परिणाम राजनीति से बचते रहने के रूप में निकला है। इस तथ्य को कटु शब्दों में एलफ़ेड कॉबन ने कहा है कि यह उपागम "यह बिना विज्ञान को प्राप्त किये, वहां राजनीति के खतरनाक चक्कर से बचने के लिए विश्वविद्यालय के शिक्षकों हारा आविष्कृत युक्ति है। "जबकि इसे दोनों, "ह" और

"चाहिए' से सम्बंध रखना चाहिए तथा वास्तविक रूप से अन्तर्ग्रस्त मूल्यात्मक पूर्वाग्रहों का भी मूल्यांकन करना चाहिए।

(6) व्यवहारवादियों ने स्थायित्व को पूर्वधारणा के रूप में अपना सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्य बना लिया है और रूढ़िवादी बन गये हैं। कोई भी ऐसा व्यवहारवादी शायद ही मिल पाये जो उदार-प्रजातंत्र में विश्वास न रखता हो। फिर भी वह अपने आपको मूल्य-निरपेक्ष मानता रहेगा।

(7) कुछ आलोचक व्यवहारवादी सिद्धान्त-निर्माण और सत्यापन क्रियाविधियों को अपर्याप्त मानते हैं।

(8) कतिपय विचारक उसकी अन्तिम मूल्यों के सम्बन्ध में कुछ न कह सकने की स्थिति के प्रति असंतोष व्यक्त करते हैं। जेम्स ए. गोल्ड एंव विन्सेंट थी। थर्स्वी के अनुसार बिना कोई उद्देश्य कार्य 'राजनीतिक' कैसे हो सकता है? इन प्रश्नों से बचना मूल्य हीनता को खुली छूट देना है।

11.11 व्यवहारवादियों द्वारा प्रत्युतर

डेविड ईस्टन ने व्यवहारवादियों की आठ विशेषताएं बतायी उनमें से परम्परायादियों ने अन्तिम दो की-इसे एक विज्ञान बनाने और अर्न्तअनुशासनात्मक बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए, स्वीकार कर लिया है। प्रथम छः विशेषताओं की उन्होंने आलोचना की और मजाक उड़ाई कि (1) राजनैतिक वास्तविकताएं अधिकांशतः विशिष्टताएं लिये होती हैं और उनमें समानताएं ढूंढना अपने को भुलाये में डालना है या अपनी एशपीरवर्त्यता यहु पीरवर्तनीय तथ्यों पर थोपना है, (2) साथ ही कोरे साक्षात्कारों और प्रश्नावलियों आदि से उस वास्तविक गत्यात्मक राजनीति का अभिज्ञान नहीं हो सकता जो कि सतह से नीचे अंतस्तल में रहती है और जो अज्ञातव्य है। इसलिए इसका सत्यापन का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता, (3) तथ्य, आँकड़े या सूचनायें संग्रह करने में राजनीतिक अध्येता कभी भी शतप्रतिशत रूप से वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता, (4) और वह जो और जिस तरह के आँकड़े एकत्रित करता है वे 'अमापनीय' होते हैं, इसलिए 'अपीरमाणीय या परिमाणन' करना या 'अमापनीय को मापना' हास्यास्पद है, (5) इसी तरह मूल्य निरपेक्षता एक असंभावना है क्योंकि अधिकर्त्ता सदैव अपनी मूल्यात्मक वरीयतायें रखता है और (6) सिद्धान्त की व्याख्यात्मक एव पूर्वस्थनीरता के प्रति भी परम्परावादियों ने अविश्वास प्रकट किया है। परम्परावादी नीति सम्बन्धी या तात्विक विषयों में ही जूझना पसन्द करते हैं, इसी में वे अपनी उपयोगिता, व्यावहारिकता और अर्थपूर्णता मानते हैं। अधिक से अधिक कान्ट के मीमांसा-शास्त्र में वर्णित वास्तविकता को विश्लेषणात्मक प्रतिरूपों और (Ctegories) के रूपों में सुस्पष्ट करने और उन्हें परीक्षणीय मानने को सहमत हैं, लेकिन परम्परावादियों ने अपने आपको आलोचना में ही निरत न रखकर, व्यवहारवादी पद्धतियों को अपनाना आरम्भ कर दिया। उधर व्यवहारवादी पहले से ही अपनी स्थिति के विषय में जागरूक थे। उन्होंने अपनी पद्धति विज्ञान को सशक्त बनाया और परम्परावादियों के आक्षेपों का प्रत्युत्तर दिया। प्रथम आक्षेप कि राजनैतिक व्यवहारवादी मुख्य रूप से मानव-व्यवहार के सामान्य व नियमित लक्षणों में ही रूचि रखते हैं तथा घटनाओं की विशेषताओं तथा विभिन्नताओं की अवहेलना की है, पर्याप्त रूप से तथ्यात्मक प्रतीत होता है। उनके अधिकांश अध्ययन चित्रवर्णनात्मकता से हटकर सिद्धान्त आदर्शात्मकता की ओर चले गये

हैं। फिर भी दुर्भाग्य से अभी तक किसी समन्वयात्मक आनुमानिक सिद्धान्त का विकास नहीं हो पाया है। केवल कुछ ही मनोविश्लेषणात्मक कृतियां विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर प्रस्तुत की गई है। राजसमाजशास्त्रियों ने भी इस ओर कार्य किया है। द्वितीय आलोचना का आधार यह है कि वे अपने स्वनिर्मित कृत्रिम और विषय प्रतिरूपों की वास्तविकता पर आरोपित कर देते हैं। उनके अनुसंधान प्राय: संगति विहीन होते हैं। या तो वे अमहत्वपूर्ण गवेषणायें हैं या मानव प्रयोजनों से असम्बद्ध हैं। उन्हें रूढ़िवादी और यथास्थितिवादी समझा जाता है। किन्तु ये आरोप सदैव और सामान्य रूप से (जैसा कि अगले अध्यायों में किए गए विश्लेषण से विस्तारपूर्वक स्पष्ट होगा) सही नहीं लगते। प्रतिरूप की प्रकृति प्रतिनिध्यात्मक होती है और विशिष्ट अवधारणा का विचारक की ओर लक्ष्यों को लेकर प्रस्तुत किया जाता है। इसकी दोषयुक्तता उस समय प्रकट होती है, जब उसके आधार पर मूल्यांकन करना आरम्भ कर दिया जाता है। उनके कुछ प्रतिरूप यथास्थितिवादी अवश्य हैं, किन्तु सभी ऐसे नहीं है और उन्होंने राजनैतिक व्यवस्थाओं के प्रकारों, स्थायित्व, परिवर्तन और क्रांति की समस्याओं, प्रजातत्र और तानाशाही की दशाओं, युद्ध, शान्ति, समानता, असमानता आदि पर यथार्थवादी अध्ययन प्रस्तुत किए हैं।

तृतीय प्रकार की आलोचना का आधार उनकी आविष्कृत विशिष्ट शब्दावली है, जो कि सम्प्रेषण में बाधक है। वे एक के बाद एक शब्द, जैसे डब्ल्यु. ए. रिग्स, टालकाट पारसन्स आदि ने किया, वस्तुनिष्ठता तथा तटस्थता की खोज में गढ़ते चले जाते हैं। इस विषय में उनका प्रत्युतर यह है कि साधारण व्यवहार में आने वाले शब्द अनेकार्थक होते हैं और एक विज्ञान के लिए तकनीकी शब्दावली का होना महत्वपूर्ण है। स्वयं लासवैल ने इस उद्देश्य को लेकर एक यथातथ्यात्मिक शब्दकोष विकसित करने का कार्य किया। इसी प्रकार उसका अनुगमन विभिन्न व्यवहारवादियों ने अपने- अपने ढंग से किया, जिसका परिणाम विधिता, गूढ़ता, जटिलता, असम्प्रेषणीयता आदि के रूप में हुआ, किन्तु सभी व्यवहारवादियों ने ऐसा नहीं किया है। अनेक अधि- अनुभववादी भी जैसे हीगेल, मार्क्स आदि अपनी-अपनी शब्दावली की आवश्यकता सभी अनुभव करते हैं। निस्संदेह बुद्धिमान सामान्य-अद्वैता को विषय से बहिष्कृत करने वाली स्वपरक शब्दावली इस विज्ञान के विकास में निश्चित रूप से बाधा है। राजवि को मौलिक अवधारणाएं अभी भी सर्वस्वीकृत शब्दों में अभिव्यक्त नहीं की जा सकती।

चतुर्थ प्रहार उनके वैज्ञानिकता के सीलबन्द स्वरूप पर किया गया है कि उन्होंने राजविज्ञान को केवल शैक्षिक जगत की धात्री बनाने का कार्य किया है। फलस्वरूप राजविज्ञान नीति निर्माण, सक्रिय राजनीति, समाज के तात्कालिक और दूरगामी समस्याओं आदि से पृथक् हो गया है। इस परिस्थिति को आर्नल्ड ब्रैश्ट ने बीसवी शताब्दी की एक 'दुःखान्त घटना' बताया है। व्यवहारवादी 'मूल्य निरपेक्षता' का मुखौटा धारण किये रहे और नाजीवादी, फासीवाद और साम्यवाद के द्वारा मानव-मूल्यों का उन्मूलन किया जाता रहा। उन्होंने अपनी वस्तुनिष्ठता के कारण समस्त मूल्यों को समान बताया चाहे वह 'प्रजातंत्र' हो, चाहे 'तानाशाही'। लिओ स्ट्रास के अनुसार इस दृष्टि का परिणाम 'गैटर की विजय' है, और यही हुआ। जबकि वास्तविकता यह है कि वे प्रच्छन्न रूप से उदार प्रजातंत्रवादी है, यद्यपि अपनी प्राकृतिक-विज्ञानों का अंधानुकरण किये जाने के कारण अपनायी गयी वैज्ञानिक-पद्धतियों को लेकर, वे प्रजातंत्र के मूल्य न तो

सिद्ध कर सके और न उसका पक्ष ले सके। किन्तु अब व्यवहारवादी राजवैज्ञानिको ने मूल्यों पर विचार करना आरम्भ कर दिया है और वे स्वपरीयता-समर्थन मूल्य निरपेक्षवादी बन गये हैं। राबर्ट डहाल, आर्नल्ड ब्रैक्ट, डेविड ईस्टन आदि की यही स्थिति है। अब वे द्वितीय और तृतीय स्तर पर मूल्यवाद समर्थन की भी अपने तथ्यात्मिक विवरणों एवं व्याख्याओं के साथ देने लग गये हैं। स्वयं मैक्स वेबर की विषयपरिधि में वे मानव-मूल्यों से प्रतिबद्ध और वचनबद्ध होना सम्भाव्य और वैज्ञानिकता-अविरोधी मानने लगे हैं। मीहान के शब्दों में, "हम समस्त साधनों द्वारा अनुभववादी गाय को दुहे, किन्तु कहीं उसे पूज्य न बना दें।"(The Theory and Method of Political Analysis 1965.p.427)

उपर्युक्त विवेचन व्यवहारवादियों के रचनात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। उन्होंने सन् 1950 से 1956 के बीच काफी आत्मसुधार और कार्य किया है। उनकी यह स्वशिक्षित पीढ़ी अभी अवरूद्ध गति नहीं हुई है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अभी राजविज्ञान स्वयं की विषय-सामग्री के अनुकूल अपना पद्धति-विज्ञान विकसित नहीं कर पाया है। न उसने परम्परणत राजविज्ञान का आधुनिक रूप के साथ एकीकरण किया है। एक सुस्पष्ट, सम्प्रेक्षणीय, अनुभवात्मक शब्दावली का निर्माण तथा नीतिनिर्माताओं तथा स्वयं अनुशासन के लिए एक परीक्षित सम्बद्ध और संगत सिद्धान्त का विकास होना शेष है। विषय-सामग्री, वैज्ञानिक-पद्धति, मूल्य- निर्णय एवं सिद्धान्त ऐसे विषय हैं, जिन पर व्यवहारवादियों को कार्य करना शेष है ।

11.12 व्यवहारवाद की समस्याएं

व्यवहारवाद अनेक शोध, पद्धति और मूल्यों सम्बन्धी समस्याओं से ग्रस्त है। उन्हें हीज यूलाउ ने सिद्धान्त, शोध-प्रविधि तथा व्यावसायिक चातुर्य शीर्षकों के अन्तर्गत रखकर अध्ययन किया है। जैसे, (1) यह एक विचित्र तथ्य है कि सिद्धान्त-निर्माण तीव्रगति से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्रों में हो रहा है जो कि सिद्धान्त निर्माण की दृष्टि से अत्यधिक अनुपयुक्त है क्योंकि वह प्रमाणिकता के प्रश्न को अपनी अत्यधिक व्यापकता के कारण समाधान नहीं कर सकता। (2) जहां अनुभवात्मक शोध और राजनीतिक सिद्धान्त का पुनर्विवाह होने जा रहा है, वहां धन, अवसर, संसाधना पूर्वाग्रह, भय, अदूरदर्शिता स्वयं वैज्ञानिक उद्यम के दोष पूर्ण संचालन, मूल एवं त्रुटियां आदि अपने आप में गंभीर समस्याएं हैं। (3) आधार-सामग्री या आकड़ों का मिलना स्वयं एक परिवर्तनशील सीमा है। गवेषणा की पद्धतियों तथा उपकरणों के क्रमिक विकास के साथ, तकनीकी-ज्ञान की वृद्धि और पद्धति-विज्ञान संबंधी सूक्ष्मताओं के जैस "कम्प्यूटर" आदि तथ्यों की मात्रा एवं गुणों में विकास होता चला जाएगा और उसी के साथ निष्कर्षो में भी परिवर्तन सम्भावित होते रहेंगे। (4) कुछ नई दुविधायें सम्मुख आ खड़ी हुई हैं तथा, (क) अपेक्षाकृत पुराने और नये उपागमों में सम्बन्ध क्या हों? (ख) व्यष्टि और समष्टि विश्लेषणों को परस्पर कैसे संयुक्त किया जाए क्योंकि, (ग) जो आकड़े समूह से सम्बन्धित है वे व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से पृथक होने पर यथार्थ सिद्ध नहीं हो सकते। इसी प्रकार सम्पूर्ण व्यवस्था सम्बन्धी विश्लेषण और केस विश्लेषण के परिणाम भिन्न होंगे। (5) जब तक शोधकर्ताओं को अन्तअनुशासनात्मक एवं अभनिवीकृत नहीं किया जाएगा और कुशल कार्यकर्ता नहीं मिलेंगे या

उपर्युक्त दुविधाओं को सुलझाया नहीं जायेगा, तब तक ये व्यवहारवादी उद्यम अधिक प्रामाणिक निष्कर्ष प्रस्तुत करने में असमर्थ रहेंगे।

11.13 व्यवहारवावद का मूल्यांकन

जबकि व्यवहारवादी क्रांति का एक दौर समाप्त हो चुका है, अब उसके पक्ष और विपक्ष गुटों के शीतयुद्ध से अपमानित होकर, व्यवहारवाद योगदान का मूल्यांकन करना संभव है। ईस्टन के अनुसार (1) व्यवहारवाद सम्पूर्ण समाजविज्ञानों में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धान्त का समारम्भ का सूचक है। वह समाज के विभिन्न परिवर्तनशील अवबोधक उपागमों की एक लम्बी पंक्ति में एक नूतन विकास है। (2) इस क्रांति ने राजवैज्ञानिकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाया तथा उन्हें अन्तअर्नुशासनात्मक दृष्टिकोण प्रदान किया है। ड्हाल के मतानुसार, "राजनैतिक अध्ययनों, आधुनिक मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र और अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों, पद्धतियों, उपलब्धियों और दृष्टिकोणों के निकट लाने में सफल हुआ है। "(3) उसने राजविज्ञान को आधुनिकता और एकता प्रदान की है, जिसका सम्बन्ध क्या "है" से है, न कि क्या होना "चाहिए" से। राजवैज्ञानिक अब वह राजदार्शनिक नहीं है जो नैतिक मूल्यों को निश्चित, निर्दिष्ट विस्तृत और प्रयुक्त करने का प्रयत्न किया करता था। (4) व्यवहारवाद ने अपने वैज्ञानिक अनुभववाद के माध्यम से नवीन दृष्टि, नवीन पद्धतियां, नये मापन और नूतन क्षेत्र प्रदान किये है। सोला पूल के शब्दों में "अब हमारा अनुशासन एक नये सामंजस्य, एक सुखद एकता और आत्म विश्वासपूर्ण अभिज्ञान का अनुभव करता है जो कि उसके स्वस्थ एवं शीघ्र वर्धन के अनुकूल है।"

साथ ही (5) यह भी तथ्य है कि व्यवहारवादियों का अपना यह दावा कि वे "मनुष्य के विज्ञान" की रचना कर सकते हैं, या मानव-व्यवहार के ऐसे नियम खोज निकाल सकते हैं जो सही नियन्त्रण और पूर्वकथन का आधार बन सकें, अभी तक पूरा करना बाकी है। (6) इनकी प्रकृति इतिहासेत्तर है और उनकी पद्धति में अब तक "क्या हो चुका है" ,की नियमित अवहेलना पाई जाती है। (7) जैसा कि ऊपर (3-4-3) बताया गया है, उन्होंने लघु-स्तरीय एवं महत्वपूर्ण घटनाओं के अध्ययन में ही अपनी समस्त शक्ति लगा दी है, समष्टि-व्यष्टि दोनों स्तरों पर ही महत्वपूर्ण प्रश्नों को छोड़ दिया है। (8) क्रिश्चियन दे की यह समालोचना ठीक है कि उनमें उदारवादी प्रजातंत्र के प्रति पूर्वाग्रह है और वे किसी सीमा तक अराजनीतिक, राजनीति विरोधी और यथास्थितिवादी है। (9) उन्होंने तात्कालिक एवं गम्भीर समस्याओं से अपने आपको पृथक् करके "आरामकुर्सी" वाले बुद्धिजीवी वर्ग में शामिल कर लिया है। वे इन्द्रपुरी के निवासी बन गये हैं। (10) इन विशुद्ध सिद्धान्तियों का राजनीतिक वास्तविकताओं के जगत में कोई विशेष उपयोग नहीं है, क्योंकि वहां, मूल्य, इतिहास, संस्कृति परम्पराएं आदि सभी घुले मिले रहते हैं। सिब्ली ने बताया है कि क्रियात्मक दर्शन, लोकनीति तथा राजनीति घनिष्ठ रूप से मिले हुये हैं। जहां प्रत्येक स्तर पर, राजनीति में भौतिक मूल्य का चयन करना पड़ता है, वहां विरूद्ध व्यवहार ज्ञान का उपयोग सीमित रह जाता है यद्यपि राजनैतिक संस्थाओं, भूमिकाओं आदि की संरचनाओं, प्रकार्यों, परस्पर सम्बन्धों आदि के विषय में ज्ञान में आशातीत वृद्धि हुई, किन्तु नैतिक मूल्यों की विषय में उसका स्थान सीमित हो जाता है और राजनैतिक घटनाओं में 'नैतिक' मूल्य सदैव जुड़े रहते हैं। (11)

व्यवहारवाद राजनैतिक घटनाओं को सामाजिक परिवेश से पृथक करने का अध्ययन करते हैं, इससे अनेक समस्याएं पैदा हो जाती है। किन्तु सम्पूर्णता की रूपरेखा व्यवहारवाद से प्राप्त नहीं होती उसका आधार विचारक को व्यक्तिगत ज्ञान है। इसलिए 'राजनीति' को समझने के लिए व्यवहारवाद से अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता है। वास्तविक स्थिति यह है कि हम 'विज्ञान' शब्द के प्रति अत्यन्त सम्मोहित हो गये हैं और हमने अपने आपको उसके समुचित अर्थो में बन्दी कर लिया है। किसी के दृष्टिकोण से विज्ञान के अतिरिक्त भी अवशोधन की अनेक पद्धतियाँ हैं, विशेषत: नीतिनिर्माण में वे पद्धतियाँ भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी विज्ञान की प्रविधियाँ और विषयवस्तु। (12) व्यवहारवाद इन्द्रियजनित भौतिक परापेक्षण पर आधारित है, उसकी पद्धतियाँ और प्रविधियां भी भौतिक आनुभविक्ता पर संस्थित हैं, जिनको नियन्त्रित और निर्देशित करने के लिए उच्चतर तथ्यों, सूक्ष्म भावों तथा इन्द्रियोत्तर मार्गदर्शन की आवश्यकता रहती है। प्राचीनकाल के उच्चतर-निम्नतर जैसा प्रश्न यहां भी अन्तर्ग्रथित है इसे स्ट्रास ने पूर्ववैज्ञानिक तथा उत्तरवैज्ञानिक ज्ञान कहा है अर्थात् व्यवहारवादी अध्ययन के पहले और बाद में अनुसंधानकर्ता का 'व्यक्तिगत ज्ञान' प्रधान होता है। इसे पात्यांकी ने निहित ज्ञान कहा है, जिसके हारा आंशिक घटको को सम्पूर्णता के अन्तर्गत देखा, परखा या अस्वीकार किया जाता है। यह निहित थान व्यहारवाद से प्राप्त नहीं होता।

इतना सब कुछ होते हुए व्यवहारवदी क्रांति ने राजविज्ञान के स्वरूप को पीरिवर्तन करने मे बस योगदान दिया है। उसकी प्रदत्त वैज्ञानिक विधियां, व्यवहारवदी दृष्टिकोण एवं मूल्य-निरपेक्षवाद को राजविज्ञान दारा आत्मसात् कर लिया गया है, जिसका गहरा प्रभाव उसके स्वरूप और विषयवस्तु पर पस है। अब व्यवहारवदीयों के विरोधियों और पक्षपातियों का शीतयुद्ध भी समाप्त हो गया है, और व्यवहारवाद सर्वत्र और सबके दारा एक मनोदशा, मनोवृत्ति या दृष्टिकोण के रूप में अपना लिया गया है। अब वह आन्दोलन या क्रांति के रूप में नहीं रह गया है और राबर्ट डहाल ने इन्हीं अर्थों में कहा कि व्यवहारवादी मनोदशा की परिसमाप्ति हो चुकी है। व्यवहारवाद अनुशासन के मुख्य निकाय में आत्मसात हो चुका है, या हो जायेगा। 'व्यवहारवादी मनोदशा अदृश्य हो जाएगी, इसलिए नहीं कि वह असफल हो गयी है, बल्कि इस कारण कि वह सफल हो गयी है। एक पृथक, किन्तु न्यूनाधिक सम्प्रदाय के रूप में कुछ गुटबन्दी का रूख लिये रहने पर अपनी शक्ति का स्वयं शिकार हो जायेगी। 'यद्यपि व्यवहारवाद ने राजनैतिक जगत को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है, किन्तु पूर्णबोध के लिए वही पर्याप्त नहीं है। इसके पूर्व कथन "अगर-तब" प्रस्तावनाएं मात्र न होने से प्राकल्पनात्मक होती हैं और फिर व्यवहारवाद की प्रमुख रूचि व्यवहारवाद की नियमितताएं खोज निकालने में है, न कि पहले क्या हो चुका है, और भविष्य में क्या होगा। फिर व्यवहारवादी निष्कर्षो का प्रयोग और उपयोग अव्यवहारवादी कारकों द्वारा किया जायेगा।

11.14 उत्तर-व्यवहारवादी पुनरावलोकन

व्यवहारवादी क्रांति मुश्किल से समाप्त ही हो पायी थी कि उसे इस युग के बढ़ते हुए सामाजिक और राजनैतिक संकटों ने घेर लिया और विकासमान व्यवहारवादी रूढ़िवादिता को चुनौतियां दी जाने लगी। डेविड ईस्टन ने इस स्थिति को 'उत्तर-व्यवहारवादी क्रांति' कहा है, जिसके नारे हैं-संगीत तथा कार्य अर्थात् राजविज्ञान का शोध एवं अध्यापन को वर्तमान समस्याओं

के साथ अपनी संगीत स्थापित करनी चाहिए, उनके प्रति कार्यशील होना चाहिए। ईस्टन ने 'अमेरिकन पॉलिटिकल साइन्स एसोसियेशन' के 6 वे अध्यक्षीय भाषण (1969) में इस नयी प्रतिक्रिया को जिसे एक संश्लेषण के रूप में देखा जा सकता है, निम्नलिखित लक्षण बताये हैं -

(1) अब जिस प्रकार के राजनीतिक शोध किये जा रहे हैं, उनके प्रति एक गहरा असंतोष पाया जाता है। शोध और शिक्षण में राजनीति के अध्ययन को एक अतियथातथ्यतापूर्ण वैज्ञानिक अनुशासन में रूपान्तरित करने का भारी प्रयास किया जा रहा है ताकि वह प्राकृतिक विज्ञानों के पद्धति-विज्ञान पर प्रतिरूपित किया जा सके। यह सारटोरी के शब्दों में जबरदस्ती का 'लघुकरणवाद' है।

(2) यह भविष्योन्मुखी है, जो एक मौलिक क्रांति को सुधार के रूप में कार्यान्वित करने में लगी हुई है। यह अपने आपको समाजोपयतेई़ा बनाकर अपने भविष्य को अधिक आरक्षित करना चाहती है, तथा

(3) यह एक व्यक्ति-समूह तथा बौद्धिक प्रवृत्ति दोनों ही है किन्तु अभी तक यह किसी संगठित समूह राजनैतिक विचारधारा या पद्धति-विज्ञान की विशेष प्रविधियों से आबद्ध नहीं हुई है। इस अभिनव आन्दोलन में विशुद्ध वैज्ञानिक और निष्ठावान शास्त्रीय-विद्वान आदि सभी शामिल हैं।

इस अभिनव आन्दोलन का स्वरूप और विशेषताएं अधिक सुस्पष्ट नहीं है किन्तु एक नये विश्वास के रूप में इसकी कुछ प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। डेविड ईस्टन ने उपर्युक्त तीन लक्षणों के रूप में इसकी कुछ प्रवृत्तियों का परिचय इस प्रकार दिया है कि (1) प्रविधि से पहले उन वास्तविकताओं को स्थान दिया जाना चाहिए जो वर्तमान गंभीर सामाजिक समस्याओं की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हो। विज्ञान का मूलमंत्र यह रहा है कि अस्पष्ट होने से गलत होना अच्छा है। उत्तर व्यवहारवादी इसको एक नई सूक्ति से प्रतिस्थापित करना चाहेंगे कि असंगतिपूर्ण परिशुद्धता की अपेक्षा अस्पष्ट होना अधिक उत्तम है। तात्पर्य यह कि ये वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में अपने अध्ययन-अध्यापन की संगति बिठाना चाहते हैं। (2) विगत व्यवहारवाद में एक अनुभवात्मक सामाजिक रूढ़िवाद की विचारधारा छिपी हुई है। उसने समसामयिक दशाओं को यथास्थित बनाये रखने का पक्ष लिया है। (3) पूर्व व्यवहारात्मक अनुसंधान वास्तविकता से अपना सम्बन्ध तोड़ चुका था। उत्तर-व्यवहारवाद का अपना मौन तोड़कर यथार्थ की भाषा अपनाने के लिए समुद्यत है, ताकि उन आसन्न संकटों का सामना करके मानव जाति को रचनात्मक सहयोग दिया जा सके। (4) अब यह अनुभव किया गया है कि अपने ज्ञान की सीमाओं को जानने के लिए हमें अपने मूल्य-आमुखों के प्रति सचेत रहना चाहिए, क्योंकि वे ही उन सीमाओं का निर्धारण करते हैं। चाहे कितना ही प्रयास क्यों न किया जाय विज्ञान कभी भी मूल्यांकन करते समय तटस्थ नहीं रह सकता। मूल्यों के बारे में शोध और उनका रचनात्मक विकास राजनीतिक अध्ययन के अविलोपनीय अंश हैं। (5) इस अनुशासन के सभी सदस्य समस्त बुद्धिजीवियों के इस दायित्व का वहन करते हैं कि उन्हें सभ्यता के मानवीय मूल्यों का आरक्षण करना है। इस दायित्व भावना के अभाव में वे केवल यंत्रविद हैं और इस स्थिति में उन्हें गवेषण की स्वतन्त्रता एवं समाज के व्याघातों से राज्य क्षेत्रातीत

संरक्षण पाने के विशेषाधिकारों को अपने पास बनाये रखने का कोई अधिकार नहीं है। (6) जानने का अर्थ है कार्य करने के दायित्व को वहन करना और कार्य करने का अर्थ समाज में पुनर्रूपीकरण में लग जाना। बुद्धिजीवी एक वैज्ञानिक होने के नाते अपने ज्ञान को कार्य के रूप में परिणत करने का विशिष्ट दायित्व रखता है। ऐसा एक कार्य-विज्ञान विकसित करना पड़ेगा जो आवश्यक रूप से आदर्शों के विषय में समाज के समकालीन संघर्षों को प्रतिबिम्बित करेगा। यह दृष्टिकोण, अन्ततः समस्त शोध-उद्यम को रंजित कर देगा। (7) इसके परिणामस्वरूप बुद्धिजीवियों के व्यावसायिक संघों एवं विश्वविद्यालयों को संघर्ष करना पड़ेगा । इस प्रकार व्यवसायों का अनिवार्यतः राजनीतिकरण हो जायेगा, जो कि वांछनीय है।

ईस्टन ने पूर्व-व्यवहारवादियों द्वारा विश्वसमस्याओ के प्रति ध्यान न दिए जाने पर निराशा अभिव्यक् की है। अब शोध उन समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए अधिक संगत आधार पर की जानी चाहिए। वह एक ऐसे अभिनवीकृति विश्व-दृष्टिकोण की आशा व्यक्त करता है, जो राजवैज्ञानिकों को, अपनी व्यावसायिक हैसियत में भी, मानवीय मानकों के अनुसार राजनैतिक जीवन को सुधारने के लिए निर्दिष्ट कर सकेगा और स्वयं कार्य करेगा। उत्तरकालीन व्यवहारवाद राजविज्ञान को आदर्श निष्ठानों की ओर ले जाने का संकल्प रखता है। तब प्रविधियों को ही सब कुछ नहीं समझा जायेगा और पूर्व व्यवहारवाद के दोषों से बचा जा सकेगा वर्तमान स्थिति में हमें स्पष्टतः पता होना चाहिए कि हमारे आमुख और उपकरण क्या हैं और उनसे हम क्या और क्या नहीं कर सकते। यह सुनिश्चित है कि अब मूल्यों का वर्णन, स्पष्टीकरण, व्याख्या और अवबोधन कर सकते हैं, पर नैतिक लक्ष्यों को निर्दिष्ट नहीं कर सकी। कार्य की दृष्टि से हमारी नवीन व्यूह-नीति यह होनी चाहिए कि पहले तात्कालिक समस्याओं एवं विवादों को तथा बाद में भौतिक एवं दीर्घकालीन विवादों का समाधान किया जाए। अपनी आशामय व्यूहनीति को कार्य रूप में परिणत करने के लिए अपने साधनों में से कुछ को सदैव दीर्घकालीन लक्ष्यों में लगाते रहें उधर व्यवहारवादी वैज्ञानिक मनोवृत्ति के लिए यथार्थ के निकटस्थ होकर व्यापक मानव मूल्यों के संवर्धन एवं आरक्षण के लिए राजनीति के समरांगण में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ उतरना है।

माइकेल हास तथा थियोडर एल. बेकर के अनुसार सन् 1970 से बाद का व्यवहारवाद संश्लेषणात्मक एवं बहु-पद्धति विज्ञानात्मक है जिसका उद्देश्य वर्तमान राजनीति-विज्ञान को सिद्धान्त के विकास में माप और प्रतिरोध के जड़त्व से 'मुक्त करना है' विचारक द्वय ने व्यवहारवादी विकास को एक द्वन्द्वात्म प्रक्रिया के रूप में अभिव्यक्त किया है। इस वाद की स्थिति परम्परावादी की रही, जो सन् 1950 तक व्यवहारवादियों से झगड़ते रहे। ईस्टन ने प्रतिवाद अर्थात् व्यवहारवाद की स्थिति की आठ विशेषताएं बतायी देखिए पूर्वोक्त जिसमें से प्रथम छः की कटुआलोचना परम्परावादी ने की। किसी विज्ञान में तीन मुख्य तत्व होते हैं, यथा (1) तात्विक ज्ञान (2) स्तूपीय सिद्धान्त, तथा (3) यथातथ्य पद्धतियां। प्रतिवाद की स्थिति का समारम्भ सन् 1920-30 में होता है जबकि स्तुअर्ट राइस और हैरोल्ड गासनैल ने परिमाणात्मक पद्धतियों को आरम्भ किया। विचारकों ने व्यवहारवाद के प्रतिवाद को दो भागों में बाटा। प्रथम अवस्था में मात्रात्मक विकास हुआ किन्तु सिद्धान्त का नहीं। द्वितीय अवस्था में मात्रात्मक के

साथ-साथ सिद्धान्तात्मक विकास हुआ। इसके प्रवर्तक ग्रैब्रील आमण्ड, राबर्ट डहाल, डेविड ईस्टन, कार्ल डायस और हैरोल्ड लासवैल थे। इसके पश्चात् लासवैल की प्रेरणा से इन सिद्धान्तों के प्रमाणीकरण का कार्य विभिन्न पद्धतियों के माध्यम से किया जाने लगा। इसके परिणामस्वरूप तात्विक ज्ञान, सिद्धान्त तथा पद्धतियों तीनों में एक संश्लेषण दिग्दर्शित हुआ। किन्तु सिद्धान्त निर्माताओं के दो वर्ग हो गए, एक वर्ग बहुल-पद्धतियों के आधार पर सिद्धान्त निर्माण में संलग्न था, तो दूसरा वर्ग केवल सैद्धान्तिक-व्यवहारवादी था इसने वैज्ञानिक पद्धतियों पर ध्यान दिए बिना ही सिद्धान्त निर्माण का कार्य किया। सिद्धान्तवादी राजवैज्ञानिक जो स्वीकारात्मक व्यवहारवादी के सिद्धान्त निर्माण में रूचि नहीं रखते थे, वे विशुद्ध तथ्यवादी कहे जा सकते हैं। शेष परम्परावादी थे। इस समय में संश्लेषणात्मक विकास की तृतीय अवस्था चल रही है जिसे लेख तय ने बहुपद्धति विज्ञानवाद कहा है, जिसमें सैद्धान्तिक सूक्ष्मताएं एवं उन्नत शोध-प्रविधि-विज्ञान संयुक्त है। इस अभिनव आन्दोलन में जो आक्षेप सन् 1950 में परम्परावादियों पर लगाए गए। यह स्थिति सन् 1950 से 1960 तक ही समझी जानी चाहिए। किन्तु सन् 1970 के बहु-पद्धति वैज्ञानिकों तारा सैद्धान्तिक व्यवहारवादियों पर पुन: वही आक्षेप लगाए गए हैं। बहु-पद्धति वैज्ञानिक इन आक्षेपों एवं आरोपों का रचनात्मक उत्तर एवं समाधान तैयार करने में संलग्र हैं।

11.15 सारांश

राजकीय व्यवहारवाद वास्तव में एक उपागम एवं पद्धति विशेष की विजय है। पद्धति ही विभिन्न विज्ञानों का आधार एवं एकता का सूत्र है। इसी पर वैज्ञानिक-राजनीतिक सिद्धान्त एवं स्वयं राजविज्ञान का विकास निर्भर है। भौतिक विज्ञानियों में वैज्ञानिक पद्धति और प्रयोग निष्कर्षों तथा परिणामों का सीधा सम्बन्ध रहता है, किन्तु समाजशास्त्रों में इन दोनों के बीच में मानव-मूल्यों का प्रश्न उपस्थित रहता है। मूल्य सभी कर्त्ता, अनुसंधान सामग्री तथा परिणाम को प्रभावित करते हैं। अतएव वैज्ञानिक-पद्धति की, मूल्यों के संदर्भ में समीक्षा की गई है।

11.16 अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिक राजनीति-विज्ञान को व्यवहारवाद के संदर्भ में ही समझा जा सकता है, किन्तु व्यवहारवाद व्यहारिकता नहीं है। 'इस कथन के संदर्भ में व्यवहारवाद की मूल अवधारणाओं को स्पष्ट कीजिये।
2. 'व्यवहारवाद मर कर विजयी हो चुका है' डहाल के इस कथन को स्पष्ट कीजिए और उत्तर-व्यवहारवादी योगदान का परिचय दीजिए।
3. व्यवहारवादी क्रांति का परम्परागत राजनीति-विज्ञानर पर पड़े प्रभाव का मूल्यांकन कीजिए।
4. व्यवहारवाद की सीमाओं और समस्याओं का व्याख्यात्मक परिचय दीजिए। उनका समाधान किस प्रकार किया जा सकता है?

11.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राबर्ट ए. डहाल, द बिहेवियरल अप्रौच इन पॉलिटिकल साईंस इन कान्टेमपरेरी पॉलिटिकल थॉट, सम्पा-जेम्स ए.गोल्ड विसेंट की थर्सबी, 1967
2. हीज युलाउ, सेगमेंट ऑफ पॉलिटिकल साईस मोस्ट सस्पेटिबल तू बिहेवियीरस्टिक ट्रीटमेंट, कॉन्टेम्परेरी पॉलिटिकल एनालेसिस, जेम्स सी. चार्ल्सबर्थ, 1967
3. मलफोर्ड क्यू सीबली, द लिमिटेशन्स ऑफ बिहेवियरलिग इन कॉन्टम्पेरेरी एतालेसि, (सम्पा.) जेम्स सी. चार्ल्सबर्थ
4. डेविट ईस्टन, द न्यू रिवोल्यूशन इन पॉलिटिकल साईस, इन एप्रोचेज, टू द स्टडी ऑफ पॉलिटिक्स साईसेज (सम्पा.) माइकल हैल एण्ड हेनरी एस. करिएल
5. माइकल हास एण्ड थियोडोर एल. बैकर, द बिहेवियरल रिवोल्यूशन एण्ड आफ्टर, इन एप्रोचैंज टू द स्टडी ऑफ पॉलिटिकल साईस

ISBN - 13/978-81-8496-119-5